I.S.S.N. 0971-9024

ARHAT VACANA

अर्हत् वचन

वर्ष – 15, अंक – 3
जुलाई-सितम्बर 2003

Vol. - 15, Issue-3
July-September 2003

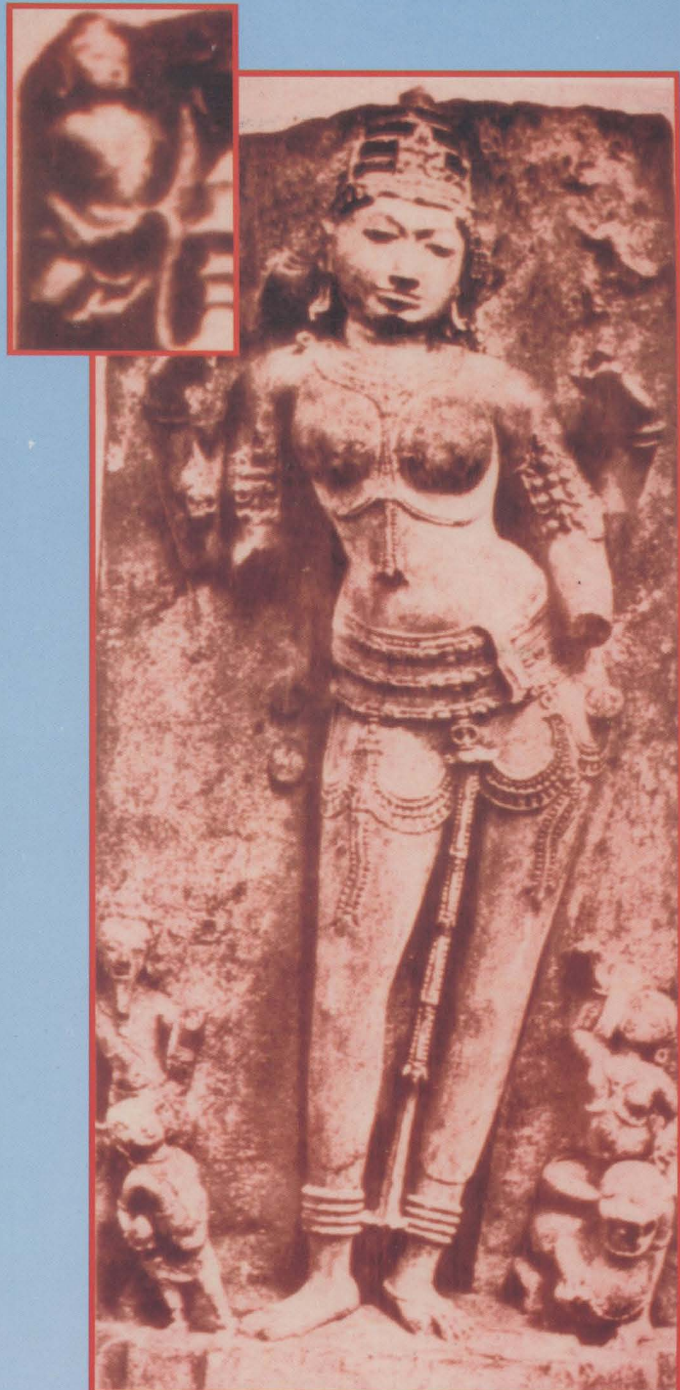

वाग्देवी सरस्वती (धार)
(लेख पृ. 7 पर)

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर
KUNDAKUNDA JÑĀNAPĪTHA, INDORE

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मध्यप्रदेश अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में

दिनांक 21 जुलाई 2003 को म. प्र. अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष श्री मोहम्मद इब्राहीम कुरैशी ने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर में म. प्र. अल्पसंख्यक आयोग का सूचना केन्द्र स्थापित करने कीघोषणा की।

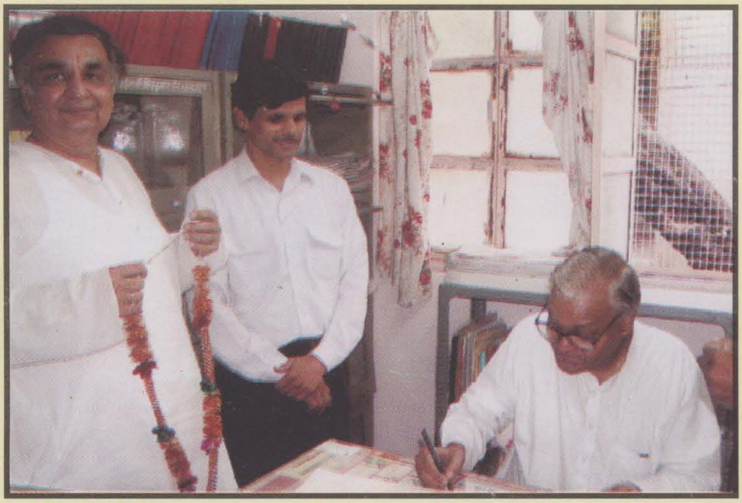

श्री कुरैशीजी का स्वागत करते हुए श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल। साथ में सिरिभूवलय योजना के प्रभारी डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज'

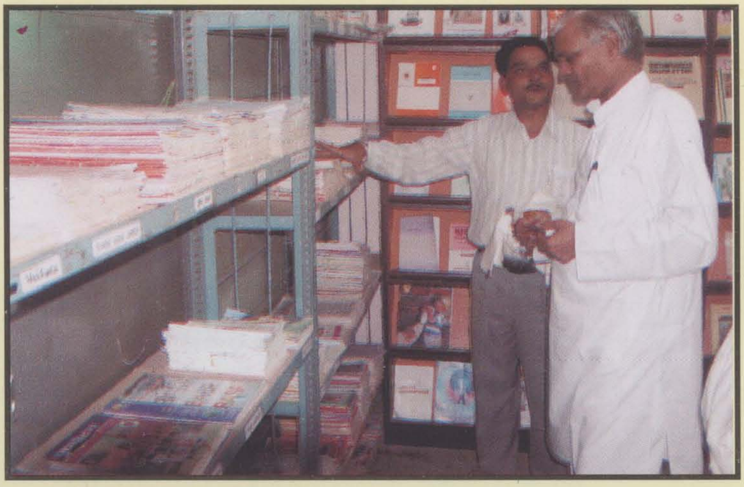

ट्रस्ट के प्रबंधक श्री अरविन्दकुमार जैन श्री कुरैशीजी को पुस्तकालय का अवलोकन कराते हुए

ज्ञानपीठ परिसर में श्री कुरैशीजी के सम्मान में एक समारोह आयोजित किया गया। समारोह में अपना उद्बोधन देते हुए माननीय श्री कुरैशीजी ने कहा कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ शोध केन्द्र उनके तीन वर्षों की खोज की उपलब्धि है। उन्होंने कहा कि ऐसा केन्द्र जहाँ इतना विकसित अत्याधुनिक कम्प्यूटराइज्ड पुस्तकालय एक साथ इतनी पत्र-पत्रिकाओं का व्यवस्थित संग्रह, इतने उत्कृष्ट कोटि के अनेक प्रकाशन, इसमें संचालित अनुसंधान परियोजनाएँ - शोध पत्रिका अर्हत् वचन का प्रकाशन, परीक्षा संस्थान आदि गतिविधियाँ एक छत के नीचे संचालित की जा रही हैं, पूर्व में मैंने नहीं देखा। इन सारी गतिविधियों से प्रभावित होकर श्री कुरैशीजी ने अति प्रसन्नता जाहिर की एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ को पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया।

आपने अतिथि पंजी पर अपने उद्गार व्यक्त करते हुए लिखा कि - ''जैन दर्शन, साहित्य के संरक्षण, संवर्धन के कार्य में लगी संस्था कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का अवलोकन किया। संस्था संस्कृति की रक्षा एवं संवर्धन के लिये जो कार्य कर रही है वह प्रशंसनीय तथा प्रेरणादायक है। अल्प तथा प्राचीन भाषाओं के विकास की योजनाओं का लाभ इस संस्था को मिलने की पात्रता है। अल्पसंख्यक आयोग का पूरा सहयोग हमेशा इस कार्य में रहेगा।''

उदासीन आश्रम ट्रस्ट एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के कोषाध्यक्ष श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल ने श्री कुरैशीजी का माला, शाल, श्रीफल से सम्मान किया तथा ज्ञानपीठ का प्रकाशित साहित्य भेंट किया। ट्रस्ट के प्रबंधक श्री अरविन्दकुमार जैन ने पुस्तकालय का अवलोकन कराया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

I.S.S.N. - 0971 - 9024

अर्हत् वचन
ARHAT VACANA

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा मान्यता प्राप्त शोध संस्थान), इन्दौर द्वारा प्रकाशित शोध त्रैमासिकी

Quarterly Research Bulletin of Kundakunda Jñānapīṭha, INDORE
(Recognised by Devi Ahilya University, Indore)

वर्ष 15, अंक 3 — **जुलाई – सितम्बर 2003**
Volume 15, Issue 3 — **July - September 2003**

मानद - सम्पादक
डॉ. अनुपम जैन
गणित विभाग
शासकीय होलकर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय,
इन्दौर - 452 017 भारत

HONY. EDITOR
DR. ANUPAM JAIN
Department of Mathematics,
Govt. Holkar Autonomous Science College,
INDORE - 452 017 INDIA

☎ 0731 - 2787790, 2545421 □ E.mail : anupamjain3@rediffmail.com

प्रकाशक
देवकुमार सिंह कासलीवाल
अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गाँधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर 452 001 (म.प्र.)

PUBLISHER
DEOKUMAR SINGH KASLIWAL
President - Kundakunda Jñānapīṭha
584, M.G. Road, Tukoganj,
INDORE - 452 001 (M.P.) INDIA

☎ (0731) 2545744, 2545421 (O) 2434718, 2539081, 2454987 (R)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन परामर्श मंडल / Arhat Vacana Advisory Board (2003-04)

श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन, प्राचार्य 104, नई बस्ती, **फिरोजाबाद** - 283 203	**Shri Narendra Prakash Jain, Principal** 104, Nai Basti, **Firozabad** - 283203
प्रो. लक्ष्मी चन्द्र जैन सेवानिवृत्त प्राध्यापक - गणित एवं प्राचार्य **जबलपुर - 482 002**	**Prof. Laxmi Chandra Jain** Retd. Professor - Mathematics & Principal **Jabalpur - 482 002**
प्रो. राधाचरण गुप्त सम्पादक - गणित भारती, **झांसी - 284 003**	**Prof. Radha Charan Gupta** Editor - Gaṇita Bhāratī, **Jhansi - 284 003**
प्रो. पारसमल अग्रवाल रसायन भौतिकी समूह, रसायन शास्त्र विभाग ओक्लेहोमा विश्वविद्यालय, **स्टिलवाटर** OK 74078 USA	**Prof. Parasmal Agrawal** Chemical Physics Group, Dept. of Chemistry Oklehoma State University, **Stillwater** OK 74078 USA
डॉ. तकाओ हायाशी विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शोध संस्थान, दोशीशा विश्वविद्यालय, **क्योटो - 610 - 03 जापान**	**Dr. Takao Hayashi** Science & Tech. Research Institute, Doshisha University, **Kyoto - 610 - 03 Japan**
प्रो. जे. सी. उपाध्याय प्राध्यापक - इतिहास **इन्दौर - 452 001**	**Prof. J.C. Upadhyaya** Professor - History **Indore - 452 001**
श्री सूरजमल बोबरा निदेशक - ज्ञानोदय फाउन्डेशन **इन्दौर - 452 003**	**Shri Surajmal Bobra** Director - Jñānodaya Foundation **Indore** - 452 003

सम्पादकीय पत्राचार का पता

डॉ. अनुपम जैन 'ज्ञान छाया', डी - 14, सुदामा नगर, **इन्दौर** - 452 009 फोन/फैक्स : 0731 - 2787790	**Dr. Anupam Jain** 'Gyan Chhaya', D - 14, Sudama Nagar, **Indore** - 452 009 Ph./Fax : 0731 - 2787790

सदस्यता शुल्क / SUBSCRIPTION RATES (w.e.f 15.08.03)

	व्यक्तिगत INDIVIDUAL	संस्थागत INSTITUTIONAL	विदेश FOREIGN
वार्षिक / Annual	रु./Rs. 125=00	रु./Rs. 250=00	U.S. $ 25=00
10 वर्ष हेतु / 10 Years	रु./Rs. 1000=00	रु./Rs. 1000=00	U.S. $ 100=00
सहयोगी सदस्य	रु./Rs. 2100=00	रु./Rs. 2100=00	U.S. $ 250=00

पुराने अंक सजिल्द/अजिल्द फाईलों में रु. 250.00/U.S.$ 25.00 प्रति वर्ष की दर से सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं। सदस्यता एवं विज्ञापन शुल्क के म.आ./चेक/ड्राफ्ट **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर** के नाम देय ही प्रेषित करें। इन्दौर के बाहर के चेक के साथ कलेक्शन चार्ज रु. 25/- अतिरिक्त जोड़ कर भेजें।

लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों के लिये वे स्वयं उत्तरदायी हैं। सम्पादक अथवा सम्पादक मण्डल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। इस पत्रिका से कोई भी आलेख पुनर्मुद्रित करते समय पत्रिका के सम्बद्ध अंक का उल्लेख अवश्य करें। साथ ही सम्बद्ध अंक की एक प्रति भी हमें प्रेषित करें। समस्त विवादों का निपटारा इन्दौर न्यायालयीन क्षेत्र में ही होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 3, 2003, 3 - 4

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अनुक्रम / INDEX

सम्पादकीय - सामयिक सन्दर्भ 5

लेख / ARTICLES

समस्तावलोका निरस्ता निदानी, नमो देवि वागीश्वरी जैन वानी 7
□ सूरजमल बोबरा

पर्यावरण संरक्षण के परम्परागत तरीके 17
□ आचार्य कनकनन्दी

व्रत - उपवास : वैज्ञानिक अनुचिन्तन 23
□ अनिलकुमार जैन

आत्मज्ञान : आधुनिक मनोविज्ञान एवं हमारे जीवन के सन्दर्भ में 33
□ पारसमल अग्रवाल

अण्डाहार : धर्मग्रन्थ और विज्ञान 43
□ जगदीश प्रसाद एवं रंजना सूरी

णमोकार महामन्त्र : एक वैज्ञानिक अनुचिन्तन 49
□ अजितकुमार जैन

अकबर और जैन धर्म 53
□ रमा कान्त जैन

भारतीय राष्ट्रीयता के अतिपुरुष श्री सुहेलदेव एवं कवि द्विजदीन विरचित सुहेलबावनी 59
□ पुरुषोत्तम दुबे

जैन पांडुलिपियों में विज्ञान 65
□ अनुपम जैन एवं रजनी जैन

संस्कृति संरक्षण, सामाजिक विकास एवं पांडुलिपियाँ 71
□ गणेश कावड़िया

टिप्पणियाँ / SHORT NOTES

विज्ञान एवं नेतृत्व के प्रतीक - गणेश 77
□ आचार्य कनकनन्दी

विज्ञान को भी अविज्ञात विषय 79
□ आचार्य कनकनन्दी

श....श..... कोई है! 83
□ मन्मथ पाटनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाश की सजीवता पर विचार 86
□ अनिलकुमार जैन

कृषि एवं उद्यानिकी फसलों का उत्पादन एवं पर्यावरण संरक्षण 87
□ सुरेश जैन 'मारोरा'

भारतीय अध्यात्म का स्वर्ण कलश - कटवप्र 89
□ स्नेहरानी जैन

जूना कैलोद करताल की जैन प्रतिमाएँ 91
□ नरेशकुमार पाठक

तीर्थंकर महावीर की दो धातु प्रतिमाएँ 93
□ नरेशकुमार पाठक

Hinduism : Civilization of Unity in Diversity 95
□ N. N. Sachdeva

We have to Make the Difference 97
□ Rajmal Jain

Jaina Scholarship : Decline or Growth 101
□ N. L. Jain

प्रगतिवादी जैन अध्येता - डॉ. नन्दलाल जैन 105
□ अनिलकुमार जैन

आख्या / REPORTS

ज्ञानोदय फाउन्डेशन एवं ज्ञानोदय पुरस्कार समर्पण समारोह, इन्दौर 3 मई 03 107
□ सूरजमल बोबरा

पुस्तक समीक्षाएँ / BOOK REVIEWS

महाश्रमण महावीर - एक कालजयी दस्तावेज - पं. सुमेरूचन्द्र दिवाकर 111
□ सूरजमल बोबरा

भगवान महावीर का बुनियादी चिन्तन - डॉ. जयकुमार 'जलज' 113
□ सरोज जैन

गतिविधियाँ 115

इस अंक के लेखक 135

मत - अभिमत 137

अगले अंक में 143

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

सामयिक सन्दर्भ

जब हमने विगत 14 वर्षों में अर्हत् वचन में प्रकाशित सामग्री की समेकित/वर्गीकृत सूचियों के प्रकाशन का निश्चय किया था तब हम स्वयं भी यह अनुमान नहीं लगा सके थे कि यह कार्य इतना क्लिष्ट, श्रम एवं समयसाध्य होगा। हमें यह भी नहीं अनुमान था कि हमारे प्रबुद्ध पाठकों द्वारा यह इतना सराहा जायेगा। किन्तु जब कार्य प्रारंभ कर दिया तब ध्यान में आया कि वर्षानुसार सूचियों का संकलन तो सरल है किन्तु उनका विषयानुसार वर्गीकरण तथा लेखकानुसार सूची तैयार करना श्रम साध्य कार्य है। लेखों से इतर सामग्री को लेखकानुसार सूचियों में समाहित करने की हमारी भावना ने श्रम को बढ़ाया। फलत: हमें 15 (1-2) संयुक्तांक रूप में प्रकाशित करना पड़ा। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की गतिविधियों/उपलब्धियों की पाठकों को संक्षिप्त जानकारी देने के भाव से 20 पृष्ठीय आख्या भी जोड़ दी। हमें यह देखकर आत्मिक संतोष है कि हमारे सुधी पाठकों ने इस 120 पृष्ठीय विशेषांक की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए इसे अत्यन्त उपयोगी पाया है। इन पंक्तियों के लिखे जाने तक हमें एक भी प्रतिकूल टिप्पणी प्राप्त नहीं हुई है। पाठकों के स्नेह एवं उत्साहवर्द्धन हेतु हम आभारी हैं।

विद्यावयोवृद्ध विद्वान पं. नाथूराम जी डोंगरीय ने सुझाव दिया है कि अर्हत् वचन में जैन विज्ञान, इतिहास एवं पुरातत्व के अतिरिक्त अन्य जन-रूचि के विषयों पर भी लेख प्रकाशित किये जायें तो इसका अधिक प्रचार-प्रसार होगा। इस सन्दर्भ में हमारा निवेदन है कि जैन समाज द्वारा प्रकाशित की जाने वाली लगभग 350 पत्र-पत्रिकाओं में अर्हत् वचन की एक अलग पहचान इसकी खास विषयवस्तु के कारण ही है। यह सम्पादकीय रीति-नीति अर्हत् वचन के गत सम्पादक मंडलों, निदेशक मंडलों द्वारा अनुमोदित है। वर्तमान सम्पादकीय परामर्श मंडल के सम्मुख भी यह विषय एक बार पुन: प्रस्तुत किया जाकर पुनर्विचार किया जा सकता है। विगत 14 वर्षों में भी हमने विज्ञान, इतिहास एवं पुरातत्व को वरीयता अवश्य दी है किन्तु अन्य विषयों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण कभी नहीं रहा। गत संयुक्तांक में प्रकाशित सूचियाँ भी यही इंगित करती हैं।

1 जनवरी 03 के बाद निम्नांकित महानुभावों ने सहयोगी सदस्यता स्वीकार कर हमारा उत्साहवर्द्धन किया है हम आपका अर्हत् वचन पाठक परिवार में स्वागत करते हैं -

1. *श्री सिद्धकूट चैत्यालय टेम्पल ट्रस्ट, अजमेर*
2. *श्री विवेक काला, जयपुर*
3. *श्री आदित्य जैन, लखनऊ*

हमारी उत्सव प्रेमी जैन समाज की अकादमिक, शैक्षणिक विषयों में अरूचि के दुष्परिणाम निरन्तर सम्मुख आ रहे हैं। सारे विश्व में जब संस्कृति संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ रही है संगठनात्मक प्रवृत्ति को विकसित कर हर वर्ग अपने सकारात्मक पक्ष को प्रचारित कर रहा है। हमारा जैन समाज विशेषत: दिगम्बर जैन समाज इस विषय में उदासीनता को और बढ़ा रहा है। ***परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी*** *की सतत् प्रेरणा से 1999 में मैंने*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*'**जैन धर्म के विषय में प्रचलित भ्रांतियाँ एवं वास्तविकता**'* शीर्षक पुस्तक में प्रामणिक रूप से 'पाठ्यपुस्तकों में आपत्तिजनक स्थलों का संकलन कर वास्तविक तथ्यों को भी प्रकाशित किया था। **प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी** ने इसमें अनेक सन्दर्भों को उपलब्ध कराया था। माताजी की प्रेरणा से मानव संसाधन विकास मंत्री माननीय श्री मुरली मनोहर जोशीजी एवं NCERT के वर्तमान निदेशक श्री जे. एस. राजपूत से सतत सम्पर्क रखकर उनके विशेषज्ञों के साथ जैन विद्वानों की गोष्ठी करवाकर तथा उन्हें वैकल्पिक पाठ उपलब्ध कराकर दिग. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर ने काम को अंजाम तक पहुँचाया एवं यह सम्पर्क का कार्य आज भी जारी है किन्तु इस बीच में दर्जनों व्यक्ति एवं संस्थायें श्रेय लेने के चक्कर में प्रगट हुईं एवं तिरोहित हो गईं। हस्तगत कार्य को पूर्णता तक ले जाना पूज्य माताजी एवं संस्थान की नीति है। अन्य पूज्य संतों, संस्थाओं एवं व्यक्तियों को इस नीति का अनुसरण करना चाहिये, इससे दिगम्बर जैन समाज के बहुमूल्य संसाधनों का बेहतर उपयोग हो सकेगा। 1987 में एक सुविचारित नीतिगत निर्णय लेकर दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, इन्दौर के अन्तर्गत कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की स्थापना **श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल** द्वारा की गई थी। सतत् निवेश एवं निर्विकल्प संरक्षण से 16 वर्षों में संस्था ने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पहचान बनाई है। परम आदरणीय **संहितासूरि पं. नाथूलालजी शास्त्री** ने भी इसकी प्रशंसा की है। किन्तु कार्य क्षेत्र इतना विशाल है कि एक संस्था इसको नहीं कर सकती है। मात्र शोध संस्थान या शोधपीठ नाम रखना ही पर्याप्त नहीं है, हमें इस नाम को सार्थक करना होगा। प्रत्येक शोध संस्थान अपनी रूचि का क्षेत्र चुनकर उस क्षेत्र में नेतृत्व करते हुए पूरी जिम्मेदारी संभालें। जैसे शौरसेनी प्राकृत के अध्ययन, अनुसंधान के कार्य को गति देने का कार्य **राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज** कुन्दकुन्द भारती, दिल्ली के माध्यम से करा रहे हैं। आगम ग्रंथों के कन्नड़ भाषा में अनुवाद एवं सम्पादित संस्करण तैयार करने की दिशा में पूज्य **भट्टारक चारुकीर्ति स्वामीजी, श्रवणबेलगोला** राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं समाशोधन केन्द्र, श्रवणबेलगोला के माध्यम से प्रयासरत हैं। ये दोनों संस्थायें बधाई की पात्र है।

अर्हत् वचन के प्रस्तुत अंक में हमने 10 लेखों एवं 12 टिप्पणियों को स्थान देकर माननीय लेखकों के श्रम एवं प्रबुद्ध पाठकों की जिज्ञासाओं का सम्मान किया है। इस हेतु पृष्ठ संख्या भी बढ़ाई है। अगले अंक में भी इस क्रम को जारी रखने का प्रयास करेंगे, जिससे वर्ष - 15 में पाठकों को यथेष्ट पठनीय सामग्री प्राप्त हो सके। गुणात्मकता में वृद्धि हमारी प्रथम प्राथमिकता है इसमें माननीय लेखकों का सहयोग अपेक्षित है। हम प्रयास कर रहे हैं कि प्रकाशनार्थ प्राप्त लेखों के बारे में स्वीकृति / अस्वीकृति की समयावधि 6 माह तक सीमित की जा सके एवं प्रकाशन अवधि भी 12 माह से कम हो जाये। किन्तु लेखक भी अपने लेख निर्धारित प्रारूप में ही भेजें एवं निर्णय होने तक अन्यत्र प्रकाशनार्थ न भेजें तभी हम इसे अग्रणी शोध पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित कर सकेगें।

अन्त में मैं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के सभी माननीय निदेशकों, अर्हत् वचन परामर्श मंडल के सदस्यों, लेखकों, प्रबुद्ध पाठकों एवं अपने कार्यालयीन सहयोगियों के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ जिनके सहयोग से ही प्रस्तुत अंक इस रूप में आपके सामने आ रहा है।

आपके पत्रों की सदैव की भाँति प्रतीक्षा रहेगी।

डॉ. अनुपम जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 3, 2003, 7 - 16

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

समस्तावलोका निरस्ता निदानी, नमो देवि वागीश्वरी जैन वानी ॥

■ सूरजमल बोबरा *

सारांश

10 - 11 वीं शताब्दी में धारा नगरी दिगम्बर जैन धर्म का एक प्रमुख केन्द्र थी। स्वयं राजा भोजदेव परमार (1010 - 1053 ई.) ने अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था। उस काल की प्रतिष्ठित मूर्तियाँ मालवांचल में यत्र - तत्र प्राप्त होती हैं।

वर्तमान में बहुचर्चित धार (धारा नगरी) की भोजशाला को जैन साहित्य में सरस्वती - कण्ठाभरण - प्रासाद, वाग्देवी कुल सदन या भोजशाला कहा गया है। 10 - 11 वीं शताब्दी में विभिन्न माध्यमों में उपलब्ध जैन सरस्वती की प्रतिमाएँ इस कालखंड में मालवांचल सहित सम्पूर्ण देश में जैन परम्परा में सरस्वती उपासना के पुष्ट प्रमाण हैं।

ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित भोजशाला की वाग्देवी की प्रतिमा मूर्ति के दाहिने हाथ के ऊपर के भाग में तीर्थंकर मूर्ति का अंकन एवं अन्य शिल्पशास्त्रीय तथा साहित्यिक साक्ष्य यह सिद्ध करते हैं कि यह जैन परम्परा की मूर्ति है।

शिल्प प्रतीक होते हैं किसी परंपरा के। परंपराएँ यूँ ही आकार नहीं ले लेती हैं। उसकी पृष्ठभूमि में एक जीवंत जीवन शैली होती है जो वर्षों बाद किसी शिल्पी या कलाकार के माध्यम से मूर्त रूप लेती है। जीवन शैली को ही हम संस्कृति कहते हैं। तभी तो जब जैन जीवन शैली की अभिव्यक्ति हुई तो तीर्थंकर की मूर्ति का निर्माण हुआ और वेदानुयायी जीवन शैली की अभिव्यक्ति हुई तो रौद्ररूप धारी शंकर व ब्रह्मा की मूर्तियों का निर्माण हुआ। मिस्र की जीवन शैली ने अभिव्यक्ति पाई तो पिरामिड बने और यह क्रम जारी है। विश्व संस्कृति के शिल्प व कला प्रतीक दिखने वाले चेहरे हैं जो जन - चिंतन को अभिव्यक्त करते हैं। यह इतिहास के घटनाक्रम के प्रमाण भी हैं। भारत जैसे विशाल देश और चिंतन की उर्वरा भूमि में कई क्षेत्रीय परंपराएँ भी प्रभावी रही हैं और तदनुकूल शिल्पों, स्थापत्यों और कला प्रतीकों के निर्माण के प्रमाण हम पाते हैं। राज्याश्रय, श्रेष्ठि व धर्माचार्यों के आश्रय ने इन शिल्पों व स्थापत्यों की परंपराओं को परिभाषित करने में महत्वपूर्ण भागीदारी की।

यहाँ हम विशेषकर मालवा क्षेत्र को दृष्टि में रखकर विचार करेंगे। महावीर के मालवा आगमन और दक्षिण की ओर जाने वाले महत्वपूर्ण मार्ग के रूप में मालवा के स्वरूप के संदर्भ तो बहुत से हैं किन्तु प्रमाण पूरी तरह जुट नहीं पाए हैं। फिर भी एम.डी. खरे[1] के इस अभिमत में सत्यता है कि 'The fertile fields and forests of Malwa produced and nourished architectural and artistic traditions, flowering under various dynasties through out the ages. That is why it is rightly been called the melting pot of cultures' भारत की हृदय स्थली होने के कारण देश में पनपी सभी सभ्यताओं और कलाओं का प्रभाव यहाँ के जन - जीवन पर सहजता से देखा जा सकता है।

मालव क्षेत्र के ऐसे ही एक प्रभावी राज्यवंश से इन पृष्ठों में हम भेंट करेंगे। **उपेन्द्र** अपरनाम **कृष्णराज** या **गजराज** ने 9 वीं शती के उत्तरार्ध में मालवा क्षेत्र की धारा नगरी में परमार राज्य की स्थापना की थी। उसका उत्तराधिकारी **सीयक द्वितीय** उपनाम हर्ष प्रतापी नरेश और स्वतंत्र राज्य का स्वामी था। अपने पोषित पुत्र **मूंज** को राज्य देकर

* निदेशक - ज्ञानोदय फाउन्डेशन, 9/2 स्नेहलतागंज, इन्दौर - 452 003

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

974 ई. के लगभग सीयक परमार ने एक जैनाचार्य से मुनि दीक्षा लेकर शेष जीवन एक जैन साधु के रूप में व्यतीत किया था। वाक्पतिराज मूंज अपरनाम **उत्पल राज** बड़ा वीर, पराक्रमी, कवि और विद्या प्रेमी था। प्रबन्धचिंतामणि आदि जैन ग्रंथों में मूंज के संबंध में अनेक कथाएँ मिलती हैं। वह अनेक संस्कृत कवियों का प्रश्रयदाता था जिनमें जैन कवि धनपाल भी था। दिगम्बर जैनाचार्य **महसेन** और **अमितगति** का वह बहुत सम्मान करता था। मूंज जैनी था या नहीं यह तो प्रमाणित नहीं होता पर जैन धर्म का पोषक अवश्य था। सन् 995 ई. के लगभग उसकी मृत्यु हुई। उसका उत्तराधिकारी उसका अनुज **सिन्धुल** या **सिन्धुराज** (996 - 1009 ई.) था जिसके विरुद्ध **कुमारनारायण** और **नवसंवाहक** थ। 'प्रद्युम्नचरित्र' के कर्त्ता मुनि महसेन का वह गुरुवत आदर करता था। उसका उत्तराधिकारी **भोजदेव परमार** (1010 - 1053 ई.) प्राचीन वीर विक्रमादित्य की ही भांति भारतीय लोक कथाओं का एक प्रसिद्ध नायक है। मालवा की राजधानी उज्जैन से धार स्थानान्तरित की गई थी व मांडु व धार परमार शक्ति के प्रमुख केन्द्र थे।[2] वह वीर प्रतापी होने के साथ - साथ परम विद्वान, सुकवि, कलामर्मज्ञ, विद्वानों का प्रश्रयदाता और जैन धर्म का पोषक था। उस के समय में धारानगरी दिगम्बर जैन धर्म का एक प्रमुख केन्द्र थी और राजा जैन मुनियों एवम् विद्वानों का बड़ा आदर करता था। अमितगति, माणिक्यनन्दि, नयनन्दि, महापण्डित प्रभाचंद्र, आचार्य शांतिसेन, कवि धनपाल, सेनापति कुलचंद्र इन सब जैन महर्षियों का भोज बहुत आदर करता था। यह सब विद्वान मिलकर भोज की राज्य सभा का स्वरूप बनाते थे। बाद में मुसलमान लेखकों ने भी भोज की सफलताओं का सम्मानपूर्ण वर्णन किया है। भोज ने जैन मंदिरों का निर्माण भी कराया था। उस काल में प्रतिष्ठापित अनेक मूर्तियाँ मालवा प्रदेश में यत्र - तत्र प्राप्त होती हैं।

राजधानी धारानगरी को भोज देव ने अनेक सुन्दर भवनों से अलंकृत किया था। उसने वहाँ सरस्वतीसदन या शारदासदन नामक एक महान विद्यापीठ की भी स्थापना की थी। इसी शारदा सदन को लेकर अनावश्यक विवाद पैदा कर दिया गया है। धारानगरी भारतीय संस्कृति की प्रतीक नगरी थी। उसे आक्रांता गतिविधियों के साथ जोड़ना इतिहास का निरादर करना है। यह विद्यापीठ कोई साधारण केन्द्र नहीं था। यह विद्यापीठ राजाभोज की सांस्कृतिक कार्य स्थली थी। प्रख्यात विद्वान पद्मश्री डॉ. वि. श्री. वाकणकरजी ने शारदा भवन का वर्णन करते हुए लिखा है - **यहाँ विद्याध्ययन एवम् विद्वत् सभा का आयोजन होता रहता था। परिजातमञ्जरी में इस सभागृह का स्पष्ट वर्णन किया गया है। इस भवन को भारही (भारती भवन) कहकर सम्बोधित किया गया है। भारती भवन के प्रांगण में नाट्य समारोह होते रहते थे। भोज ने स्वयं ''समरांगण सूत्रधार'' में राज्यभवनों, सभाभवनों एवम् मंदिरों का वर्गीकरण करते समय सभाभवन में 'नन्दा, जया, पूर्णा, भविता, प्रवरा, विकरा' आदि प्रकार के कक्ष बताए हैं। सम्भवत: जया कक्ष में वाग्देवी की प्रतिष्ठा की गई थी।**[3]

उपर्युक्त धारणा का आधार भोजशाला का आकार है। वह 175 फुट लंबी और 160 फीट चौड़ी होना चाहिए। आज तो आयताकार पीठ ही बचा है। शेष जो बचा है वह तो मुस्लिम आक्रमण के पश्चात का पुनर्निर्माण है।[4] इसे अतिक्रमण माना जाना चाहिए। ग्रंथकारों का उल्लेख है कि **'सरस्वतीकण्ठाभरण - प्रासाद'** में धनपाल के काव्य की पट्टिकाएँ भित्ती पर लगाई गई थीं। **'प्रभावक चरित्र'** में **'सूराचार्य चरित'** के उल्लेखानुसार यह पाठशाला थी। इसका तथा भोजराज निर्मित व्याकरण का यहाँ अभ्यास होता था। आज भी वहाँ सैकड़ों शिलालेख मूल कक्ष में फर्श पर लगे हुए हैं।[5] इस प्रासाद को सर्वसाधारण **'भोजशाला' कहते हैं किन्तु प्रभावक चरित्र में इसे 'वागदेवीकुल सदन'** या **'भोजसभा'** कहा है। तिलक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंजरी की प्रस्तावना में इसे 'सरस्वती - कण्ठाभरण प्रासाद' कहा है। अत: स्पष्ट है कि इस शारदा भवन / वाग्देवी कुल सदन / सरस्वती कण्ठाभरण प्रासाद की अधिष्ठात्री देवी - वाग्देवी या सरस्वती थी। यह वाग्देवी कुल सदन भोज की धारा नगरी का मुकुट था। वीर, विद्वान, धर्मपरायण भोज, उपर वर्णित विद्वानों का समूह, ज्ञान को समर्पित शारदा सदन व भोजसागर के निकट बसे धार्मिक स्थान यह चतुष्कोण प्रतिस्पर्धी राजाओं के मन में ईर्ष्या पैदा करते रहते थे। उनके मन में ऐसी ज्ञानोन्मुख नगरी बसाने की लालसा होती थी।

भोज और धारा न केवल मालवा बल्कि समस्त भारत में आख्यानों का आधार बन गए थे। एक संदर्भ स्मरण के अनुकूल है कि - भोज के राज्याशासन के अंतिम वर्षों में कलचुरि वंशी **कर्ण** और गुजरात के चालुक्य वंशी नरेश **भीम** ने संयुक्त रूप से परमार राज्य पर हमले किए। भोज बीमार पड़ गया और उसका देहावसान हो गया। धार नगरी असहाय हो गई। किन्तु ऐसा कोई प्रमाण नहीं कि किसी भारतीय राजा ने आक्रमण के दौरान किसी सांस्कृतिक स्थान को नष्ट किया हो। धारा की सांस्कृतिक श्रेष्ठता को देखकर चालुक्य आक्रमणकर्त्ता अभिभूत हो गए थे। चौलुक्य नरेश जयसिंह ने (भीम के पौत्र और गुजरात राज्य के उत्तराधिकारी) (1094 से 1143 ई.) राजा भोज परमार की धारा नगरी की भांति अन्हिलपाटन को ज्ञान और कला का अनुपम केन्द्र बनाने का निश्चय किया और वहाँ एक विशाल विद्यापीठ की स्थापना की। सुप्रसिद्ध श्वे. जैनाचार्य 'कलिकाल सर्वज्ञ' उपाधिधारी - 'हेमचंद्र सूरि' को उसने अपने आश्रय में होने वाली साहित्यिक प्रवृत्तियों के नेतृत्व का भार सौंपा।[6]

धारा नगरी के परमार वंश ने जैन - विद्वानों को प्रश्रय दिया और ज्ञान के विद्यापीठ को वाग्देवी को समर्पित किया। यह मूर्ति भी मूर्ति भंजकों के आतंक का शिकार हुई और भोजशाला के खण्डहरों में फेंक दी गई। 100 - 125 वर्ष पूर्व किसी अंग्रेज अधिकारी ने धारा के खण्डहरों में यह प्रतिमा पाई तथा उसे वह अपने साथ इंग्लैंड ले गया। वहाँ उसका पूर्ण संग्रह हिन्दुस्टूअर्ट नामक व्यक्ति के पास गया तथा उसने वह क्वीन्स म्यूजियम को दिया। यही संग्रहालय आगे चलकर ब्रिटिश म्यूजियम में परिवर्तित हो गया।[7]

श्री वाकणकरजी ने 1961 के अगस्त मास में 28 तारीख को ब्रिटिश म्यूजियम में स्वयं इस मूर्ति को देखा, इसके फोटो लिए और पादपीठ पर अंकितलेख का पेंसिल रबिंग निकाला।[8] पादपीठ पर अंकित लेख कई स्थानों पर कट गया है किन्तु धारा नगरी, भोजराजा, विद्यापीठ व वाग्देवी शब्द स्पष्ट हैं और कई विद्वानों द्वारा पढ़े गए हैं। वाकणकरजी का यह मूल्यांकन विचारणीय है कि **'संभव है कि यह प्रतिमा निर्माण में जैन प्रभाव रहा हो और वह भोज सभा के स्वरूप को देखने पर असम्भाव्य भी नहीं है।'** एक जगह उन्होंने फिर लिखा है **'वाग्देवी या विद्याधरी के जैन स्वरूप में सिंह वाहिनी है तथा उसके एक बालक भी होता है, अत: यह प्रतिमालक्षण जैनाग्रह से समाविष्ट किया गया हो।'** प्रयास करने पर भी वाकणकरजी का लिया वह फोटो प्राप्त नहीं हो सका किन्तु उनकी सहयोगी श्रीमती वाकणकरजी व श्री भटनागरजी ने इस आलेख के साथ प्रकाशित चित्र को देखकर स्पष्ट रूप से कहा कि यह फोटो उसी सरस्वती की मूर्ति का ही है।

श्री Mr. Kirti Mankodi (श्री किर्ती मंकोडी) ने सूचना दी है कि 1880 ई. में ब्रिटिश म्यूजियम ने एक देवी का शिल्प प्राप्त किया था[9] जो धार के खंडहरों से प्राप्त हुआ था। शिल्प के चित्र का 'रूपम' में 1924 में प्रो. ओ. सी. गांगुली व राय बहादुर के. एन. दीक्षित ने पादपीठ पर अंकित 4 लाईन के लेख सहित प्रकाशन किया। उन्होंने राजा परमार भोज का नाम संवत् 1091 (1034 ई.) और वाग्देवी जो सरस्वती का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्यायवाची है पढ़ा जो इस मूर्ति को सरस्वती / वाग्देवी की मूर्ति सिद्ध करता है। मूलत: यह मूर्ति जैन परंपरा के सरस्वती शिल्पों से जुड़ी है।

भिन्न - भिन्न देवी - देवताओं, यक्ष - यक्षियों के शिल्पों में हम कुछ भिन्नता देखते हैं। यह भिन्नता कई कारणों से होती है। मूर्तिकार की कार्यशैली व उसकी सोच, मूर्ति बनवाने वाले का दृष्टिकोण, मूलसामग्री - जिससे मूर्ति निर्मित हो रही है, से मूर्ति का स्वरूप आकार लेता है और उसका प्रभाव शिल्प पर दिखाई देता है। यहाँ तक कि तीर्थंकरों की मूर्तियों के निर्माण में भी अंतर दिखाई देता है - उसका कारण भी यही है। अत: सरस्वती / वाग्देवी की मूर्तियों पर अंकन की भिन्नता का आधार भी यही है। यह शिल्प खंडित हो गए हैं या कर दिए गए, राष्ट्रीयता के अभाव में विदेश पहुँचा दिए गए, जहाँ कहीं भी यह शिल्प पहुँच गए हैं उन्हें अनावश्यक तर्कों में उलझाकर सांप्रदायिकता की धुंध में ढांक दिया गया। यह हमारी ऐसी भूल है जिसे इतिहास कभी क्षमा नहीं करेगा। बीते को भूला देने के अतिरिक्त हमारे पास कोई मार्ग नहीं है - किन्तु अब तो हम जागरूकता पूर्वक अपने दायित्व का अनुभव करें।

इतिहास को पलट देने का आग्रह प्रत्येक आक्रांता के हृदय में रहता है। उसके हृदय में विजेता बनकर विजीत स्थान को अपने आग्रहों के अनुकूल बदल देने का विचार रहता है। उस स्थान की मूल संस्कृति व चिंतन धारा को वह बिजली के बल्ब के समान बदल देने का निर्णय करता है। वह सोचता है संस्कृति के प्रत्येक चिन्ह को नष्ट कर दो, प्राचीन चिंतन के रिकार्ड (सांस्कृतिक ग्रन्थ) जला दो, विद्या के पीठ भूमिगत कर दो। पर क्या यह सभंव है? न सिकन्दर ऐसा कर पाया, न मोहम्मद गौरी ऐसा कर पाया, न चंगेज खाँ ऐसा कर पाया, न बाबर ऐसा कर पाया। वे केवल इतना कर पाये कि उन्होंने कुछ खंडहर बना दिये, अपने हृदय के विकार को बताने वाले कुछ प्रस्पिर्धी निर्माण करा दिये किन्तु संस्कृति की धाराओं को नष्ट करना किसी के बस में नहीं। क्या मूर्तियों - मन्दिरों को नष्ट कर देने से इतिहास बदल जायेगा? संस्कृति अपना रूख बदल देगी। भारत में प्रमाण तो यह है कि जब - जब मूर्ति और मन्दिर तोड़े गये उससे कई गुना अधिक निर्मित हुए - इसी का परिणाम है कि आज भारत में पूजा स्थल रहवासी स्थानों की तुलना में अधिक हैं।

यह समीक्षा इसलिये दोहराना आवश्यक है क्योंकि यह यक्ष प्रश्न सामने है कि धारा की, शारदा सदन की, भोजशाला की अधिष्ठात्री वाग्देवी की मूर्ति को खंडहर (शारदा सदन के खंडहरों) में फेंक देने से क्या इतिहास सदैव के लिये मौन हो गया? क्या कोई यह सिद्ध कर सकेगा कि भोजराज था ही नहीं? यदि भोजराज था तो शारदा सदन भी था और वाग्देवी की मूर्ति भी थी। परम्परा के प्रमाण समस्त मालवा अंचल में बिखरे पड़े हैं। बदनावर, नलकच्छपुर (नालछा), बड़नगर, मांडू और स्वयं धार के ऐतिहासिक स्रोत एक पुष्ठ सांस्कृतिक परम्परा का प्रमाण हैं। भोज के पूर्व और भोज के बाद (जयसिंह प्रथम 1053 - 1060 ई.), राजा नरवर्म देव (1104 - 1107), विन्ध्य वर्मा, सुभट वर्मा, देवपाल और जैतुगिदेव (1166), अर्जुन वर्मा (1210 - 1218) के शासन काल में यह परम्परा पल्लवित रही। पं. आशाधर सूरि ने 1225 से 1248 के बीच शांत नलकच्छपुर (नालछा) में रहते हुए विविध विषयों के 40 ग्रन्थों की रचना की। ध्यान रहे मूर्तिभंजक मोहम्मद गोरी ने 1193 ई. में पृथ्वीराज का अंत किया था। दिल्ली में लूटमार व आधिपत्य करने के पश्चात उसने अजमेर पर चढ़ाई की व लूटमार की। इसी के परिणाम स्वरूप आशाधर सूरि के पिता संलक्षण सपरिवार धारा नगरी आ बसे थे। धारा नगरी उस समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी विद्वान व पंडित देवचन्द्र, मुनि उदयसेन, वादीन्द्रविशाल कीर्ति, यतिपति मदन कीर्ति, भट्टारक विनय चन्द्र, कवि अर्हदास, पं. जाजाक, विल्हणकवीश, बालसरस्वती महाकवि मदनोपाध्याय, छाहड़ आदि की योग्यता से परिपूर्ण थी। वाग्देवी उस समय भी धार की अधिष्ठात्री देवी थी। धनपाल की संस्कृत में लिखी तिलक मंजरी परमार राजा को 'जैन धर्म' को समझने के लिये लिखी गई थी जिसमें उस समय के जन-जीवन और इतिहास संबंधी कई महत्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध हैं। हलायुध, पद्मगुप्ता, उवाता, छिताया आदि परमार संसद को गरिमापूर्ण बनाये रखते थे।

भवन शास्त्र व मूर्ति शास्त्र के विद्वान वर्तमान में मांडू व धार में स्थित भवनों का वर्गीकरण करते हुए कहते हैं कि प्रथम स्तर पर उस समय मन्दिरों को धराशायी किया गया और उन्हें मस्जिदों में बदला गया। चार मस्जिदें - दो धार में और दो मांडू में - इसी कार्यवाही का परिणाम हैं। कमालमौला मस्जिद - 1400 ई. व लाट मस्जिद 1405 ई. धार में तथा दिलावर खान मस्जिद 1405 ई. व मलिक मुगिथ की मस्जिद मांडू में इइ कार्यवाही को प्रमाणित करते हैं कि इस बात का विशेष प्रयत्न किया गया था कि मूल मन्दिर के प्रमाणों को इस प्रकार छिपा दिया जाये कि वे दिखाई न दें। प्राचीन मन्दिरों के आर्च (उन्हें पुरानी मांडू के परमारकालीन मन्दिरों को तोड़कर लया जाना चाहिये) मस्जिदों में जड़ दिये गये। इन बातों का स्मरण इसलिये करना पड़ रहा है कि इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण हैं कि कमाल मौला मस्जिद के पहले वाग्देवी सदन शारदा सदन था व वाग्देवी उसकी अधिष्ठात्री देवी थी। कमाल मौला मस्जिद के पहले प्राणवान धारा नगरी थी, जिसके कण-कण में सैकड़ों साल से चली आ रही राजा भोज के प्रश्रय में भारतीय संस्कृति का वास था, जिसे मनथलेन ने वाग्देवी के शिल्प में रूपाकार किया था। क्या हृदय में बसी उस वाग्देवी को कोई भारतवासी के हृदय से निकाल सकता है। किसी राजनेता, धर्मनेता, कानून व आन्दोलन में यह शक्ति नहीं जो इसे संभव कर सके।

संदर्भित वाग्देवी मूर्ति का मूल्यांकन करते समय विद्वानों की दृष्टि से कुछ बातें छूट गई है जिनमे एक महत्वपूर्ण है कि (मूर्ति के) दाहिने हाथ के ऊपर कोने में तीर्थंकर मूर्ति का अंकन है। जैन सरस्वती की मूर्ति के साथ तीर्थंकर की मूर्ति सभी सरस्वती मूर्तियों में उपलब्ध है। सरस्वती की उपासना भारतीय जीवन का एक प्रमुख अंग हैं। वह भारतवासी के ज्ञान को समर्पित होने का प्रतीक है। वह ज्ञान की देवी है। महाभारत, वाजसनेयी संहिता, ऋग्वेद, शिवप्रदोष स्तोत्र, मार्कण्डेय पुराण सबमें इसकी ज्ञान की देवी के रूप में वंदना की गई है। जैन चिंतन में तो आगम उपासना व देवोपासना को समकक्ष व समानार्थी माना गया है।

जैन परम्परा में ज्ञान की देवी श्रुतदेवी का प्राचीनतम स्मरण मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त श्रुतदेवी (132 ई.) की मूर्ति के रूप में सुरक्षित है। सरस्वती की दो मूर्तियों का अंकन खजुराहो के पार्श्वनाथ मंदिर के मंण्डपद्वार की छत में भी है। इसी मंदिर के पश्चिम की तरफ छत में दो सरस्वती के अंकन और भी हैं। हुम्च्चा व बगाली की दक्षिण भारत की सरस्वती मूर्तियाँ भी प्रसिद्ध हैं। पल्लु (राजस्थान) की मूर्तियाँ तो अत्यंत जीवंत हैं। 12 वीं शताब्दी की जगदेव की सरस्वती मूर्ति (1153 ई. गुजरात) अपनी मनोज्ञता के लिए प्रसिद्ध है।

विद्या देवी - अच्युता हिंगलाज गढ़ 10 वीं सदी की मूर्ति हमें सरस्वती की धारणा के निकट पहुँचाती है। विजवाड़ की जैन श्रुत देवी का 11 वीं शती का शिल्प भावों की दृष्टि से उसी परंपरा का है जिसमें धार की मूर्ति बनी। श्रुत देवी की अलीराजपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(झाबुआ) की कांस्य प्रतिमा का भावाचित्रण भी उसी प्रकार का है। भावाभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से विचार करें तो मातृभाव व ज्ञान गरिमा से पूर्णता का भाव इन शिल्पों से स्पष्ट है। इन शिल्पों के निर्माताओं का परिचय विशेष रूप से उपलब्ध नहीं है। लासएंजिल्स की सरस्वती मूर्ति के शिल्पी जगदेव थे। वे गुजरात के प्रसिद्ध शिल्पकर्मी थे व व्यावसायिक रूप में काम करते थे। भारत में शिल्पियों व कलाकारों की पारिवारिक परंपरा होती है। राजस्थान में ऐसे ही व्यावसायिक शिल्प-कर्मियों का समूह 'माथेन' रूप से जाना जाता था।[10] धार वाग्देवी के सूत्रधार का नाम साहिरसुत मनथलेन (मणथलेन) है। तो कहीं यह शिल्पी माथेन परंपरा से तो नहीं है। 11 वीं-12 वीं-13 वीं शताब्दी में जगदेव व मनथलेन परिवारों को सरस्वती की मूर्तियों के निर्माण में महारथ हासिल थी। हो सकता है महाराजा भोज ने इसी कारण मनथलेन को अपने विद्यापीठ के लिए वाग्देवी की मूर्ति निर्माण का कार्य सौंपा हो।

मध्यभारत की सरस्वती मूर्तियों के अध्ययन करने वाले यह जानते हैं कि 11 वीं व 12 वीं शताब्दि में सरस्वती की मूर्तियाँ विभिन्न माध्यमों में गढ़ी गईं-यह स्वयम् प्रमाण है कि जैन सरस्वती जनमानस में समाई हुई थी।

वाग्देवी/सरस्वती की मूर्तियों की जैन परंपरा के अनुकूल निर्माण में एक महत्वपूर्ण बात है कि उस पर तीर्थंकर का अंकन अवश्य होता है और ब्रिटिश म्यूजियम में रखी इस मूर्ति पर तीर्थंकर का अंकन है - अत: हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि यह जैन परंपरा की मूर्ति है। भोजराज स्वयं जैन धर्म के पोषक थे अत: उनके विद्यापीठ में जैन परंपरा की वाग्देवी का प्रतिष्ठित होना स्वाभाविक है। इतिहास, शिल्पशास्त्रीय अध्ययन तथा साहित्यिक संदर्भ सभी ब्रिटिश म्यूजियम में रखी मूर्ति को जैन सरस्वती मूर्ति सिद्ध करते हैं।

बनारसीदासजी ने 17 वीं शताब्दी में वाग्देवी के वंदन में लिखा था -

'अकोपा अमाना अदम्भा अलोभा श्रुतज्ञान-रूपी मतिज्ञान शोभा।
महापावनी भावना भव्यमानी, नमो देवी वागीश्वरी जैन वानी॥
अशोका मुदेका विवेका विधानी, जगज्जन्तुमित्रा, विचित्रा वसानी।
समस्तावलोका निरस्ता निदानी, नमो देवि वागीश्वरी जैन वानी॥'

यदि भोजराज की आत्मा और मस्तिष्क का कोई ग्राफ मिल सके तो वह भी यही बताएगा कि उपरोक्त भावों के साथ ही वे वाग्देवी की मूर्ति का वंदन करते थे।

सन्दर्भ -

1. M.D. Khare-Malwa through the ages-page 7-Para III
2. वही - Page 5, Para III
3. वि.श्री. वाकणकर - अभिनन्दन ग्रंथ, पृ. 55, पैरा - 1
4. वही, पृ. 56, पैरा - 1
5. वही, पृ. 56, पैरा - 2
6. डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन - प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरूष और महिलाएँ, पृ. 251, पैरा - 1
7. वि. श्री वाकणकर, अभिनन्दन ग्रंथ, पृ. 57, पैरा - 1
8. वही, अभिनन्दन ग्रंथ, पृ. 58, पैरा - 1
9. Kiriti Mankodi-Malwa through the ages, Page 118, Para-I
10. Pratipaladitya Pal-Jain Art from India, Page 23-24, Para IV & I

संशोधनोपरांत प्राप्त - 28.07.03

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धार में स्थित वाग्देवी – सरस्वती की प्रतिमा

जिनदेव की मूर्ति ←

अंकुश ←

→ विद्याधर

→ इस हाथ की अनामिका व हथेली में कोण को ध्यान में रखें तो इसमें अक्षमाला होने की संभावना है।

भोजराज ←

→ बालक

श्रीफल लिये हुए महाकुमार ←

→ सिंह

→ पादपीठ पर अभिलेख ↓

ऊ(ॐ) श्रीमद्भोज नरेन्द्रचन्द्रनगरी विद्याधरी.......भो......नधिमास......स्म खलु सुखं (प्राप्यान) याप्सर:वाग्देवी प्रतिमा विधाय जननीम् यस्यार्जितां त्रयी ....फलाधिका.......धारा.......मूर्ति शुभां निर्ममे।

इति शुभम् सूत्रधार हिरसुत मनथलेन (मणथलेन) घटितां विटिका शिवदेवेन लिखित मिति संवत् 1091.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

PETER AND SUSAN STRAUSS
बलुआई लाल पत्थर में निर्मित
$33\frac{3}{4}$ इंच (85.7 से.मी.)
मध्यप्रदेश : 1061 ई.

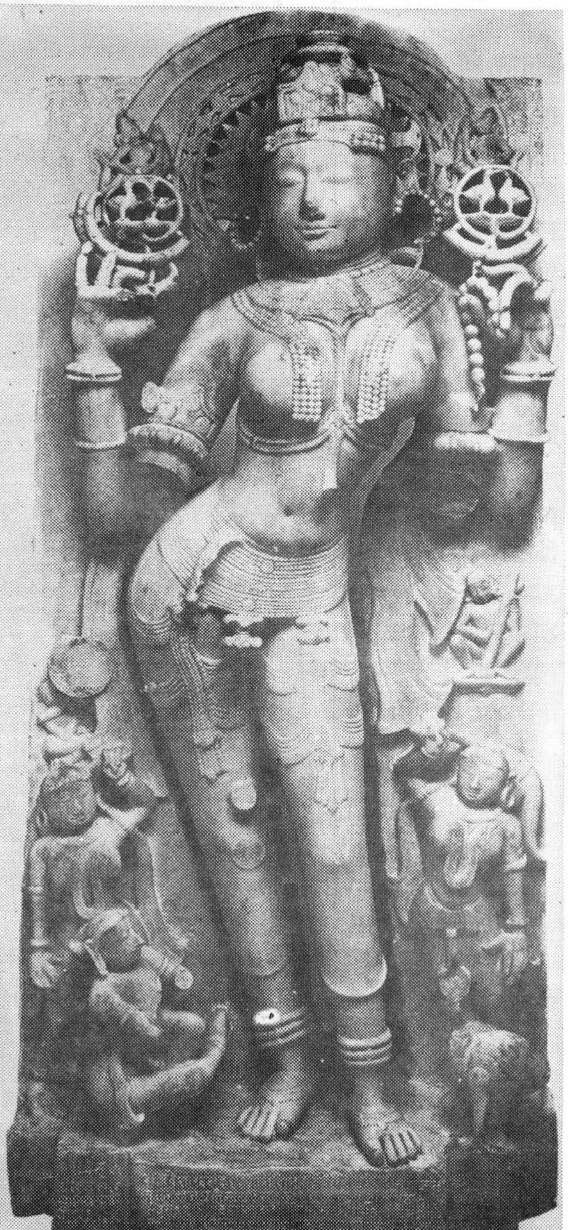

Losangles County Museum of Art
Gift of Amma Bing Arnold
श्वेत संगमरमर में निर्मित $47\frac{1}{4}$ इंच (120 से.मी.)
गुजरात : 1153 जगदेव निर्मित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

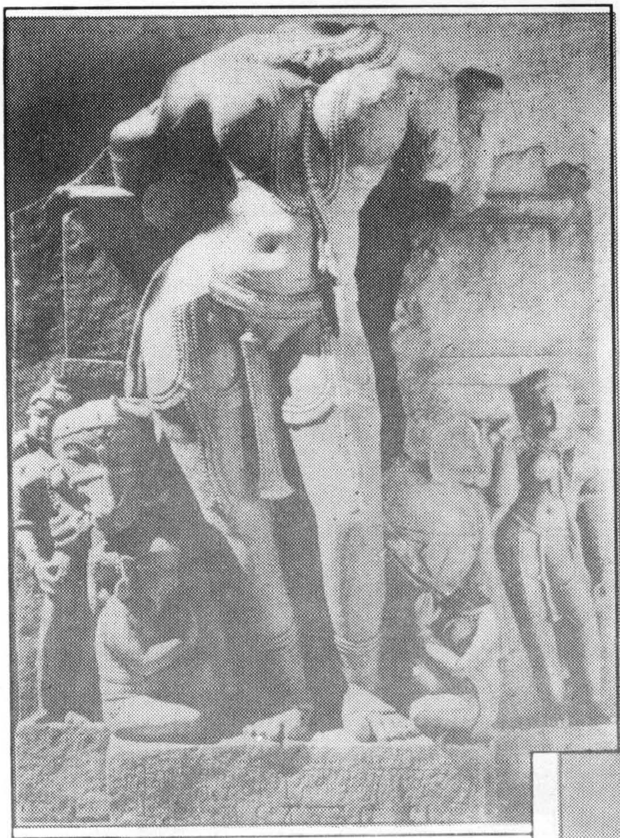

विद्यादेवी अच्युता - हिंगलाजगढ़, जिला मन्दसौर
ईस्वी सन् 1018 - केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर

जैन श्रुतदेवी - विजवाड़ जिला देवास
लगभग 11 वीं शती ईस्वी
केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

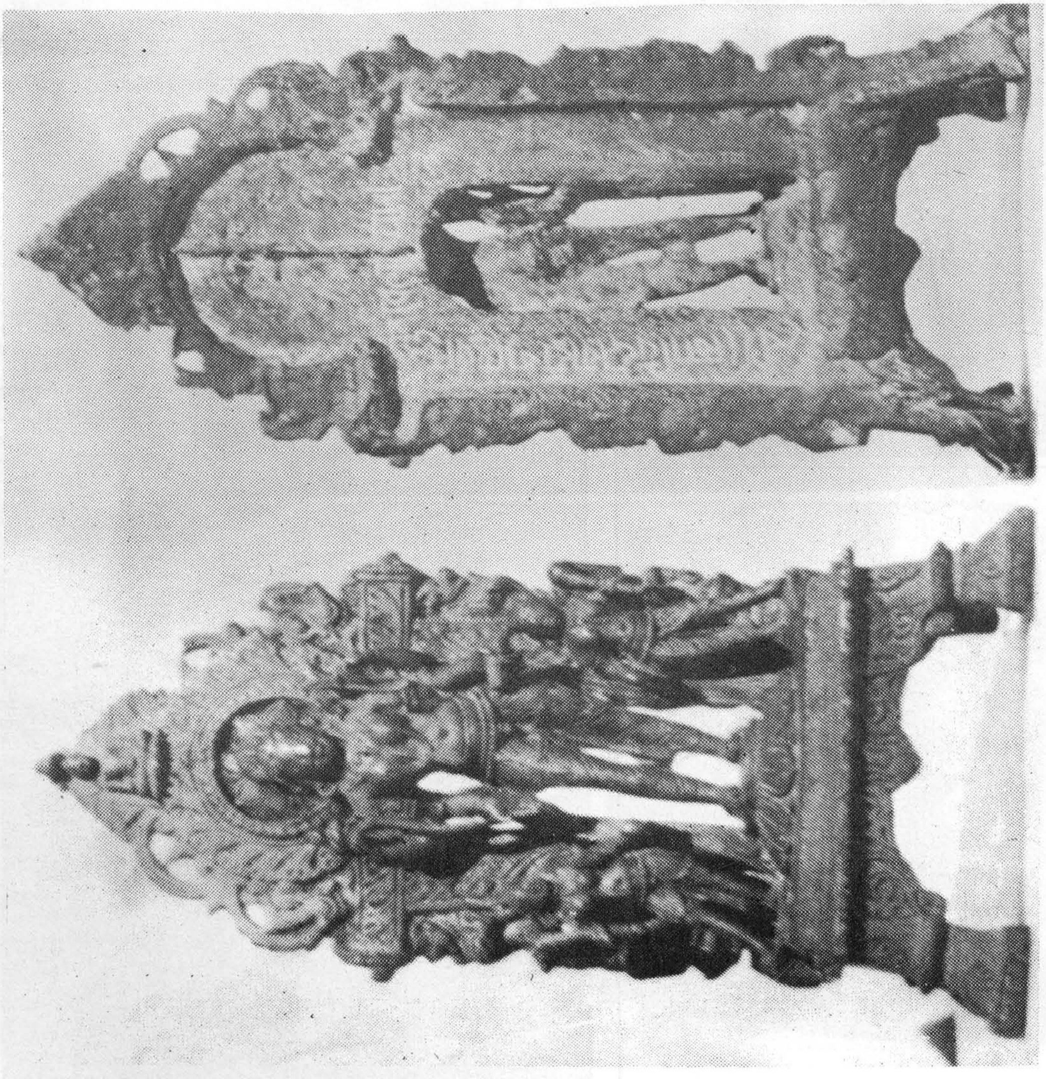

जैन श्रुतदेवी कांस्य प्रतिमा, अलीराजपुर, जिला झाबुआ

लगभग 11 - 12 वीं शती ईस्वी - केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 3, 2003, 17 - 22

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

पर्यावरण संरक्षण के परम्परागत तरीके

■ आचार्य कनकनन्दी *

सारांश

प्रस्तुत आलेख में प्राचीन साहित्य में उपलब्ध पर्यावरण संरक्षण विषयक सन्दर्भों को संकलित करने के उपरान्त जैन गृहस्थों एवं मुनियों की चर्या (जीवन पद्धति) से होने वाले पर्यावरण संरक्षण की चर्चा की गई है। ***सम्पादक***

'विश्व भरण पोषण करे जोइ, ताकर भारत असो होई'

अर्थात् जो राष्ट्र/देश विश्व को ज्ञान - विज्ञान, दर्शन - आध्यात्म, गणित, अहिंसा, विश्वशांति, विश्वमैत्री, पर्यावरण सुरक्षा, परस्परोपग्रहो जीवानाम्, वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वजीवसुखाय - सर्वजीवहिताय, राजनीति, कानून, समाज व्यवस्था, अभ्युदय - निश्रेयस् आदि सर्वोदयी सिद्धान्त/सूत्र देकर विश्व का भरण - पोषण करे उसे भारत कहते हैं। इसीलिये तो भारत को विश्वगुरु, सोने की चिड़िया, घी - दूध की नदी बहाने वाला देश कहा गया है।

भारत के तीर्थंकर, बुद्ध, ऋषि, मुनि आदि महान् आध्यात्मिक वैज्ञानिकों ने आध्यात्मिक अनन्त ज्ञान से अखिल विश्व के समस्त तत्वों के समस्त रहस्यों को समग्रता से, पारदर्शिता से, परिज्ञान करके विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया। ये सत्य/तथ्य वैश्विक एवं त्रैकालिक होने से सदा - सर्वदा - सर्वत्र नित्य नूतन, नित्य पुरातन, समसामयिक, प्रासंगिक जीवन्त हैं। वे प्रकृतिज्ञ होने के कारण प्रकृति की सुरक्षा - संवृद्धि सम्बन्धी उनका ज्ञान भी उपरोक्त प्रकार का है।

भारतीय ज्ञान - विज्ञान, संस्कृति, अध्यात्मिका के साथ - साथ वैश्विक/प्राकृतिक होने के कारण भारतीय परम्परा में अखिल जीव जगत् एवं सम्पूर्ण प्रकृति की सुरक्षा - सम्वृद्धि सब से महत्वपूर्ण अंग है। इसीलिये तो भारत में विश्व को स्वकुटुम्ब रुप में स्वीकार किया है।

अयं निज:परो वेत्ति भावना लघुचेतसाम्।
उदार पुरुषाणां तु वसुधैव स्वकुटुम्बकम्॥ [1]

क्षुद्र, संकुचित भावना युक्त व्यक्ति में अपना - पराया का निकृष्ट भेदभाव रहता है, परन्तु उदारमना सम्पूर्ण विश्व को अपना परिवार मानता है, जिससे व्यक्ति विश्व के प्रत्येक जीव को अपने परिवार का एक सदस्य मानकर सबके साथ मैत्री, प्रेम, उदारता, समता का व्यवहार करता है। इसको ही विश्व बन्धुत्व, सर्वत्मानुभुत कहते हैं। यह है धर्म का सार, अहिंसा का आधार, विश्व शांति का अमोघ उपाय, पर्यावरण सुरक्षा के परम्परागत सार्वभौम शाश्वतिक, सर्वोत्कृष्ट तरीके।

जैन आचार्य ने कहा भी है -

जीव जिणवर से मुणहि जिणवर जीव मुणहि।
ते समभाव परट्ठियार लहु णिव्वाणं लहइ॥ [2]

जो जीव को जिनवर एवं जिनवर को जीव मानता है, वह परम साम्य भाव में

* दिगम्बर जैन धर्म संघ में दीक्षित आचार्य, C/o. धर्म दर्शन सेवा संस्थान, 55, रवीन्द्र नगर, उदयपुर - 313 003 (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थिर होकर अति शीघ्र निर्वाण पद को प्राप्त करता है। यह है सर्वोत्कृष्ट, साम्यवाद, गणतंत्रवाद, समाजवाद, लोकतंत्रवाद - पर्यावरण सुरक्षा।

प्राणा यथात्मनोऽभीष्टाः भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन मन्तव्यं बुद्धिमद्‌भिर्महात्माभिः॥ [3]

जैसे मानव को अपने प्राण प्यारे हैं, उसी प्रकार सभी प्राणियों को अपने-अपने प्राण प्यारे हैं। इसलिये जो लोग बुद्धिमान और पुण्यशाली हैं, उन्हें चाहिये कि वे सभी प्राणियों को अपने समान समझें।

यथा अहं तथा एते, यथा एते तथा अहं।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये॥ [4]

जैसा मैं हूँ वैसे ये हैं तथा जैसे ये हैं, वैसा मैं हूँ - इस प्रकार आत्म सदृश्य मानकर न किसी का घात करें न करायें।

सब्बे तसन्ति दण्डस्य, सब्बेसिं जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये॥ [5]

सब लोग दण्ड से डरते हैं, मृत्यु से भय खाते हैं। दूसरों को अपनी तरह जानकर न किसी को मारें और न किसी को मारने की प्रेरणा करें।

यो न हन्ति न घातेति, न जिनाति न जापते।
मित्तं सो सब्बभूतेसु वेरं तस्स न केनचीति॥ [6]

जो न स्वयं किसी का घात करता है, न दूसरों से करवाता है, न स्वयं किसी को जीतता है, न दूसरों को जीतवाता है, वह सर्व प्राणियों का मित्र होता है, उसका किसी के साथ वैर नहीं होता।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। [7]

जो कार्य तुम्हें पसन्द नहीं है, उसे दूसरों के लिये कभी मत करो।

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव॥ [8]

हे भगवान! मेरा प्रत्येक जीव के प्रति मैत्री भाव रहे, गुणीजनों में प्रमोद भाव रहे, दुःखीजनों के लिये करुणाभाव रहे, दुर्जनों के प्रति मेरा माध्यस्थ भाव (साम्यभाव) रहे।

आत्मवत्परत्र कुशल वृत्ति चिन्तनं शक्तिस्त्याग तपसी च धर्माधिगमोपायाः। [9]

अपने ही समान दूसरे प्राणियों का हित (कल्याण) चिंतवन करना, शक्ति के अनुसार पात्रों को दान देना और तपश्चरण करना ये धर्म प्राप्ति के उपाय हैं।

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख माप्नुयात्॥ [10]

सम्पूर्ण जीव जगत् सुखी, निरोगी, भद्र, विनयी, सदाचारी रहें। कोई भी कभी भी थोड़े से दुःख को प्राप्त न करे।

शिवमस्तु सर्वजगतः परहित निरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषा प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः॥ [11]

सम्पूर्ण विश्व मंगलमय हो, जीव समूह परहित में निरत रहें, सम्पूर्ण दोष विनाश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को प्राप्त हो जावें, लोक में सर्वदा सम्पूर्ण प्रकार से सुखी रहें।

मा कार्षीत्कोऽपि पापानि, माचभूत कोऽपि दुःखितः।
मुच्यतां जगदप्येषां, मति मैत्रीं निगद्यते॥ [12]

कोई भी पाप कार्य को न करे कोई भी दुःखी न रहे समस्त जगत् दुःख कष्ट वैरत्व से रहित हो जावें, इसी प्रकार की भावना को मैत्री भावना कहते हैं।

कायेन, मनसा वाचा सर्वेष्वपि च देहिषु।
अदुःख जननी वृत्तिं मैत्री, मैत्रीविदां मता॥ [13]

काय, मन, वचन से सम्पूर्ण जीवों के प्रति ऐसा व्यवहार करना जिससे दूसरों को कष्ट न पहुँचे इसी प्रकार के व्यवहार को मैत्री व्यवहार कहते हैं।

पूज्यपाद स्वामी ने भी विश्व कल्याण के लिये जो भावना के सूत्र दिये हैं, वे निम्न प्रकार हैं -

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः।
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्॥
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्म भूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यं प्रदायि॥ [14]

सम्पूर्ण प्रजा क्षेम, कुशल होवें, धार्मिक राजा (नेता) शक्ति सम्पन्न होवें, समय-समय पर इन्द्रदेव (बादल) सुवृष्टि करें, रोग नाश को प्राप्त होवें। दुर्भिक्ष, चोरी, डकैती, आतंकवाद, दुःख, कलह, अशान्ति, एक क्षण के लिये भी इस जीव जगत् में न रहें। सब जीवों को सुख प्रदान करने वाले जिनेन्द्र भगवान् का धर्मचक्र (क्षमा, अहिंसा, दया, सत्य, मैत्री, संगठन आदि) सतत् प्रवर्तमान रहे।

उपनिषद्द में भी किसी जीव के प्रति घृणा न करके प्रेम करने के लिये कहा गया है -

यस्तु सर्वाणि भूतानि, आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं, ततो न विजुगुप्सते॥ [15]

जो अन्तर्निरीक्षण के द्वारा सब भूतों (प्राणियों) को अपनी आत्मा में ही देखता है और अपनी आत्मा को सब भूतों में, वह फिर किसी से घृणा नहीं करता है।

पर्यावरण सुरक्षा का श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ तरीका - भावशुद्धि

'जो पिण्डे सो ब्रह्माण्डे', स्वदोषशान्त्या विहितात्म शान्ति' आदि भारत के महानतम सूत्रों में अन्तरंग-बहिरंग, व्यक्ति-समूह, पिण्ड-ब्रह्माण्ड की शुद्धता-सुरक्षा-संवृद्धि के उपाय बताये गये हैं। भाव-अशुद्धि के कारण जीव में अन्धश्रद्धा, हिंसा, अब्रह्मचर्य, असावधानी आदि दोष उत्पन्न होते हैं, जिससे समस्त प्रकार के प्रदूषण फैलते हैं तथा पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं। अशुद्ध भाव से शरीर की विभिन्न ग्रन्थियों से जो रासायनिक स्राव निकलता है वह शरीर, मन, इन्द्रियों को अस्वस्थ्य, दुर्बल, प्रदूषित बनाता है तथा जो अशुद्ध भावनात्मक तरंगें निकलती हैं वे तरंगें भी अदृश्य/सूक्ष्म परन्तु प्रभावशाली रूप से पर्यावरण को प्रदूषित करती हैं। अभी तक वैज्ञानिक, पर्यावरणविदों ने जो जल, मृदा, वायु, शब्द आदि प्रदूषणों के बारे में शोध-बोध, प्रचार-प्रसार किया है वे सब अत्यन्त स्थूल, उथला है। इनके द्वारा प्रतिपादित पर्यावरण सुरक्षा के उपाय भी स्थूल, उथले, अवैशिक, अशाश्वतिक हैं, परन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय महान् महान् आध्यात्मिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित भावात्मक प्रदूषण तथा उससे जायमान समस्त प्रदूषण एवं पर्यावरण सुरक्षा के उपाय शाश्वतिक, सार्वभौम हैं। निम्न पंक्तियों में हम परम्परागत पर्यावरण सुरक्षा के तरीकों के बारे में संक्षिप्त प्रकाश डाल रहे हैं -

1. अहिंसा से पर्यावरण संरक्षण - 'अहिंसा परमोधर्म:', 'अहिंसत्वं च भूतानाममृततत्वाय कल्पते', 'अहिंसा परमं सुखमं', 'जिओ और जीने दो' आदि सूत्र भारत के परम्परागत पर्यावरण संरक्षण के तरीकों को बताते हैं। इन सूत्रों से सिद्ध होता है कि जीवों की सुरक्षा ही परम धर्म है, अमृत है, परमब्रह्म है, परम सुख स्वरूप है। जैन धर्मानुसार (1) पृथ्वीकायिक, (2) जलकायिक, (3) अग्निकायिक, (4) वायुकायिक, (5) वनस्पतिकायिक आदि एकेन्द्रिय स्थावर जीव हैं तथा लट आदि द्वि इन्द्रिय, चींटी आदि त्रि इन्द्रिय, मक्खी आदि चतुरिन्द्रिय तथा मनुष्य, पशु-पक्षी, मछली आदि पंचेन्द्रिय त्रस जीव हैं। इन सबको क्षति न पहुँचाना अहिंसा है। भारतीय परम्परागत में जो वृक्ष, नदी, पर्वत, अग्नि, जल, सूर्य, पृथ्वी आदि की पूजा की जाती है उसका मुख्य उद्देश्य इन सबकी सुरक्षा-संवृद्धि है।

जैन मुनि समस्त प्रकार की हिंसा से निवृत्त होते हैं। यथा -

'पढमे महव्वदे सव्वं भंते! पाणादिवादं पच्चक्खामि जावजीवं, तिविहेण - मणसा, वयसा, काएण, से ए-इंदिया वा, वे-इंदिया वा, ते-इंदिया वा, चु-इंदिया वा, पंचिन्दिया वा, पुढविकाइए वा, आउकाइए वा, तेउकाइए वा, वाउकाइए वा, वणप्फदिकाइए वा, तसकाइए वा, अंडाइए वा, उब्भेदिमे वा, उववादिमे वा, तसे वा, थावरे वा, बादरे वा, सुहुमे वा, पाणे वा, भूदे वा, जीवे वा, सत्ते वा, पज्जत्ते वा, अपज्जतत्ते वा, अविचउरासीदि जोणि पमुह सदसहस्सेसु, णेव सयं पाणादिवादिज्ज, णो अण्णोहिं पाणे आदिवादावेज्ज, अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंतो वि ण समणुमणिज्ज। तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि अप्पाणं वोस्सरामि। पुव्वचिणं भंते। जं पि मए रागस्स वा, दोसस्स वा, मोहस्स वा, वसंगदेण सयं पाणे अदिवादाविदे, अण्णेहिं पाणे अदिवादाविदे, अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंते वि समणुमण्णिदे तं वि।' (वृहत् प्रतिकमण)

हे भगवन्! प्रथम महाव्रत में सम्पूर्ण जीवों के घात का मैं आजीवन के लिये तीन प्रकार से अर्थात् मन, वचन, काय से त्याग करता हूँ। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव तथा काय की अपेक्षा पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीव, अंडज, पोतज, जरायिक, रसायिक, संस्वेदिम, सम्मूर्च्छिम, उद्भेदिम, उपपादिम, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, विकलत्रय, वनस्पतिकायिक, पंचेन्द्रिय जीव एवं पृथ्वीकाय से वायुकायिक पर्यन्त पर्याप्त, अपर्याप्त और 84 लाख योनियों के प्रमुख जीवों के प्राणों का घात न स्वयं करे, प्राणों का घात न दूसरों .से करावें अभवा प्राणों का घात करने वाले न अन्य की अनुमोदना करे। हे भगवन्! उस प्रथम महाव्रत में तत् सम्बन्धी अतिचारों का त्याग करता हूँ, अपनी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। हे भगवन्! अतीत काल में उपार्जित जो भी मैंने राग-द्वेष से अथवा मोहों के वशीभूतहोकर उपर्युक्त जीवों में से किसी भी जीव के प्राणों का घात स्वयं किया हो, प्राणों का घात अन्य से कराया हो अथवा प्राण का घात करवाने वाले अन्य जीवों की अनुमोदना की हो तो उन सर्वदोषों का मैं त्याग करता हूँ।

मुनि के समान गृहस्थी तो सभी प्रकार की हिंसा का त्याग नहीं कर संकता है परन्तु यथायोग्य अहिंसा अणुव्रत का पालन करता है। अनावश्यक किसी भी जीव को नहीं सताता है। यथा -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भुखनन – वृक्षमोटन, शाड् वलदलनां ऽम्बुसेचवादीनि।
निष्कारणं न कुर्यात्, दलफल – कुसुमोच्चयानापि च॥

भूमि को खोदना, वृक्ष को उखाड़ना, घास, पत्ते तोड़ना, पानी ढ़ोलना, सिंचन करना आदि कार्य निष्कारण नहीं करना चाहिये। आदि शब्द से अन्य भी जितने निष्कारण, अप्रयोजन कार्य हैं, उन्हें भी नहीं करना चाहिये। किसी भी कार्य को अनावश्यक करना अनर्थ - दण्ड रूप हिंसा है।

2. अपरिग्रह से पर्यावरण के संरक्षण – 'सादा जीवन - उच्च विचार' भारत की एक महान परम्परा है। इससे व्यक्ति का व्यक्तित्व महान्, पवित्र, उदार, उदात्त तो बनता ही है, उसके साथ - साथ पर्यावरण सुरक्षा में भी महान् योगदान मिलता है। उच्च विचार के कारण यह किसी भी जीव को या विश्व के किसी भी घटक को क्षति नहीं पहुँचाता है। आडम्बर पूर्ण भौतिक सम्पन्नता युक्त विलासमय जीवन के लिये व्यक्ति को अधिक भौतिक साधन - धन, सम्पत्ति चाहिये और इसके लिये उसे दूसरे मनुष्य का शोषण एवं पर्यावरण का दोहन करना होगा यथा वनस्पति, जल, खनिज की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिये प्रकृति का दोहन एवं शोषण होता है जिसके कारण प्रकृति का संतुलन बिगड़ता है। फेक्ट्री आदि से जो धुआँ, गन्दा पानी, अपशिष्ट आदि निकलता है उससे जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण होता है। इसलिये भारतीय परम्परा में गृहस्थ लोग सीमित परिग्रह (अपरिग्रह अणुव्रत) रखते हैं। तथा साधु - संत समस्त परिग्रह त्याग कर देते हैं। दिगम्बर जैन साधु तो अन्य परिग्रह के साथ - साथ समस्त प्रकार के वस्त्र का भी त्याग कर देते हैं।

3. ब्रह्मचर्य से पर्यावरण संरक्षण – जनसंख्या वृद्धि से खाद्य समस्या, निवास समस्या के साथ - साथ मनुष्य से उत्सर्जित मल - मूत्र, अपशिष्ट आदि से जल, वायु, मृदा प्रदूषण होता है। सघन - जन बस्ती के कारण प्राण वायु की कमी होती है। कृत्रिम गर्मी बढ़ती है। यातायात के लिये प्रयोग में आने वाले यान - वाहनों से वायु प्रदूषण, शब्द प्रदूषण भी बढ़ता है। इसीलिये भारत में साधु - संत तो पूर्ण ब्रह्मचर्य में रहते हैं। गृहस्थ भी ब्रह्मचर्य अणुव्रत का पालन करते हैं।

4. निर्व्यसन से पर्यावरण संरक्षण – भारत में नैतिकपूर्ण सादा, उच्च आदर्शमय स्वस्थ जीवन जीने के लिये मद्य, मांस, शिकार, चोरी, जुआ, वेश्यागमन, परस्त्री सेवन त्यागरूपी जीवन निर्व्यसन जीवन होता है। मद्य सेवन से भाव प्रदूषण होता है। मद्य तैयार करने में जल, वायु प्रदूषण भी होता है। मांस भक्षण करने से जीवों की हत्या होती है, शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य खराब होता है। जलचर जीव की हत्या से जल प्रदूषण, पक्षी की हत्या से वायु प्रदूषण एवं स्थलचर जीवों की हत्या से स्थल प्रदूषण बढ़ता है। इसी प्रकार ऐसे ही दोष शिकार व्यसन में है। परस्त्रीगमन, वेश्यागमन से शारीरिक, मानसिक रोग के साथ - साथ सामाजिक प्रदूषण होता है। इस प्रकार चोरी, जुआ से भी मानसिक प्रदूषण, आर्थिक प्रदूषण एवं सामाजिक प्रदूषण होता है। तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, अफीम, गांजा आदि के सेवन भी मद्य व्यसन में सम्मिलित हैं। इससे भी आर्थिक, शारीरिक, मानसिक प्रदूषण होता है।

5. समितियों से पर्यावरण की सुरक्षा – सावधानीपूर्वक जीवों की सुरक्षा करते हुए स्वकर्तव्यों का पालन करना समिति है। ईर्या समिति में सूर्य के प्रकाश में जीवों की रक्षा करते हुए चलने का विधान है। भाषा समिति में हित - मित - प्रिय वचन बोले जाते हैं। इससे शब्द

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदूषण, परस्पर [illegible] नहीं होता है। एषणा समिति में शुद्ध सात्विक शाकाहार, फलाहार, [illegible] का सेवन होता है, जिससे जीवों की हत्या नहीं होती और शारीरिक, मानसिक रोग भी नहीं होता है। आदान निक्षेपण समिति में हर वस्तु की देखभाल कर जीवों की सुरक्षा करते हुए उसका उपयोग करना है। उत्सर्ग समिति में नगर, ग्राम, रास्ता, पशु-पक्षी से [illegible], बगीचे, जीव-जन्तु से रहित निर्जन एकान्त, गुह्य स्थान में मल-मूत्र, गन्दगी, अपशिष्ट का विसर्जन करना होता है। इससे ग्राम आदि में प्रदूषण, गन्दगी, जीवाणु नही फैलते हैं। इसे पर्यावरण की सुरक्षा, स्वच्छता होती है।

सन्दर्भ स्थल

1. चाणक्य नीति
2. परमात्म प्रकाश
3. महाभारत अनुशासन पर्व 275/19
4. सुनिपात 3 - [illegible] - 27
5. धम्मपद 10/1
6. इतिबुत्तक. पृ. 20
7. मनुस्मृति
8. भावना द्वात्रिंशतिका
9. नीतिवाक्यामृत
10. [illegible]
11. जैन आचार्य
12. जैन आचार्य
13. जैन आचार्य
14. शांति भक्ति
15. उपनिषद

प्राप्त - [illegible].5.02

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 3, 2003, 23 - 31

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

व्रत - उपवास : वैज्ञानिक अनुचिंतन

■ अनिल कुमार जैन *

सारांश

प्रस्तुत आलेख में जैन एवं जैनेतर परम्परा में व्रत, उपवास के महत्व तथा शरीरविज्ञान की दृष्टि से उसकी उपयोगिता की विस्तार से चर्चा की गई है। इसी क्रम में कतिपय विशिष्ट अनुसंधानकर्ताओं के उपवास के प्रयोगों एवं उसके परिणामों को भी संकलित किया गया है।

- सम्पादक

जैन धर्म में पर्व, व्रत और उपवास

प्रत्येक वर्ष अनेकों पर्व आते हैं। ये पर्व प्रायः सामाजिक एवं धार्मिक प्रकृति के होते हैं लेकिन कुछ राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के भी होते हैं। ये पर्व हमें रोजमर्रा की आम जिन्दगी से हटकर कुछ विशेष सोचने, चिन्तन - मनन करने की प्रेरणा देते हैं। पर्व का अर्थ होता है गाँठ। जिस प्रकार गन्ना चूसते - चूसते बीच में गाँठ आ जाती है और उस वक्त तक हम रसास्वादन नहीं कर पाते हैं जब तक कि वह गाँठ रही आती है, उसी प्रकार पर्व के दिन भी हमें कुछ हटकर सोचने की प्रेरणा देते हैं।

धार्मिक पर्वों को कुछ विशेष रूप से मनाया जाता है। इन दिनों प्रायः व्रत और उपवास रखा जाता है। व्रत का सामान्य अर्थ होता है संकल्प, नियम या उपवास और उपवास का सामान्य अर्थ होता है भोजन का त्याग। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्रत के दिनों में यानि कि धार्मिक पर्व के दिनों में नियम पूर्वक या संकल्प पूर्वक भोजन का त्याग करा जाता है। भारत वर्ष में यदि सभी धर्मों के पर्वों को इकट्ठा करके देखा जाय तो प्रतिदिन अनेक पर्व आते हैं। अकेले जैन धर्म में इन पर्वों और व्रतों की संख्या प्रतिवर्ष 250 से अधिक ही बैठती है। चौबीस तीर्थंकरों के पाँच - पाँच कल्याणक के हिसाब से 120 पर्व (कुछ पर्व एक दिन में दो भी हो जाते हैं), अष्टमी - चतुर्दशी व्रत, अष्टान्हिका एवं दसलक्षण पर्व, सोलहकारण, रत्नत्रय व्रत आदि सभी इनमें सम्मिलित हैं।

हाँलाकि प्रत्येक धर्म में पर्व के दिनों में व्रत और उपवास के महत्व को स्वीकारा गया है, लेकिन जैन धर्म में इन्हें जिस गहराई तक समझा गया है उतना अन्य धर्मों में नहीं समझा गया है। प्रायः सभी जैनेत्तर धर्मों में व्रत और उपवास का महत्व देवी - देवताओं को प्रसन्न करके भौतिक सुख प्राप्त करने तक ही सीमित रहा है जबकि जैन धर्मानुसार ये व्रत - उपवास मात्र भौतिक सुख ही नहीं बल्कि मोक्ष रूपी अनन्त सुख को प्रदान करने वाले होते हैं बशर्ते कि इन्हें ठीक प्रकार से समझा गया हो तथा उनका ठीक प्रकार से पालन किया गया हो।

जैन धर्मानुसार पर्व के दिनों में चारों प्रकार के आहार का त्याग करके धर्म ध्यान में दिन व्यतीत करना प्रोषधोपवास कहलाता है[1], उस दिन हिंसादि आरम्भ करने का भी त्याग होता है। एक बार भोजन करना प्रोषध कहलाता है तथा सर्वथा भोजन न करना उपवास कहलाता है। दो प्रोषधों के बीच एक उपवास करना 'प्रोषधोपवास' है। इसे श्रावकों

* प्रबन्धक - तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग, बी - 26, सूर्यनारायण सोसायटी, विसत पैट्रोल पंप के सामने, साबरमती, अहमदाबाद - 380 005

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के चार शिक्षाव्रतों में से एक के रूप में लिया गया है। व्रत प्रतिमा में प्रोषधोपवास सातिचार होता है और प्रोषधोपवास प्रतिमा में निरतिचार[2] यदि सामान्य गृहस्थ प्रोषधोपवास न कर सकता हो तो वह अपनी शक्ति के अनुसार उपवास, एकासन या उनोदर आदि भी कर सकता है।

उपवास में प्रातःकाल एवं सायंकाल में सामायिक, रात्रि में कायोत्सर्ग[3] और दिन में स्वाध्याय करना चाहिए, हिंसादि आरम्भ से बचना चाहिए और ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए, दिनभर धर्म ध्यान में ही अपने को लगाये रखना चाहिए।[4] जैन धर्म में व्रत और उपवास की व्याख्या करते हुये कहा गया है कि हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह से विरक्त होना व्रत है या प्रतिज्ञा करके जो नियम लिया जाता है उसे व्रत कहते हैं। और विषय - कषायों को छोड़कर आत्मा में लीन रहना या आत्मा के निकट रहना उपवास है।[5] अतः विषय, कषाय और आरम्भ का संकल्पपूर्वक त्याग करना उपवास है, मात्र भोजन का त्याग करना और दिनभर विषय, कषाय और आरम्भ आदि में प्रवर्त रहना तो मात्र लंघन है, उपवास नहीं।

जैन धर्म में कहा गया है कि व्रत - उपवास अनेक पुण्य का कारण है, स्वर्ग का कारण है, संसार के समस्त पापों का नाश करने वाला है। जो व्यक्ति सर्वसुख उत्पादक श्रेष्ठ व्रत धारण करते हैं, वे सोलहवें स्वर्ग के सुखों को अनुभव कर अनुक्रम से अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं।[6]

वैज्ञानिक अनुचिंतन

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन धर्म में व्रत और उपवास का बहुत महत्व बताया गया है लेकिन व्रत - उपवास में भोजन के त्याग के साथ - साथ हिंसादि आरम्भ का त्याग, सामायिक, कायोत्सर्ग, स्वाध्याय और धर्म - ध्यान को भी महत्वपूर्ण माना गया है। अनेक चिन्तकों ने व्रत - उपवास के महत्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझने का प्रयत्न किया गया है। कुछ इन्हें ध्यान और योग के लिए आवश्यक बताते हैं तो कुछ स्वास्थ्य और आरोग्य के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं। कुछ ने इनका मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी अध्ययन किया है। हम इनकी चर्चा क्रमशः आगे प्रस्तुत कर रहे हैं।

योग दर्शन और व्रत - उपवास

ध्यान और योग का प्रचलन कुछ समय से अधिक हो गया है लेकिन इसका उपयोग बहुत सीमित कर रखा है। वस्तुतः योग एक प्राचीन साधना पद्धति है। पातंजलि[7] ने योग की विस्तृत व्याख्या की है। योग साधना के आठ अंग हैं - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। **यम** का अर्थ है निग्रह अर्थात् छोड़ना। पातंजलि ने यम को योग की आधारशिला माना है। यम पाँच हैं -हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन तथा परिग्रह का त्याग। जीवन की वे प्रवृत्तियाँ जो योग के लिए अनिवार्य हैं तथा जो यम के पालन में सहायक हैं, नियम कहलाती हैं। ये **नियम** भी मुख्यतः पाँच हैं - शौच (अर्थात् मन, वचन व काय की शुद्धता), संतोष, तप (बाह्य एवं अंतरंग), स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान (अर्थात् मन, वचन व काय की वे प्रवृत्तियाँ जिससे आत्मा परमात्मा बन जाय।)

आसन शरीर की वह स्थिति है जिससे शरीर बिना किसी बेचैनी के स्थिर रह सके और मन को सुख की प्राप्ति हो। **प्राणायाम** श्वास को नियन्त्रित रखने की प्रक्रिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। बाह्य विषयों से मुक्त होकर अन्तर्मुखी होना **प्रत्याहार** कहलाता है। शांत चित्त को शरीर के किसी स्थान पर एकाग्र करने को **धारणा** कहते हैं और चित्त वृत्ति से उसी विषय में निरन्तर लगाए रखने को **ध्यान** कहते हैं। जब केवल ध्येय स्वरूप का ही भान रहे, ध्यान की उस अवस्था को **समाधि** कहते हैं।

लेकिन आजकल विश्वभर में प्रचलित योगाभ्यास प्राय: आसन और प्राणायाम करने तक ही सीमित हैं। ध्यान के अन्य अंगों का प्राय: पालन नहीं किया जाता है। हाँ! इतना अवश्य है कि आज भी योगाभ्यासी को सात्विक एवं सादा भोजन करने की सलाह दी जाती है।

पातंजलि ने यम, नियम आदि की जो व्याख्या की है तथा आसन और ध्यान की बात कही है वह वस्तुत: जैन धर्म में वर्णित पाँच पापों से विरक्ति (व्रत), कषायादि से बचने, आसन पूर्वक सामायिक, धर्म ध्यान और कायोत्सर्ग के समकक्ष ही हैं। अत: व्रत और उपवास वस्तुत: समाधि प्राप्त करने की दिशा में जाने का प्रयास ही है।

अन्त:स्रावी ग्रंथियाँ और उपवास

हमारे शरीर में आठ प्रमुख अन्त:स्रावी ग्रंथियाँ पाई जाती हैं। ये हैं - पीयूस, पिनियल, थायरोइड़, पेरा - थाइरोइड़, थायमर्स, एंड्रिनल, पैंक्रियाज और प्रजनन। ये ग्रंथियाँ निरन्तर रस स्राव करती रहती हैं। इन ग्रंथियों से होने वाला रस स्राव जब तक संतुलित रहता है, मनुष्य स्वस्थ बना रहता है और जब इन स्रावों में असन्तुलन होने लगता है, रोग प्रकट होने लगते हैं। हमारी वृत्तियों और कामनाओं का उद्गम इनके द्वारा ही होता है। हमारा रहन - सहन, चिंतन - मनन, खान - पान तथा आचार - विचार अन्त:स्रावी ग्रंथियों पर बहुत प्रभाव डालते हैं। व्रत - उपवास द्वारा इन ग्रंथियों को नियन्त्रण में रखा जा सकता है तथा इनसे होने वाले रस स्रावों में सन्तुलन रखा जा सकता है। व्रत - उपवास में भोजन, विचार और मन पर हमारा नियन्त्रण होने लगता है, फलत: शरीर भी स्वस्थ रहता है।

उपवास द्वारा चिकित्सा -

मनुष्य को छोड़कर जितने भी प्राणी इस संसार में हैं, उनमें प्राय: एक विशिष्ट बात देखने में आती है। यदि उन्हें कुछ बीमारी हो जाय या कहीं उन्हें चोट लग जाय तो सबसे पहले उनका कदम होता है कि वे अपने भोजन का त्याग कर देते हैं। जब तक वे थोड़े स्वस्थ होना प्रारम्भ न कर दें वे आहार ग्रहण नहीं करते हैं। और प्राय: यह देखा गया है कि वे शीघ्र ही ठीक हो जाते हैं। लेकिन यदि मनुष्य को कुछ बीमारी हो जाय तो वह दवा के लिए भागता है। वह अपने शरीर को प्राकृतिक रूप से ठीक ही नहीं होने देता है। यदि वह वैसा ही करे जैसा बीमारी के समय अन्य पशु - पक्षी करते हैं तो उसे भी नि:संदेह लाभ तो होता ही है। और यदि साथ में आत्म - चिंतन भी करें तो यह लाभ कई गुना हो जाता है।

एक बात नवजात छोटे बच्चों में तो देखी गई है कि यदि उन्हें शरीर में कुछ परेशानी होती है तो वे प्राय: दूध आदि ग्रहण करना नहीं चाहते हैं। यदि कोई उन्हें चम्मच आदि से दूध देने का प्रयत्न करता है तो वे अपना मुँह बन्द कर लेते हैं। लगता है कि वे भी पशु - पक्षियों की तरह शारीरिक परेशानी के समय भोजन ग्रहण नहीं करना चाहते हैं। लेकिन हम बड़ी उम्र के लोग उन बच्चों को जबरदस्ती आहार कराना चाहते हैं।

वस्तुत: मनुष्य का शरीर एक अद्भुत और संपूर्ण यंत्र है। जब वह बिगड़ जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है तो बिना किसी दवा के अपने आपको सुधार लेता है, बशर्ते उसे ऐसा करने का मौका दिया जाय। अगर हम अपनी भोजन की आदतों में संयम का पालन नहीं करते हैं, या अगर हमारा मन, आवेश, भावना या चिन्ता से अशान्त हो जाता है, तो हमारे शरीर में गंदगी इकट्ठी होने लगती है जो जहर का काम करती है तथा रोगों को पैदा करती है। इस गंदगी को दूर करने में उपवास से हमें बहुत मदद मिलती है तथा मनुष्य स्वस्थ हो जाता है।

अष्टमी – चतुर्दशी व्रतों का महत्व

जब से प्राकृतिक चिकित्सा की ओर लोगों का रुझान बढ़ने लगा है, तब से अष्टमी - चतुर्दशी के व्रतों का महत्व और अधिक महसूस होने लगता है। इन व्रतों के महत्व को समझने से पहले हम रोग के बारे में प्राकृतिक चिकित्सकों के विचारों की चर्चा करना चाहेंगे।

इन चिकित्सकों का मत है कि बुखार, खाँसी, उल्टी, दस्त आदि किसी रोगी को होते हैं तो वस्तुतः ये रोग नहीं हैं, रोग के लक्षण हैं। रोग के लक्षण कुछ भी हों, बीमारी की जड़ एक ही होती है और वह है हमारे शरीर में विष द्रव्यों (जहर) का इकट्ठा होना। अब प्रश्न यह है कि आखिर शरीर में जहर आता कहाँ से है? इसके उत्तर में उनका कहना है कि हम जो कुछ भी आहार ग्रहण करते हैं वह एक प्रकार का विषद्रव्य (जहर) भी बनाता है जिसे अंग्रेजी में Toxin (टॉक्सिन) कहते हैं। यह टॉक्सिन रक्त में मिल जाता है तथा शरीर में प्राकृतिक रूप से निर्मित नौ मल द्वारों द्वारा बाहर फेंक दिया जाता है। विष द्रव्यों का बनना और उन्हें स्वाभाविक रूप से रक्त द्वारा बाहर फेंक देना यह एक प्राकृतिक क्रिया है। यदि शरीर के अन्दर विष - द्रव्य इतने अधिक मात्रा में जमा हो जायें कि रक्त उन्हें पूरी तरह बाहर न फेंक पाये तो वे शरीर के अन्दर ही इकट्ठे होने लगते हैं और विभिन्न रोगों के रूप में परिलक्षित होते हैं।[8] विषद्रव्यों के जमाव को Toxemia कहते हैं।

आज के औद्योगिक युग में हम विष द्रव्यों का कई अन्य रूपों में भी सीधा सेवन करने लगे हैं। अशुद्ध हवा, अशुद्ध पानी, खेती में प्रयोग आने वाली विभिन्न रासायनिक खादें, अंग्रेजी दवायें आदि ये सब हमारे शरीर में विष द्रव्य की मात्रा को सामान्य से अधिक कर देते हैं। और जो लोग अंडा, माँस आदि का सेवन करते हैं उनके शरीर में इन विषद्रव्यों की मात्रा और अधिक हो जाती है। अनियमित और अधिक भोजन तो इन्हें बढ़ाता है ही।

आधुनिक चिकित्सक जिन बीमारियों का कारण बैक्टेरिया और वायरस बताते हैं, वस्तुतः उनका मूल भी शरीर के अन्दर होने वाले विष द्रव्यों का जमाव (Toxemia) ही है। यूँ तो वातावरण में अनगिनत बैक्टेरिया और वायरस भरे पड़े हैं। इन्हें हम श्वास द्वारा, पानी और भोजन द्वारा ग्रहण भी करते रहते हैं। लेकिन ये बैक्टेरिया और वायरस उन्हें ही असर करते हैं जिनके शरीर में विष द्रव्यों का जमाव हो। वस्तुतः ये विष द्रव्य ही उन्हें शरीर के अन्दर फैलने, फूलने और अपनी वंश वृद्धि करने का पूरा मौका देते हैं। यदि इन विषद्रव्यों के जमाव को हटा दिया जाए तो बीमारी ठीक हो जाती है।

इन विषद्रव्यों को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय है उपवास करना। उपवास में हम भोजन तो करते नहीं है। अतः नया विष द्रव्य तो हम शरीर में बनने नहीं देते हैं तथा जो पुराना अतिरिक्त विष द्रव्य बाकी रह गया होता है उसे बाहर निकलने का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मौका मिल जाता है।

आयुर्वेद में भी उपवास के महत्व को स्वीकारा गया है।[9] उपवास में आहार का त्याग करने से आमाशय खाली हो जाता है तथा जठराग्नि के रूप में जो उर्जा आहार को पचाने में कार्य करती है, उसका उपयोग पाचन तंत्र की सफाई में लग जाता है। जो अतिरिक्त [illegible] है, उसे जठराग्नि समाप्त कर देती है जिससे रक्त भी शुद्ध होने लगता है [illegible] प्रतिरोध क्षमता बढ़ने लगती है। उपवास शरीर को आरोग्य और शुद्धि प्रदान करता है।

यहाँ यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि जठराग्नि का मुख्य कार्य तो भोजन पचाना है लेकिन यदि उसे भोजन न मिले तो पहले वह अपनी शक्ति का उपयोग विषद्रव्य को [illegible] करने में [illegible] है। [illegible] हो जाने के पश्चात भोजन ठीक से पचने लगता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपवास हमारे शरीर को आरोग्य और शुद्धि प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। आज कल की भागदौड़ की जिन्दगी में तथा फास्ट फूड के जमाने में हम विष द्रव्यों को पहले से अधिक इकट्ठा करते हैं। प्रदूषित वातावरण तथा ऊपर से अंग्रेजी दवाएँ (जो स्वयं विष होती हैं तथा उनके ऊपर कई बार लिखा भी होता है कि [illegible] है, बच्चों से दूर रखो) इन्हें और अधिक बढ़ाते हैं। ऐसी स्थिति में सप्ताह [illegible] उपवास करना आरोग्य की दृष्टि से हितकर ही है। हमारे आचार्यों ने [illegible] उपवास रखने का निर्देश दिया है। संभवतः उनकी भी मूल [illegible] द्रव्यों का जमाव शरीर में न होने पाये। यदि शरीर निरोगी होगा [illegible] से [illegible] जा सकता है तथा अन्तर्मुखी हुआ जा सकता है।

कुछ लोग प्रायः यह शंका करते हैं कि यदि उपवास ही रखना है तो अष्टमी और चतुर्दशी को ही क्यों? किसी और दिन क्यों नहीं? इस पर कुछ विचारकों ने अपना चिन्तन व्यक्त किया है कि इन दिनों सूर्य और चन्द्र की स्थिति कुछ ऐसी होती है जो हमारी जठराग्नि को मन्द कर देती है। अतः इन दिनों हम जो भोजन करते हैं वह ठीक से पच नहीं पाता है। और जो मन्द प्रकृति की जठराग्नि उन दिनों होती है वह विषद्रव्य को जला देने के लिए पर्याप्त होती है।

उपवास पर गाँधीजी के विचार

गाँधीजी[10] ने आत्मा और [illegible] दोनों को निरोगी रखने के लिए उपवास को बहुत महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने उपवास में भोजन त्याग करने के साथ-साथ रामनाम का जाप करने की सलाह भी दी है। यहाँ रामनाम से उनका तात्पर्य था कि यह कुछ भी हो सकता है - ईश्वर, अल्लाह, गॉड या फिर कुछ भी जिस पर आप श्रद्धा रखते हो। कुदरती (प्राकृतिक) उपचार के दौरान भी भोजन त्याग के साथ-साथ रामनाम जपने से स्वास्थ्य जल्दी से अच्छा होता है। उनका यह विश्वास था कि स्वास्थ्य के बारे में सादे नियमों का पालन करके मानव शरीर, मन और आत्मा को पूर्ण स्वस्थ स्थिति में रखा जा सकता है।

उपवास के दौरान अहंकार आदि के अभाव की बात भी उन्होंने कही है। यदि इन कषायों का त्याग हो, रामनाम का जाप करता हो और भोजन का त्याग कर दिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो तो निरोगी बनने में बहुत मदद मिलती है। वे लिखते हैं - "मैं मानता हूँ कि निरोग आत्मा का शरीर निरोग होता है। अर्थात् ज्यों-ज्यों आत्मा निरोगी-निर्विकार होती जाती है, त्यों-त्यों शरीर भी निरोग होता जाता है। लेकिन यहाँ निरोग शरीर के माने बलवान शरीर नहीं है। बलवान आत्मा क्षीण शरीर में भी वास करती है। ज्यों-ज्यों 'आत्मबल बढ़ता है, त्यों-त्यों शरीर की क्षीणता बढ़ती है। पूर्ण निरोग शरीर क्षीण भी हो सकता है।"

यह सर्वविदित है कि गाँधीजी ने स्वयं कई-कई दिनों के उपवास किये थे। इन उपवासों के दौरान उन्हें जो अनुभव हुए उन्हें लोगों के सम्मुख रखा। उन्होंने अपने आत्म चरित 'सत्य के प्रयोग' नामक पुस्तक में भी इनकी चर्चा की है।

क्या अधिक उपवासों से जीवन को खतरा है?

यह एक दिलचस्प प्रश्न है कि क्या लगातार बिना भोजन के जीवित रहा जा सकता है। अधिकतर का विचार यह रहा है कि बिना भोजन के जीवन संभव नहीं है। लेकिन इस मान्यता को गलत सिद्ध कर दिया है कालीकट (केरल) के रिटायर्ड मैकेनिकल इन्जीनियर श्री हीराचन्द माणक ने।[11] जब उन्होंने भगवान महावीर का जीवन चरित्र पढ़ा तो सौर ऊर्जा शोध के प्रति उनकी जिज्ञासाएं प्रबल होने लगीं। भगवान् महावीर आतापना (सूर्य की रोशनी में साधना करना) क्यों लेते थे? उनके साढ़े बारह साल के कठोर साधना काल में उनको कमजोरी, थकावट एवं प्रमाद अनुभव क्यों नहीं हुआ? उन्हें भूख क्यों नहीं लगती थी? ऐसे अनेक प्रश्नों पर उनका गहन चिन्तन चलने लगा।

श्री माणक ने कुछ मौलिक प्रयोग अपने ऊपर करने प्रारम्भ किये। उन्होंने प्रतिदिन 10-12 कि.मी. घूमना प्रारम्भ किया। उन्होंने पाया कि ऐसा करने से उनकी भूख की इच्छा में कमी आई। फिर उन्होंने शनैः शनै सूर्य से सीधे ऊर्जा ग्रहण करने की मौलिक पद्धति विकसित की और फिर प्रातःकाल सूर्य को 10-12 मिनट तक देखना प्रारम्भ किया। अब तो उनकी भूख और भी कम होने लगी। उनमें आश्चर्यजनक परिवर्तन होने लगे। फिर उन्होंने उपवास करने प्रारम्भ कर दिये। 18 जून 1995 से 16 जनवरी 1996 तक उन्होंने गर्म पानी और सूर्य ऊर्जा के सेवन मात्र से सारे कार्यक्रम नियमित रूप से करते हुए उपवास किए। उपवास के बावजूद उनका स्वास्थ्य संतोषप्रद रहा।

अपने इस सफल प्रयोग से प्रेरित होकर चिकित्सकों की निगरानी में उन्होंने पुनः 1 जनवरी 2000 से 15 फरवरी 2001 तक 411 दिनों का उपवास किया। उपवास के दौरान चिकित्सकों ने उनके स्वास्थ्य को पूर्णतः संतोषजनक और तनाव एवं रोगों से मुक्त पाया। उन्हें कोई रोग नहीं हुआ तथा उनके सारे अंग ठीक प्रकार से कार्य कर रहे थे। 65 वर्ष की अवस्था में भी उनके शरीर में न्यूरोन का निर्माण होना पाया गया। इन उपवासों के दौरान ही उन्होंने पालीताना तीर्थ की लगभग 3500 सीढ़ियों को आसानी से चढ़कर चिकित्सकों को विस्मय में डाल दिया। इस संदर्भ में उनका पूरा विवरण गुजरात मेडिकल जरनल के मार्च 2001 अंक में प्रकाशित हुआ है। आज भी वे लगभग न के बराबर तरल पदार्थ ग्रहण करते हैं। अमेरिका स्थित विख्यात संगठन नासा के नियन्त्रण पर वे वहाँ गये हुए हैं। वहाँ वैज्ञानिक यह जानना चाहते हैं कि आखिर मनुष्य बिना खाये-पीये कैसे जीवित रह सकता है।

श्री माणक ने अपने इन प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया है कि अधिक उपवास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने से मनुष्य की मृत्यु नहीं होती है। यदि कुछ सूर्य ऊर्जा को सीधे ग्रहण कर लिया जाय तो भूख पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है। विधिवत उपवास करने से शरीर को निरोगी बनाया जा सकता है तथा इच्छा शक्ति को भी दृढ़ बनाया जा सकता है। अभी लोगों में यह विचार भी पल्लवित होने लगा है कि भूख से कम लोग मरते हैं जबकि ज्यादा खाने से अधिक लोग मरते हैं।

उपवास : आत्म शुद्धि की सचोट प्रक्रिया

अनेक चिकित्सकों ने लम्बे समय तक उपवास करने के दौरान होने वाली प्रक्रियाओं का गहन अध्ययन किया।[12] उन्होंने जो अनुभव प्राप्त किये उन्हें संक्षेप में निम्न प्रकार से कहा जा सकता है -

1. भोजन न लेने से पाचन तंत्र को पाचन क्रिया से मुक्ति मिलती है जिससे सम्पूर्ण पाचन तंत्र में शुद्धि का कार्य प्रारंभ हो जाता है।
2. सम्पूर्ण शरीर में अब पोषक तत्व (आहार) न मिलने से रचना कार्य रूक जाते हैं और पूरे शरीर में स्व-शुद्धिकरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। डा. लिण्डनार के शब्दों में कहें तो पचे हुए आहार का पेशियों में आत्मसात् होना रूक जाता है। जठर और आँतों की अन्तर्त्वचा, जो हमेशा पचे हुए आहार को चूसती है, वह अब जहर को बाहर फेंकने की शुरूआत कर देती है।
3. शरीर में किसी जगह गाँठ या विषद्रव्यों का जमाव हुआ हो तो उपवास के दौरान ऑटोलिसिस (Autolysis) की प्रक्रिया द्वारा वह विसर्जित होने लगता है। उसमें रहने वाला उपयोगी भाग शरीर के महत्वपूर्ण अंगों (हृदय, मस्तिष्क आदि) को पोषण प्रदान करने के काम आता है, जबकि जहर शरीर से बाहर फिंकने लगता है। गाँठों आदि का विसर्जन होने के बाद कम उपयोगी पेशियाँ विसर्जित होकर महत्व के अंगों के पोषण कार्य में उपयोगी होने लगती है।

चिकित्सकों का यह भी कहना है कि 90 दिनों का उपवास कराने के बाद रोगी को रोग मुक्त करने के कई उदाहरण मिलते हैं।[13]

उपवास के दौरान शरीर में कई रासायनिक परिवर्तन होते हैं तथा अंगों में भी परिवर्तन होते हैं।[14] उदाहरण के तौर पर 20 जून 1907 को डा. इल्स के उपवास के प्रथम दिन रक्त का परीक्षण करने पर देखा गया कि श्वेतकरण (WBC) 5300 प्रति घन मिलीलीटर, लालकण (RBC) 4900000 प्रति घन मिलीलीटर और होमोग्लोबिन 90% था। दिनांक 2 अगस्त 1907 को उपवास के 44 वें दिन तीसरी बार उनके रक्त की परीक्षा की गई तो श्वेतकण 7328 प्रति घन मिलीलीटर, लाल कण 5870000 प्रति घन मिलीलीटर और होमोग्लोबिन 90% था। इससे स्पष्ट होता है कि 44 दिनों के उपवास के बाद रक्त में महत्वपूर्ण सुधार हुआ।

उपवास से रोग मुक्ति

रोग दो प्रकार के होते हैं - तीव्र रोग तथा हठीले रोग। तीव्र रोग अपना असर तुरन्त दिखाते हैं एवं अधिक तीव्रता के साथ प्रकट होते हैं जब कि हठीले रोग सालों साल चलते हैं। दोनों प्रकार के रोगों से मुक्त होने के लिए उपवास लाभदायक होते हैं। अलग-अलग तरह के बुखार, दस्त, सर्दी, जुकाम जैसे रोग तीव्र होते हैं; इन रोगों की स्थिति में उपवास जरूरी ही नहीं, बल्कि अनिवार्य माना गया है। हठीले रोगों में भी उपवास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से लाभ होना देखा गया है। यह कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं जिनका वैज्ञानिकों / चिकित्सकों ने स्वयं निरीक्षण किया है -

1. क्षय रोग में उपवास से फेफड़ों को बहुत लाभ होता है तथा फेफड़े ठीक हो जाते हैं। फेफड़ों के रोगों में थोड़े दिन का उपवास बहुत लाभकारी होता है।[15]
2. उपवास से हृदय को खुब शक्ति मिलती है तथा हृदय मजबूत होता है।[16]
3. उपवास से हृदय का बोझ हल्का हो जाता है तथा उल्च रक्तचाप निश्चित ही कम हो जाता है।[17]
4. उपवास से जठर को खुब आराम मिलता है और स्वयं ठीक होने लगता है। इससे पाचन सुधरता है, फैला हुआ जहर संकुचित होकर स्वाभाविक स्थिति में आ जाता है, अल्सर मिट जाता है, सूजन और जलन दूर हो जाती है।[18]
5. कैंसर जैसे रोगों को भी उपवास द्वारा ठीक करने के कई उदाहरण मिलते हैं।[19]
6. दमा, सन्धिवात, आधाशीशी, अतिसार, दाद, खाज, पौरुष ग्रंथि की वृद्धि, जननेन्द्रिय के रोग, लकवा, मूत्र पिण्ड के रोग, पित्ताशय की पथरी, छाती की गाँठ, बाँझपन आदि को भी उपवास द्वारा ठीक करने के कई उदाहरणों को डा. एच. एम. शेल्टन ने अपनी पुस्तक Fasting can save your life" में लिखा है।[20]
7. श्री गिदवाणी ने अपने अनुभवों के आधार पर लिखा है कि अपने आहार को नियन्त्रित अथवा कम करने से घुटने के दर्द तथा आँख की खुजली को ठीक करा जा सकता है।[7]

इस प्रकार हम दखते हैं कि विभिन्न रोगों के उपचार में उपवास का बहुत महत्व है। रोग होने पर उपचार करना एक बात है। और कुछ ऐसे उपाय करना जिससे रोग ही उत्पन्न न हो दूसरी बात है। एक कहावत है - "Precaution is better than cure" (इलाज से अच्छा सावधानी है।) अत: अपने शरीर को निरोगी बनाये रखने के लिए समय-समय पर उपवास करते रहना चाहिए।

उपवास के पश्चात् हमें एक विशेष बात का ध्यान रखना चाहिए। उपवास तोड़ने पर हमें तुरन्त खाने पर टूट नहीं पड़ना चाहिए। बल्कि बहुत ही हल्के भोजन के साथ ही उपवास तोड़ना चाहिए। यदि उपवास अधिक दिनों का है तो पहले हल्के पेय पदार्थ, जैसे - फलों के रस आदि, फिर दाल या दलिया का सूप या खिचड़ी आदि लेना चाहिए। फिर क्रमश: हल्के और कम भोजन से प्रारंभ करके सामान्य भोजन पर आना चाहिए। यदि कोई अधिक दिनों के उपवास के पश्चात् सीधे सामान्य भोजन पर उतर आता है तो उसे लाभ होने के बजाय हानि होने की पूरी संभावना होती है।

व्रत - उपवासों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव

कुछ समाजशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने व्रत और उपवास का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया है। उनका मानना है कि पर्व, व्रत और उपवास मनुष्य के मन पर एक सकारात्मक प्रभाव डालते हैं।[21] ये मानव की मनोवृत्तियों एवं विचारधाराओं में परिवर्तन लाते हैं। ये मन को शुद्ध करने के सशक्त साधन हैं।

कई व्रतों से सम्बन्धित कुछ प्रेरणादायक कथायें जुड़ी रहती हैं। जब हम इन कथाओं को पड़ते हैं तो हमारे भाव भी शुभ कार्यों की ओर प्रवृत्त होने लगते हैं। कुछ व्रत-कथाओं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में वर्णन आता हैं कि व्रतों का ठीक प्रकार से पालन किया जाय तो वे स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने वाले होते हैं। इस प्रकार इन कथाओं से इच्छित फल प्राप्ति के लिए व्रत-उपवास करने की प्रेरणा मिलती है।

इस प्रकार वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि आरोग्य एवं रोगमुक्ति के लिए भी व्रत और उपवास का बहुत महत्व है। साथ ही पारलौकिक सुख, शांति एवं मोक्ष की प्राप्ति में भी ये बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। यदि कोई इनके बारे में अधिक खोजबीन करे बगैर मात्र श्रद्धावश सम्यक् प्रकार से व्रत-उपवास करता है तो भी उसका शरीर तो निरोगी बनेगा ही, साथ में वह स्वयं अनन्त सुख प्राप्त करने का अधिकारी भी बनता है।

सन्दर्भ -

1. 'जैनेन्द्र सिद्धांत कोश', भाग-3, - क्षु. जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
2. वही
3. 'वसुनन्दि, श्रावकाचार' गाथा सं. 286
4. 'पुरूषार्थ सिद्धयुपाय' श्लोक सं. 154
5. 'जैन दर्शन पारिभाषिक कोश' - मुनि क्षमासागर
6. 'व्रत विधान संग्रह', पृ. 25
7. 'पातजंलि योग दर्शन'
8. 'प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोग मुक्ति' - वी.पी. गिदवानी
9. 'आरोग्य आपका' - डा. चंचलमल चोरडिया
10. 'कुदरती उपचार' - गांधीजी
11. देखें, सन्दर्भ 9
12. देखें सन्दर्भ 8
13. The Hygienic system' Vol. III : Fasting & sunbathing by Dr. H.M. Shelton (4th Revised Edition 1963) : Publication : Dr. Shelton's Health Schhol, San Antonio, Texax (Page 79)
14. वही, पृ. 133
15. वही, पृ. 139
16. वही, पृ. 141
17, वही, पृ. 141
18. 'Fasting can save life' by Dr. H.M. Shelton.
19. देखें, सन्दर्भ 16
20. देखें, सन्दर्भ 18
21. 'सर्वोदयी जैन तंत्र' - डा. नन्दलाल जैन, टीकमगढ़

प्राप्त - 01.07.03

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का प्रकल्प

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के सन्दर्भ में 1987 में स्थापित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने एक महत्वपूर्ण प्रकल्प के रूप में भारतीय विद्याओं, विशेषत: जैन विद्याओं, के अध्येताओं की सुविधा हेतु देश के मध्य में अवस्थित इन्दौर नगर में एक सर्वांगपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थालय की स्थापना का निश्चय किया।

हमारी योजना है कि आधुनिक रीति से दाशमिक पद्धति से वर्गीकृत किये गये इस पुस्तकालय में जैन विद्या के किसी भी क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्येताओं को सभी सम्बद्ध ग्रन्थ / शोध पत्र एक ही स्थल पर उपलब्ध हो जायें। इससे जैन विद्याओं के शोध में रूचि रखने वालों को प्रथम चरण में ही हतोत्साहित होने एवं पुनरावृत्ति को रोका जा सकेगा।

केवल इतना ही नहीं, हमारी योजना दुर्लभ पांडुलिपियों की खोज, मूल अथवा उसकी छाया प्रतियों / माइक्रो फिल्मों के संकलन की भी है। इन विचारों को मूर्तरूप देने हेतु दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर पर कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय की स्थापना की गई है। 30 जून 2003 तक पुस्तकालय में 9815 महत्वपूर्ण ग्रन्थ एवं सहस्राधिक पांडुलिपियों का संकलन हो चुका है। जिसमें अनेक दुर्लभ ग्रन्थों की फोटो प्रतियाँ भी सम्मिलित हैं। अब उपलब्ध पुस्तकों की समस्त जानकारी कम्प्यूटर पर भी उपलब्ध है। फलत: किसी भी पुस्तक को क्षण मात्र में ही प्राप्त किया जा सकता है। हमारे पुस्तकालय में लगभग 300 पत्र - पत्रिकाएँ भी नियमित रूप से आती हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

आपसे अनुरोध है कि —

संस्थाओंसे : 1. अपनी संस्था के प्रकाशनों की 1 - 1 प्रति पुस्तकालय को प्रेषित करें।

लेखकों से : 2. अपनी कृतियों की सूची प्रेषित करें, जिससे उनको पुस्तकालय में उपलब्ध किया जा सके।

3. जैन विद्या के क्षेत्र में होने वाली नवीनतम शोधों की सूचनाएँ प्रेषित करें।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम परिसर में ही अमर ग्रन्थालय के अन्तर्गत पुस्तक विक्रय केन्द्र की स्थापना की गई है। पुस्तकालय में प्राप्त होने वाली कृतियों का प्रकाशकों के अनुरोध पर बिक्री केन्द्र पर बिक्री की जाने वाली पुस्तकों की नमूना प्रति के रूप में उपयोग किया जा सकेगा। आवश्यकतानुसार नमूना प्रति के आधार पर अधिक प्रतियों के आर्डर दिये जायेंगे। अर्हत् वचन में 'धन्यवाद/आभार' स्तम्भ में प्राप्त प्रतियों की प्राप्ति स्वीकार की जायेगी।

प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण की परियोजना भी यहीं संचालित होने के कारण पाठकों को बहुत सी सूचनाएँ यहाँ सहज उपलब्ध हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल — **डॉ. अनुपम जैन**
अध्यक्ष — मानद सचिव

01.07.03

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 3, 2003, 33 - 41

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

आत्मज्ञान : आधुनिक मनोविज्ञान एवं हमारे जीवन के संदर्भ में

■ पारसमल अग्रवाल *

सारांश

आलेख में आत्मा के वास्तविक स्वरूप का अध्यात्म एवं आधुनिक मनोवैज्ञानिकों/चिन्तकों की दृष्टि से परिचय देने के उपरान्त भागदौड़ पूर्ण वर्तमान जीवन शैली में वास्तविक शान्ति के उपाय वर्णित किये गये हैं। — सम्पादक

पश्चिम जगत में भौतिकता से लिप्त मानवों को सुख - शान्ति का मार्ग दिखाने हेतु अविनाशी आत्मा के अस्तित्व को कई उच्च कोटि के मनोवैज्ञानिक सरल भाषा में पुस्तकों, कैसेटों एवं व्याख्यानों द्वारा समझा रहे हैं। ऐसे मनोवैज्ञानिकों में वेन डायर,[1] दीपक चोपड़ा,[2] केरोलिन मीस,[3] लुई हे,[4] गेरी झुकाव,[5] रिचर्ड कार्लसन,[6] आदि के नाम प्रमुख हैं। पश्चिम के पाठकों को ऐसे वैज्ञानिक क्या परोस रहे हैं इसकी एक झलक वेनडायर[7] की निम्नांकित पंक्तियों से मिल सकती हैं -

"Make an attempt to describe yourself without using any labels. Write a few paragraphs in which you do not mention your age, sex, position, title, accomplishments, possessions, experiences, heritage or geographic data. Simply write a statement about who you are, independent of all appearances".

उक्त पंक्तियों का भावार्थ यह है कि अपने परिचय के बारे में कुछ पैराग्राफ ऐसे लिखो जिसमें आपकी उम्र, लिंग, पदवी, उपाधि, उपलब्धियां, संपत्ति, संग्रह, अनुभव, परिवार, नगर आदि का उल्लेख न हो। केवल अपने बारे में ऐसा परिचय लिखो जो इन बाहरी रूपों पर आधारित न हो।

ऐसा लिखने के पीछे वेन डायर का भाव यह स्पष्ट करने का है कि समस्त बाहरी रूपों से परे भी आप हो। 'मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ' वाली धुन तक वे अपने पाठकों को ले जाना चाहते हैं।

ऐसी पुस्तकों के कई संस्करण निकलना इस बात का प्रमाण है कि जनता को इनमें लाभ मिल रहा है। पाठकों को लाभ कैसा मिल रहा है इसकी एक झलक एक पाठक के निम्नांकित शब्दों से स्पष्ट होती है।[8]

"प्रिय डॉ. डायर, मेरे पुत्र की हत्या लुटेरों द्वारा हो गई थी व उससे भारी आघात मुझे पहुँचा था। आपकी पुस्तकों व कैसेटों से जब मुझे यह समझ में आया कि हम शरीर के अन्दर स्थित आत्मा हैं, न कि प्राण सहित शरीर, तब मुझे सांत्वना मिली। मैं अपने पुत्र की मृत्यु को तो नहीं भूल पाई हूँ किन्तु यह समझ में आया है कि मृत्यु कहानी का अन्त नहीं है। आपसे प्राप्त शिक्षा को मैं अपने शब्दों में निम्नांकित कविता के रूप में लिख रही हूं जिसे पढ़कर आपको अच्छा लगेगा -

* रसायनशास्त्र विभाग, ओक्लोहोमा स्टेट यूनिवर्सिटी, स्टिलवाटर ओ.के. 74078 यू.एस.ए.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप "मुझे" देख नहीं सकते,
आप तो केवल शरीर देखते हो,
जिसे "मैं" समझ बैठते हो,
शरीर जो दिखता है वह है नाशवान,
किन्तु "मैं" तो हूं अमर।

Sincerely, MaryLou Van Atta (Newark, ohio)

एक अन्य अमरीकी पाठिका इस पुस्तक के पृ. 119 पर अपना अनुभव वर्णित करती है कि किस तरह शरीर से आसक्ति भाव त्याग कर परमात्म तत्व में अपनत्व का अभ्यास करने से उसका कैंसर दूर हो गया। डॉक्टरों ने तो उसे कह दिया था कि अब उसकी मृत्यु कुछ ही मांह दूर है किन्तु न केवल उसका कैंसर दूर हुआ अपितु 9 (नौ) वर्षों में एक बार भी उसे डॉक्टर या अस्पताल की आवश्यकता नहीं हुई। (नोट : इस टिप्पणी का उद्देश्य तो छिपी हुई आध्यात्मिक शक्ति को उजागर करने का है। चिकित्सा विज्ञान से हजारों वर्षों में अब तक जो रोगियों को प्रत्यक्ष लाभ मिल रहा है उसका महत्व नकारा नहीं जा सकता है।)

आध्यात्मिक मनोविज्ञान की आवश्यकता

एक जमाना था जब मनोवैज्ञानिकों के सामने ज्यादा समस्याएं पारिवारिक झगड़ों की या हीन भावना से ग्रस्त निराशा की आती थी। आत्मा का सहारा लिए बिना ऐसी समस्याओं को सुलझाने के लिए भूतकाल के व बचपन के अनुभवों को सुनकर रोगियों को सलाह मिलती थी। आज जीवन में संघर्ष बढ़ गया है व व्यक्ति अकेलापन कठिनाई के समय अनुभव करता है। जिसके पुत्र की हत्या हो गई हो उसको उसके बचपन की कोई भी घटना मम की अशान्ति को हल करने का मार्ग नहीं दिखा सकती है। उसके लिए तो आत्मा का आश्रय ही परम औषधि है जो उक्त उदाहरण में अमर करती हुई दिखाई देती है।

इस तरह की आवश्यकता के आधार पर ही गेरी झुकाव जैसे मनोवैज्ञानिक लिखते हैं कि अब '''आध्यात्मिक मनोविज्ञान'' को विकसित करने की आवश्यकता है जिसमें आत्मा, पुनर्जन्म एवं कर्म सिद्धांत हाशिये में न होकर केन्द्र में हो। उनके शब्दों में[9] -

"Re-incarnation and the role of karma in the development of the soul will be central parts of spiritual psychology".

गेरी झुकाव के अनुसार इस तरह के आध्यात्मिक मनोविज्ञान द्वारा इस स्तर की समझ विकसित हो सकती है कि क्रोध, डर, ईर्ष्या आदि भावनाओं को जिनसे व्यक्ति को हानि पहुँचती है उनको भी इस तरह से समझने की आवश्यकता है कि इनके उदय के समय व्यक्ति और नये ऋणात्मक कर्म नहीं बांधे। गेरी झुकाव[10] के शब्दों में -

"The fears, angers and jealousies that deform the personality can not be understood apart from karmic circumstances that they serve. When you understand, and truly understand, that the experiences of your life are necessary to the balancing of the energy of your soul, you are free to not react to them personalty, to not creats more negative karma for your soul."

गेरी झुकाव का मन्तव्य उक्त कथन में मानवीय कमजोरियों के प्रति भी समता भाव रखने का है। वस्तु व्यवस्था पर यानी कर्म सिद्धांत पर आस्था होना आवश्यक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस आस्था के अन्तर्गत यह समझ होती है कि सृष्टि में अकस्मात कुछ भी नहीं होता है, सभी कुछ नियमों से होता है व आत्मा अनन्त शक्तिमान, अविनाशी व परिपूर्ण है। जब तक यह समग्र दृष्टि नहीं होती है तब तक व्यक्ति अपने दुर्भाग्य के लिए मौसम, सरकार, परिवार, पड़ोसी, कलियुग आदि को जिम्मेदार ठहराता है। अध्यात्म की थोड़ी समझ आने के बाद व्यक्ति यह जान लेता है कि उसके जीवन में जो कुछ भी घटित हो रहा है उसके लिए उसके द्वारा पूर्वकृत कर्म ही जिम्मेदार हैं। विशिष्ट ज्ञानी इस समझ को भी अपूर्ण समझ मानते है क्योंकि दुर्भाग्य के लिए स्वयं को दोषी मानना भी तो कष्ट का कारण बनता है, यह समझ स्वयं को धिक्कारने की ओर यदि ले जाये तो फिर इससे लाभ कम होता है व हानि अधिक होती है। जो अधूरी समझ के कारण इस तरह से स्वयं को धिक्कारने की स्थिति में हो उसे यह समझना बाकी है कि तुम तो आत्मा हो जिसे दुर्भाग्य छूता नहीं है। भारतीय दर्शन में व जैनाचार्यों ने इस तथ्य को विस्तृत विज्ञान के रूप में निरूपित किया है जिसे भेद विज्ञान या वीतराग विज्ञान कहा जाता है। भेद विज्ञान को इतना अधिक महत्व दिया है कि इसे मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी या धर्म का प्रारंभ भी कहा है। भेद विज्ञान की अवस्था को आत्मज्ञान की उपलब्धि या सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान की अवस्था भी कहा जाता है। समयसार कलश में कहा[11] है कि जितनी भी आत्माएं परमात्मा बनी हैं वे सभी भेदविज्ञान के द्वारा बनी हैं व जितने भी जीव संसार में बंधे हैं वे भेदविज्ञान के अभाव द्वारा ही बंधे हुए हैं।

भेदविज्ञान के अन्तर्गत ज्ञानी यह समझता है कि मैं शरीर नहीं हूँ, वाणी नहीं हूँ, मन नहीं हूँ, इनका कारण नहीं हूँ, इनका कर्त्ता नहीं हूँ....; आचार्य अमृतचन्द्र समयसार कलश में बताते हैं[12] -

नाहं देहो न मनो न चैव वाणी न कारणं तेषां।
कर्त्ता न न कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम्॥

इसी तरह आचार्य कुन्दकुन्द समयसार[13] में लिखते हैं कि -

कर ग्रहण प्रज्ञा से नियत, ज्ञाता है सो ही मैं ही हूं।
अवशेष जो सब भाव हैं, मेरे से पर ही जानना॥

इसी ग्रंथ में आचार्य समझाते हैं कि -

उपयोग में उपयोग, को उपयोग नहीं क्रोधादि में।
है क्रोध क्रोध विषैं हि निश्चय, क्रोध नहिं उपयोग में॥[14]

इन गाथाओं का संक्षिप्त भावार्थ यह है कि क्रोध, अहंकार, डर आदि विकारी भाव ज्ञान-दर्शन (उपयोग) स्वभाव वाले मुझ आत्मा से भिन्न हैं। इसी तारतम्य में आचार्य अमृतचन्द्र समयसार कलश[15] में एक सिद्धान्त निरूपित करते हुए शिक्षा देते हैं कि -

सिद्धान्तोऽयमुदात्त चित्त चरितैर्मोक्षार्थिभि: सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योति: सदैवास्म्यहं।
एते ये तु समुल्लसंति विविधा भावा: पृथग्लक्षणा
स्तेहं नास्मि यतोऽय ते मम पर द्रव्यं समग्र अपि॥

इस श्लोक का भावार्थ यह है कि इस सिद्धान्त का सेवन करना चाहिए कि "मैं तो सदा शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही हूं, जो यह भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं वे मैं नहीं हूं, क्योंकि वे सभी मेरे लिए पर हैं।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तात्पर्य यह है कि यह समझ होना चाहिए कि जो अविनाशी आत्मा है वह मैं हूँ। क्रोध, विकार आदि परिस्थिति के अनुसार यानी कर्मोदय के अनुसार पैदा होते हैं व नष्ट होते रहते हैं किन्तु मेरा कभी नाश नहीं होता है अत: क्रोध, विकार आदि भाव में ममता या ममत्व या अपनापन नहीं रखना चाहिए।

दूसरे शब्दों में, जैसे शरीर आत्मा के वस्त्र की तरह है व बदलता रहता है, उसी तरह क्रोध, अहंकार, छलकपट, लालच, घृणा, डर आदि विकारी भाव भी वस्त्र की तरह बदलते रहते हैं, अन्तर यह है कि शरीर यदि बाहर दिखने वाला वस्त्र है तो ये भाव अंतरंग वस्त्र (Undergarments) हैं। शास्त्रीय भाषा में इन्हें अंतरंग परिग्रह कहा जाता है।

प्रश्न : क्रोध, डर, लालच, ईर्ष्या आदि गंदे संस्कारों या विचारों को अपना नहीं मानेंगे तो उन्हें हटाने के प्रयास हमारे से नहीं होंगे, हम आलसी हो सकते हैं। अत: सत्यमार्ग या कल्याणकारी मार्ग या शान्ति व आनन्द का मार्ग क्या होना चाहिए?

उत्तर : वास्तव में यह एक उलझन है। यदि हम शरीर एवं मन की क्रियाओं को अपना समझते हैं तो जब भी इनसे गलती होती है तब हमें धिक्कारपन होता है एवं बुरा लगता है व इस प्रक्रिया में हम दु:खी होकर नवीन पापों का बंध कर लेते हैं। किन्तु यदि हम इन्हें अपना नहीं समझते हैं तो फिर हम बेपरवाह हो सकते हैं, या आलसी हो सकते हैं, यह सोचकर कि मैं तो अविनाशी आत्मा हूं व मुझे किससे भी लाभ - हानि नहीं है तो फिर डर किस बात का, ऐसी स्थिति में गलत राह पर भी लग सकते हैं। इस प्रकार यह उलझन बनी रहती है कि दोनों में से किसे चुने। इसका उत्तर यह है कि यथायोग्य समझो। इस 'यथायोग्य' की व्यवस्था हेतु जैन दर्शन में अनेकान्त की व्यवस्था है। कल्याणकारी मार्ग को अनेकान्त रूप से आचार्यों ने शास्त्रों में विस्तार से समझाया है जिसे हम सरल भाषा में व अत्यन्त संक्षिप्त शब्दों में एक त्रिभुज के तीन बिन्दुओं के (देखिए चित्र क्रं. 1) द्वारा समझ सकते हैं। इस त्रिभुज को समझने के पहले नैतिकता के सामान्य शिष्टाचार की समझ होना चाहिए। मेरा जीवन दूसरों के मार्ग में कांटे न बिछाए - यह समझ तो होना ही होना चाहिए।

जैसे कोई विज्ञान सीखना चाहे तो न केवल विज्ञान सीखना होता है अपितु प्रयोगशाला के अनुशासन को भी समझना होता है, साथ में कार्य करने वाले व्यक्तियों में मेलजोल के तरीके भी सीखने होते हैं, व शरीर के भोजन व विश्राम का भी ध्यान रखना होता है। उसी तरह सुख के इस मार्ग को समझने एवं अभ्यास करने हेतु एक तरफ अविनाशी आत्मा में अपनत्व स्थापित करना होता है तो दूसरी तरफ शरीर, मन एवं वाणी की आवश्यकताएं व मनोकामनाएं किस तरह अन्य प्राणियों एवं स्वयं के विकास में निमित्त बन सकती हैं व किस तरह बाधा बन सकती है इसका ज्ञान किया जाता है व उसके अनुसार आचरण होता है। साथ ही वस्तु - व्यवस्था की समझ भी आवश्यक होती है। इन तीनों घटकों को त्रिभुज के तीन बिन्दुओं के रूप में चित्र क्रं. 1 में दर्शाया गया है। तीनों बिन्दुओं की विशेषताएं निम्नानुसार हैं :

त्रिभुज का एक बिन्दु 'अ' :

इसके अन्तर्गत यह मान्यता एवं समझ पक्की होती है कि मैं पूर्ण सुख व शक्ति का भंडार अविनाशी आत्मा हूं, मेरी आत्मा सदैव पूर्ण है यानी इसको और अधिक अच्छा या पूर्ण करने के लिए बाहर से कुछ भी नहीं चाहिए। आत्मा में परिस्थिति के अनुसार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पैदा होने वाले क्रोध, डर, अहंकार आदि विकारी भाव समुद्र में हवा के द्वारा उत्पन्न लहरों की तरह अस्थायी हैं व ये सब भाव मेरी आत्मा का बिगाड़ - सुधार नहीं कर सकते हैं। मन में कभी शान्ति अनुभव होती है व कभी अशान्ति अनुभव होती है, यह मन का बिगाड़ - सुधार आत्मा से भिन्न है यानी मुझसे भिन्न है, यह बिगाड़ - सुधार आत्मा के बाहर का बाहर रहता है।

त्रिभुज का एक बिन्दु 'स' :

यद्यपि आत्मा पूर्ण है यानी मैं पूर्ण हूँ यानी मेरा बिगाड़ - सुधार नहीं होता है किन्तु शरीर को सामान्यतया भूख लगती है, मन में सामान्यतया मान - अपमान, यश - अपयश एवं सुरक्षा के भाव आते रहते हैं। मन में शान्ति की चाह होती है। शरीर व मन की ये आवश्यकताएं एवं कामनाएं किस तरह संयमित या अनुशासित हों कि स्वयं के तथा अन्य के शरीर व मन की पीड़ा कम से कम हो। परोपकार, सत्संग, अध्ययन, उचित भोजन, उचित वाणी, ध्यान, यथायोग्य मेल - मिलाप की कला इस बिन्दु के अन्तर्गत व्यक्ति सीखता है। सीखते - सीखते यह भी समझ में आने लगता है कि मन की शान्ति का आधार चाह कम करके आत्मदृष्टि करने में है। मन की शान्ति की आधार परिस्थिति से डरने या घबराने में नहीं है। चाह या डर कम करने में सुस्ती भी उचित नहीं व उतावलापन भी उचित नहीं। जैसे शारीरिक व्यायाम करने वाले जानते हैं कि किस तरह सुस्ती हानिकारक है व किस तरह 100 ग्राम का वजन उठाने से मांसपेशियों का व्यायाम नहीं हो जाता है किन्तु 100 किलो का वजन पहले ही दिन उठा लेने में हानि हो जाती है उसी तरह यहां भी यही प्रक्रिया लागू होती है।

त्रिभुज का एक बिन्दु 'व' :

मन में शान्ति रहना, परिवार में सभी का निरोग रहना, व्यापार में लाभ होना शरीर व मन को सुखद लगता है। पुण्यात्मा जीव के इस तरह की मनोकामनाएं सामान्यतया पूर्ण होती हैं। किन्तु इस तथ्य को भी नहीं भूलना है कि प्रत्येक मनोकामना का पूर्ण होना आवश्यक नहीं है। ज्ञानी के यह समझ विकसित हो जाती है कि कामनाओं की पूर्ति न होने की स्थिति में मन में या शरीर में चाहे असुविधा या अप्रसन्नता या आंसू हों, या पूर्ति की स्थिति में प्रसन्नता हो, मैं तो आत्मा हूँ, मैं तो इन आंसुओं एवं प्रसन्नता - अप्रसन्नता का ज्ञाता - दृष्टा हूं, इनसे मुझे कोई लाभ - हानि नहीं, इनसे मेरा कोई बिगाड़ - सुधार नहीं, साथ ही यह भी समझ होती है कि सृष्टि में अकस्मात कुछ भी नहीं होता है। सब कुछ नियमों के अनुसार हो रहा है। कर्म - व्यवस्था किसी का पक्षपात नहीं करती है। किन्तु यह कर्म - व्यवस्था इतनी उत्तम है कि जो प्राणी सत्य समझ को अपनाते हैं उनकी संयमित कामनाएं सामान्यतया पूर्ण होती हैं। कभी ऐसा लग सकता है कि जीवन की गाड़ी अच्छी नहीं चल रही है किन्तु ऐसी स्थिति भी प्रकृति की कर्म व्यवस्था के अन्तर्गत ज्ञानी के लिए शुभ सिद्ध होती है।

त्रिभुज के तीनों बिन्दुओं का महत्व है। बिन्दु 'अ' में वर्णित लाभ - हानि से परे आत्मा की समझ न हो तो बिन्दु 'ब' में वर्णित हर्ष - आंसू में समभाव नहीं आ सकता है। बिन्दु 'ब' में वर्णित वस्तु व्यवस्था एवं कर्म सिद्धांत की समझ न हो तो बिन्दु 'स' में वर्णित शरीर की एवं मन की क्रियाएं संयमित नहीं हो जाती है। बिन्दु 'स' की समझ के आधार पर मन व शरीर स्वच्छ न हों तो बिन्दु 'अ' की आत्मा की गहरी समझ ठहर नहीं पाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानी को भौतिक लाभ

ज्ञानी को संसारिक उपलब्धियों के सन्दर्भ में आचार्यों के स्थान-स्थान पर ऐसे कथन हैं कि ऐसे भेदज्ञानी के पुण्योदय से कठिन कार्य भी सुलभ हो जाते हैं। धन, संपत्ति, विजय, वैभव, यश, महाराजा, महेन्द्र जैसी ऊंची पदवियाँ भी सुलभ होती हैं।[16] प्रथमानुयोग के सभी ग्रंथ इस तथ्य के साक्षी हैं। आधुनिक विद्वानों में दीपक चोपड़ा यह दावा करते हैं कि जिसे फल प्राप्ति की आसक्ति नहीं है व जो अपने को एवं अन्य प्राणियों को बिगाड़-सुधार रहित अविनाशी आत्मा की तरह देखते हैं उनकी मनोकामनाओं की पूर्ति बहुत सरलता से होती रहती है - इस तथ्य को विस्तार से उन्होंने The seven spiritual Laws of Success. पुस्तक में समझाया है।[17]

आत्मज्ञानी को आत्मिक लाभ के साथ-साथ भौतिक लाभ क्यों होते हैं? पुण्य क्यों बंधता है? इस तरह के मौलिक प्रश्नों के उत्तर देना उसी तरह कठिन है कि गुरूत्वाकर्षण क्यों होता है या धन विद्युत एवं ऋण विद्युत के बीच आकर्षण क्यों होता है। फिर भी हम उदाहरणों से कुछ मर्म निकाल सकते हैं। जैसे कोई व्यक्ति एक पैसा भी किसी का चुराने की भावना न रखे तो उसको कोई अपार धन संभालने के लिए दे सकता है। आत्मज्ञानी अपनी आत्मा के अतिरिक्त एक कण को भी अपना नहीं मानता है तो प्रकृति की वस्तु व्यवस्था से ऐसी स्थितियां बनती हैं कि विपुल समृद्धियां उसके माध्यम से बहती हैं। जिसको अपना सर्वस्व लूटते नजर आता है वे दूसरों का सर्वस्व लूटना चाहते हैं या येन-केन-प्रकारेण अपनी रक्षा करना चाहते हैं। इसके विपरीत आत्मज्ञानी को कर्म-सिद्धांत में विश्वास होता है व सांसारिक संयोगों में लाभ-हानि नजर नहीं आने के कारण पाप में प्रवृत्ति कम होती रहती है। इससे आत्मज्ञानी की ऊर्जा का क्षय कम होता है जिससे अच्छे विचार होते हैं, अच्छे निर्णय होते हैं, उत्तम स्वास्थ्य होता है, उत्तम मित्र व रिश्ते बनते हैं। निराशा न होने के कारण ज्ञानी को आलस्य भी कम होते हैं। ये सभी घटक एवं पुण्योदय भौतिक उपलब्धियों को आकृष्ट करते हैं।

एक अनमोल रत्न

इस लेख का समापन आचार्य कुन्दकुन्द के एक अनमोल रत्न द्वारा करना चाहता हूं। यह सूत्र वाक्य न केवल रोगियों के लिए उपयोगी है अपितु आज की भागदौड़ में शामिल सांसारिक प्राणियों की किसी भी तरह की मन की अशांति को दूर करने के लिए परम अमृत है। जहां अन्य नुस्खे असफल हो जाते हैं वहां भी यह कार्य करता है। एक शिष्य ने आचार्य से प्रश्न किया कि अशांति कैसे दूर हो तो उसके उत्तर में आचार्य कुंदकुंद ने समयसार में यह कहा -

मैं एक शुद्ध ममत्वहीन रू ज्ञान दर्शन पूर्ण हूं।
इसमें रहूं स्थित लीन इसमें, शीघ्र ये सब क्षय करूं॥[18]

अर्थात् अपने को ज्ञान दर्शन से पूर्ण अरूपी शुद्ध आत्मा समझकर उसमें लीन रहने से यानी अशांति के भी ज्ञाता-दृष्टा बनते हुए रहने से अशांति नष्ट हो जाती है। यह नुस्खा कार्य करता है इसका समर्थन आधुनिक मनोवैज्ञानिक भी करते हैं।[19]

परिशिष्ट 1 -

हम व्यापारी हैं, हम पुरूष/स्त्री हैं, हम खरीददार हैं, हम जैन हैं, हम मनुष्य हैं, हम आत्मा हैं.....। हमारे इतने परिचय हो गए हैं कि हम स्वयं उलझ गये हैं। हम हमारा असली परिचय भूल गए हैं। इस लेख में हमारे असली परिचय की महत्ता एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयोगिता वर्णित हुई है। पूर्णता की दृष्टि से हमारे समस्त परिचयों को विहंगम दृष्टि से मझने हेतु संलग्न चार्ट में आवश्यक जानकारी संग्रहीत की गई है। कृपया संलग्न चार्ट खिए।

न्दर्भ / टिप्पणी -

1. Wayne W. Dyer, 'There's a spiritual solution to Every Problem', (Harpercollins, New York, 2001)
2. Deepak Chopra, 'How to know God', (Harmony Books, New York, 2000)
3. Caroline Myss, 'Anatomy of the Spirit', (Three Rivers Press, New York, 1996)
4. Louise L. Hay, 'You can Heal your Life', (Hay House, Santa Monica, USA)
5. Gary Zukav, 'The Seat of the Soul', (Fireside, New York, 1989)
6. Richard Carlson, 'Don't sweat the samll stuff', (Hyperion, New York, 1997)
7. Wayne W. Dyer, 'Your Sacred self : making the Decision to be Free', (Harper Paperbacks, New York, 1995) Page 269
8. यह संक्षिप्त भावानुवाद है। मूलपत्र हेतु देखें सन्दर्भ क्रं. 1, पृ. 26
9. सन्दर्भ क्र 5, पृ. 197
10. वही, पृ. 195
11. आचार्य अमृतचन्द्र, समयसार कलश क्र. 131
    ''भेदविज्ञानत: सिद्धा: सिद्धा ये कित्त केचन।
    अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥''
12. आचार्य अमृतचन्द्र, आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित प्रवचनसार गाथा क्र. 160 का संस्कृत अनुवाद
13. समयसार, गाथा 299
14. वही, गाथा 181
15. समयसार कलश, क्र. 185
16. आचार्य समन्तभद्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक क्र. 1 - 36 से 1 - 40
17. Deepak Chopra, 'The seven spiritual Laws of success, A practical Guide to the fulfillment of your Dreams' (Amber-Allen, San Rafael, CA, USA; 1994)
18. समयसार, गाथा 73.
19. सन्दर्भ क्रं. 7 के पृ. 136 पर निम्नांकित पंक्तियां दृष्टव्य हैं :

    First you want to watch your thoughts. Then you want to watch yourself watching your thoughts. Here is the door to the inner space where, free from all thoughts, you experience the bliss and the freedom that transport you directly to your higher self.

    इसी क्रम में वेन डायर लिखते हैं -

    The simple exercise of watching your mind manufacturing its thoughts will eventually cause unwanted, unnecessary, erroneous thoughts to dissolve.

प्राप्त - 20.12.02

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र क्रमांक 1 - सामान्य आत्मज्ञानी की समझ

मैं अनन्त सुख व शक्ति का भण्डार, अविनाशी आत्मा हूँ। मेरी आत्मा सदैव पूर्ण है। इसमें न तो कुछ मिलाना सम्भव है और नही कुछ घटाना। सभी आत्माएँ बिगाड़ - सुधार से परे हैं।

अ

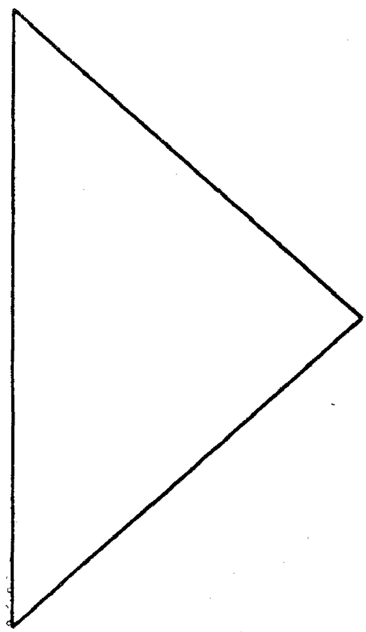

ब

सृष्टि में सभी कुछ नियमों के अनुसार ही होता है। कर्म - सिद्धान्त किसी का पक्षपात नहीं करता है। किन्तु जो प्राणी सत्य समझ को अपनाते हैं उनकी मनोकामना, सामान्यतया पूर्ण होती हैं। प्रत्येक चाह का पूर्ण होना आवश्यक नहीं है। चाह पूर्ति की स्थिति में कभी मन में प्रसन्नता या होठों पर मुस्कान हो, व चाह - पूर्ति न होने की स्थिति में कभी मन में अप्रसन्नता या आँखों में आँसू आ सकते हैं किन्तु हर स्थिति में मैं तो आत्मा हूँ व इस तरह की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का मात्र ज्ञाता - दृष्टा हूँ।

स

मन एव शरीर की आवश्यकता, व कामनाएँ अनुशासित व संयमित रहते हुए पूर्ण होती रहें। मन की शक्ति का उपाय चाह कम करके आत्मदृष्टि करने में है। चाह कम करने में सुस्ती भी उचित नहीं, उतावलापन भी उचित नहीं। परोपकार, सत्संग, अध्ययन, यथायोग्य मेल - मिलाप, उचित भोजन, उचित वाणी, ध्यान आदि इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारा परिचय (प्रश्न एक, उत्तर अनेक)

जब अन्य द्वारा हमसे यह पूछा जाये - 'आप कौन हैं?', तब उत्तर निम्नांकित प्रकार के होंगे

(व्यावहारिक परिचय)
मनुष्य, भारतीय, अमरीकी, पुत्र, मित्र, खिलाड़ी, व्यापारी, विद्वान, साधु, सुन्दर, धनवान ....
(उचित विशेषणों एवं संबंधों सहित उक्त पदवियाँ)

इसकी उपयोगिता क्या है?
लोक व्यवहार इस प्रकार के उत्तर से ही चलता है।

सावधानी

1. आवश्यकतानुसार पर्याप्त एवं सही परिचय की समझ से व्यक्ति की प्रामाणिकता बनती है।
2. दुनिया के सामने हम कई रूपों में होते हैं किन्तु विभिन्न रूपों में रहते हुए भी हमारे असली या स्थायी परिचय को नहीं भूलना चाहिये।

जब यह प्रश्न हम स्वयं ही स्वयं से पूछें तब उत्तर दो प्रकार के होंगे।

(बदलने वाला परिचय)
अभिमानी, लालची, क्रोधी, दु:खी, प्रसन्न, तनावग्रस्त, रागी, द्वेषी,.........

इसकी उपयोगिता क्या है?
इस परिचय से हमें ज्ञात हो सकता है कि हमारी आत्मा का विकास कितना हुआ है। यदि तनावग्रस्त एवं दु:खी हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा का विकास अल्प हुआ है। स्थायी परिचय को न समझने के कारण बदलते हुए परिचय को ही अपना स्थायी परिचय मान लेना दु:ख एवं तनावों का कारण बनता है।

सावधानी
हम स्वयं हमारे सामने भी विभिन्न रूपों में बदलते हुए आते हैं। किन्तु इन सभी विभिन्न रूपों में रहते हुए भी हमारे असली या स्थायी परिचय को नहीं भूलना चाहिये। बदलते हुए रूपों को स्थायी मानने की भूल भी नहीं होना चाहिये।

(स्थायी परिचय)
सदैव एक जैसा हूँ, ज्ञान एवं चेतना लक्षण वाला हूँ। समस्त विकारों व वासनाओं से परे हूँ। समस्त अन्य पदार्थों से पृथक हूँ।

इसकी उपयोगिता क्या है?
यह शाश्वत वास्तविकता है जिसकी स्वीकृति एवं समझ में सुख एवं अस्वीकृति में दु:ख है। इस सुख या आनन्द की प्राप्ति हेतु पंच इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं होती है।

सावधानी
जिस प्रकार निवास स्थान का स्थायी पता बताने हेतु मकान का रंग बताना आवश्यक नहीं होता है, रंग का उल्लेख गौण किया जाता है, इसका अर्थ यह नहीं होता कि मकान रंगहीन है। इसी प्रकार आत्मा के स्थायी परिचय के आधार पर अपने को समझने हेतु बदलते हुए परिचय या लौकिक परिचय को गौण करने की आवश्यकता है, नकारने की आवश्यकता नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

General Instructions and Informations for Contributors

1. Arhat Vacana publishes original papers, reviews of books & essays, summaries of Disertations and Ph.D. Thesis, reports of Meetings/Symposiums/Seminars/Conferences, Interviews etc.
2. Papers are published on the understanding that they have been neither published earlier and nor have been offered to any journal for publication.
3. The manuscript (in duplicate) should be sent to the following address -

   Dr. Anupam Jain
   Editor - Arhat Vacana
   D - 14, Sudamanagar,
   INDORE - 452 009
4. The manuscript must be typed on one side of the durable white paper, in double spacing and with wide margin. The title page should contain the title of the paper, name and full address of the author.
5. The author must provide a short abstract in duplicate, not exceeding 250 words, summarising and highlighting the principal findings covered in the paper.
6. Foot-notes should be indicated by superior number running sequentially through the text. All references should be given at the end of the text. The following guidelines should be strictly followed -

   (i) References to books should include author's full name, complete and unabbreviated title of the book (underlined to indicate italics), volume, edition (if necessary), publisher's name, place of publication, year of publication and page number cited. For example - Jain, Laxmi Chandra, Exact Sciences from Jaina Sources, Basic Mathematics, Vol. - 1, Rajasthan Prakrit Bharati Sansthan, Jaipur, 1982, pp. XVI + 6.

   (ii) References to articles in periodicals should mention author's name, title of the article, title of the periodical, underlined volume, issue number (if required), page number and year. For example - Gupta, R.C., Mahāvīrācārya on the Perimeter and Area of Elipse, The Mathematics Education, 8 (B), PP. 17-20, 1974.

   (iii) In case of similar citations, full reference should be given in the first citation. In the succeeding citation abbreviated version of the title and author's name may be used. For example - Jain, Exact Sciences, PP. 45 etc.
7. Line sketches should be made with black ink on white board of tracing paper. Photographic prints should be glossy with strong contrast.
8. Acknowledgements, if there be, are to be placed at the end of the paper, just before reference.
9. Only ten copies of the reprints will be given free of charge to those authors, who subscribe. Additional copies, on payment, may be ordered as soon as it is accepted for publication.
10. Devanāgarī words, if written in Roman Script, should be underlined and transliteration system should be adopted.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 3, 2003, 43 - 47

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अण्डाहार : धर्मग्रन्थ और विज्ञान

■ जगदीशप्रसाद * एवं रंजना सूरी **

सारांश

वैज्ञानिक दृष्टि से अण्डाहार के दुष्प्रभावों की विवेचना के उपरान्त यह प्रतिपादित किया गया है कि अण्डाहार को शाकाहार बताना महज एक दुष्प्रचार है। आलेख में विभिन्न धर्मों में अण्डाहार के निषेध के प्रमाण भी प्रस्तुत किये गये हैं। **- सम्पादक**

अण्डा मांसाहार के समान हानिकारक[1] :

डॉ. हेग ने लिखा है कि यद्यपि प्रयोगशालीय परीक्षणों में मैं अण्डों में यूरिक अम्ल की विद्यमानता का प्रेक्षण नहीं कर पाया हूँ तथापि मैंने पाया है कि अण्डों को भोजन में सम्मिलित करने से शरीर (रक्त) में यूरिक अम्ल की मात्रा बढ़ जाती है। इससे यूरिक अम्ल सम्बन्धी अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अत: मैंने (डॉ. हेग) अपने भोजन में से मांस - मदिरा - मीन के साथ अण्डों को भी हटा दिया है। इससे मैं स्वस्थ रहता हूँ।[1]

अण्डों की अनुपयोगिता का वैज्ञानिक कारण :

सान्द्र प्रोटीनों का शरीर के लिये कोई महत्व नहीं है। अण्डों में एल्बुमिन नामक प्रोटीन बहुत अधिक मात्रा में होता है। जल को यदि छोड़ दें तो यह लगभग शत - प्रतिशत प्रोटीन प्रदान करता है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में नाइट्रोजन की एक निश्चित साम्यावस्था होती है, जिसको बदला नहीं जा सकता, जब तक कि मानव शरीर की मशीन की कार्यक्षमता न बदल दी जाये। अधिक नाइट्रोजन युक्त यौगिक - प्रोटीनयुक्त अण्डा लेने का परिणाम यह होता है कि जब तक अण्डे की सारी प्रोटीन शरीर में पच पाती है, उससे पूर्व ही उसका सड़ना आरम्भ हो जाता है, जिससे शरीर में विषैले पदार्थों की उत्पत्ति होती है। प्रारम्भ में अण्डा लेने के बाद व्यक्ति को कुछ अच्छा - सा लगता है, क्योंकि सान्द्र एल्बुमिन शरीर के नाइट्रोजन - साम्य को कुछ सीमा तक बदलने का प्रयत्न करता है। क्योंकि साम्य को अधिक सीमा तक बदला नहीं जा सकता, अत: धीरे - धीरे सुखद अनुभूति तिरोहित होती जाती है और अन्त में व्यक्ति उस अवस्था में पहुँच जाता है जो पूर्व की तुलना में कोई अच्छी अवस्था नहीं होती है।[2]

इसीलिये हृदयरोग विशेषज्ञ, नोबेल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक डॉ. माइकल ऐस ब्राउन एवं डॉ. जोजेफ ऐल गोल्ड्स्टाइन का परामर्श है कि हृदयरोग से बचने के लिये मांस तथा अण्डे का सेवन न करें। उनका कथन है कि अमेरिका में पचास प्रतिशत मौतें केवल हृदयरोग के कारण होती हैं। उनके अनुसार, अब तक वर्षों से चली आ रही यह धारणा कि बच्चों को अण्डा देने से उन्हें कोई हानि नहीं होती, विपरीत निकली है। भले ही बच्चे ऊपर से हृष्ट - पुष्ट दिखाई दें, किन्तु अन्दर से वे हृदयरोग से ग्रस्त हो जाते हैं।[3]

अण्डा रक्त में रिस्पेटरों को कम करता है :

आधुनिक भौतिक विज्ञान की नवीन खोज के अनुसार, रक्त में पाया जाने वाला पदार्थ लो - डेन्सिटी लिपोप्रोटीन (LDL) है जो कोलेस्टोरेल को अपने साथ प्रवाहित करता है। शरीर में यकृत तथा अन्य भागों के सेलों में एक पदार्थ है जिसको रिस्पेटर कहते हैं, जो एल.डी.एल. तथा कोलेस्टेरोल को रक्त में विलीन करता है, जिसके फलस्वरूप रक्त प्रवाह में कोई बाधा नहीं आती। उपर्युक्त इन वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार, जो व्यक्ति मांस

* 115, कृष्णपुरी, मेरठ - 250 002 (उ.प्र.)
** शोध छात्रा, रसायन विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या अण्डे खाते हैं, उनके शरीर में रिस्पेटरों की संख्या में कमी हो जाती है। इसकी कमी से रक्त के अन्दर कोलेस्टेरोल की मात्रा अधिक हो जाती है, जिससे यह रक्तवाहिनियों में जमना आरम्भ हो जाता है और हृदयरोग आरम्भ हो जाता है।[4]

अण्डों से चर्म रोग :

कोलेस्टेरोल अण्डों में सबसे अधिक मात्रा में पाया जाता है, जिसके फलस्वरूप चर्मरोग भी हो जाते हैं। अण्डों से कुछ व्यक्तियों को एलर्जी भी होती है। कुछ दिन पूर्व 'इण्डियन काउन्सिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च' द्वारा किये गये सर्वेक्षण से पता चला है कि फल, सब्जियाँ, अण्डे तथा मांस में डीडीटी के अंश पाये गये हैं। अण्डों में डीडीटी का अंश अधिक मात्रा में होता है, क्योंकि पॉल्ट्री फार्मिंग में मुर्गियों को महामारी से बचाने के लिये डीडीटी आदि दवाईयों का धड़ल्ले से प्रयोग होता है। फलस्वरूप, अण्डे खाने वाले व्यक्ति के पेट में इन दवाईयों के अंश आ जाते हैं। इन दवाईयों के भयंकर परिणाम हो सकते हैं।[5]

अण्डे दुष्पाच्य हैं :

अब तक अण्डों को सुपाच्य समझा जाता था, क्योंकि इनके प्रयोग पशुओं पर किये गये थे। कुछ वैज्ञानिकों ने जब इनका प्रयोग मनुष्यों पर किया तब पाया गया कि अण्डे सुपाच्य नहीं होते, ये दुष्पाच्य होते हैं।

अण्डे आठ डिग्री सेल्सियस से ऊपर के ताप पर खराब होने आरम्भ हो जाते हैं। इनको खराब होने से बचाकर रखने के लिये भारत में इतना नीचा ताप रखना कठिन है। विदेशों में भी आजकल अण्डे न खाने का परामर्श दिया जा रहा है।

अण्डों का प्रोटीन शाक प्रोटीन से महंगा :

अण्डा, गेहूँ, दाल, सोयाबीन से प्राप्त होने वाले एक ग्राम प्रोटीन का मूल्य क्रमश: 14, 4, 3 व 2 पैसे तथा सौ कैलोरी पर व्यय क्रमश: 10, 9, 8 व 5 पैसे हैं। इससे स्पष्ट है कि अण्डों की अपेक्षा दालों और अनाज से बहुत कम व्यय में (सस्ता) प्रोटीन और ऊर्जा प्राप्त होती है।[6]

अण्डों से आंतड़ियों में सड़ान :

अण्डों में शक्तिदायक तत्व शर्करा तथा विटामिन सी बिल्कुल नहीं होते और केल्सियम तथा बी-काम्पलेक्स विटामिन भी नगण्य मात्रा में होते हैं। इन तत्वों की कमी के कारण तथा विषैले तत्वों से युक्त होने के कारण अण्डे आंतड़ियों में सड़ान (Putrafaction) उत्पन्न कर कई रोगों को बढ़ाने में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त दूध की तुलना में अण्डे आसानी से नहीं पचते हैं।[7]

अण्डों से अनेक रोग :

आज विज्ञान यह सिद्ध कर चुका है कि मांस की भांति अण्डा मनुष्य के शरीर के अनुकूल नहीं है, क्योंकि इनसे शरीर में अनेक भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं। अण्डे खाने से रक्त में कोलेस्टेरोल की मात्रा बहुत बढ़ जाती है, जिससे पित्ताशय में पथरी (stone) हो जाती है। इससे दिल का दौरा पड़ने लगता है। इनके सेवन से त्वचा कठोर हो जाती है। इनसे रक्त अशुद्ध हो जाता है। शरीर में यह उत्तेजना बढ़ाता है। इनसे सात्विक बुद्धि नष्ट हो जाती है। इनके सेवन से शरीर में से दुर्गन्ध आने लगती है। इनसे रक्त दाब (Blood Pressure) बढ़ जाता है। इनसे गुर्दों के अनेक रोग हो जाते हैं। इनसे कैन्सर (Colon Cancer) हो जाता है। इनसे दाँत शीघ्र रोगग्रस्त हो जाते हैं। इनसे पाचनक्रिया विकृत हो जाती है। इनसे श्वास की गति व हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। इनसे मस्तिष्क में अशान्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बढ़ जाती है। इनसे अतिनिद्रा का रोग हो जाता है और शरीर थका-थका सा रहता है। इनसे मनुष्य निर्दयी तथा हिंसक बन जाता है।[8]

मांस की भाँति, अण्डों से शरीर में अनपेक्षित मौन-विचार उत्पन्न होते हैं और मन में विक्षेप और क्रोध का आविर्भाव होता है।

शाकाहारी अण्डे - एक मिथ्या भ्रम

जिन अण्डों से बच्चे नहीं निकलते, उन्हें पॉल्ट्री फार्मिंग वाले शाकाहारी अण्डे (Vegetarian Eggs) कहकर समाज में एक मिथ्या भ्रम पैदा करते हैं। अण्डे कभी किसी पेड़ पर नहीं लगते, अत: वे शाकाहारी नहीं हो सकते।

तथाकथित शाकाहारी अण्डे क्या हैं?

किसी प्राणी के देह में चार प्रकार के पदार्थ बनते हैं -

(अ) वे जो उसके शरीर का वास्तविक अंग हैं।

(आ) वे जो मल के रूप में और विभिन्न मार्गों से मल-मूत्र के रूप में निकलते हैं।

(इ) वे जो शरीर में रसोली (Tumour) आदि रोग बनने का कारण बनते हैं।

(ई) वे जो माता के शरीर में सन्तान का शरीर निर्माण करते हैं जैसे गर्भ का अण्डा।

निर्जीव अण्डा पहली कोटि में इसलिये नहीं आ सकता, क्योंकि निर्जीव होने से तथा पिता से उत्पन्न न होने के कारण सन्तान का शरीर नहीं है। अब, या तो वह मुर्गी के शरीर का मल है या रोग का अंश है। वस्तुत: जिसे एक शाकाहारी अण्डा कहते हैं वह तो मुर्गी का रज:स्राव होता है, जो गन्दगी से लिप्त होता है। साधारण व्यक्ति शाकाहारी और अशाकाहारी अण्डे में पहचान नहीं कर सकता। तथाकथित शाकाहारी अण्डों के सेवन से भी वे सभी हानियाँ हैं जो अन्य अण्डों के सेवन से होती है।

अण्डा और विभिन्न धर्म

वैदिक धर्म

श्रीमद्भगवद्गीता में भोजन की तीन श्रेणियाँ बताई गई हैं।

(अ) सात्विक भोजन - फल, सब्जी, अनाज, दालें, मेवे, दूध-मक्खन आदि जो आयु, बुद्धि, बल बढ़ाते हैं और सुख-शान्ति, दयाभाव, अहिंसा व एकरसता प्रदान करते हैं और हर प्रकार की अशुद्धियों से शरीर, दिल व मस्तिष्क को बचाते हैं।

(आ) राजसिक भोजन - इसमें गर्म, तीखे, कड़वे, खट्टे, मिर्च-मसाले आदि जलन उत्पन्न करने वाले तथा रूखे पदार्थ सम्मिलित हैं। इस प्रकार का भोजन उत्तेजक होता है और दु:ख, रोग व चिन्ता उत्पन्न करने वाला होता है।

(स) तामसिक भोजन - जैसे बासी, रसहीन, अर्द्धपके, दुर्गंध वाले, सड़े, अपवित्र, नशीले पदार्थ, मांस-अण्डे आदि जो मनुष्य को कुसंस्कारों की ओर ले जाने वाले, बुद्धि भ्रष्ट करने वाले, रोग व आलस्य आदि दुर्गुण देने वाले होते हैं।

भारतीय ऋषि-मुनि - कपिल, व्यास, पाणिनि, पतंजलि, शंकराचार्य, आर्यभट, महावीर स्वामी, महात्मा बुद्ध, गुरु नानकदेव, महात्मा गांधी आदि सभी शाकाहारी थे और सभी ने अण्डा, मांस, मदिरा का विरोध किया है क्योंकि शुद्ध बुद्धि और आध्यात्मिकता अण्डा-मांस आहार से सम्भव नहीं है।[9]

अथर्ववेद[10] में मांस खाने व गर्भ (अण्डों में पलने वाले भावी पक्षी) को नष्ट करने की मनाही की गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस्लाम धर्म

इस्लाम के सभी सूफी-सन्तों ने नेक जीवन, दया, गरीबी व सादा भोजन तथा अण्डा-मांस न खाने पर जोर दिया है। शेख, इस्माइल, ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती, हजरत निजामुद्दीन औलिया, बू अली कलन्दर, शाह इनायत, मीर दाद, शाह अब्दुल करीम आदि सूफी सन्तों का मार्ग नेकरहमी, आत्मसंयम, शाकाहारी भोजन व सबके प्रति प्रेम का था। उनका कथन है कि - **'ता बयाबीं दर बहिश्ते अदन् जा शफ्फते बनुभाए ब ख़ल्के ख़ुदा'** अर्थात् अगर तू सदा के लिये स्वर्ग में निवास पाना चाहता है तो ख़ुदा की सृष्टि के साथ दया व हमदर्दी का बर्ताव कर। ईरान के दार्शनिक अलग़जाली का कथन है कि रोटी के टुकड़ों के अतिरिक्त हम जो कुछ भी खाते हैं वह केवल हमारी वासनाओं की पूर्ति के लिये होता है।

लंदन की मस्जिद के शाकाहारी इमाम अल हाफिज बशीर अहमद मसेरी ने अपनी पुस्तक 'Islamic Concern about Animals' के पृष्ठ 18 पर हजरत मुहम्मद साहब का कथन इस प्रकार दोहराया है - 'यदि कोई इन्सान किसी बेगुनाह चिड़िया तक को भी मारता है तो उसे ख़ुदा को इसका जवाब देना पड़ेगा और जो किसी परिन्दा (पक्षी) पर दयाकर उसकी जान बख्शता है तो अल्लाह उस पर कयामत के दिन रहम करेगा।'[11]

ईसाई धर्म

ईसामसीह को आत्मिक ज्ञान जॉन दि बैप्टिस्ट से प्राप्त हुआ था जो अण्डे-मांस के घोर विरोधी थे। ईसामसीह की शिक्षा के दो प्रमुख सिद्धान्त है - जीव हत्या नहीं करोगे (Thou shall not kill) तथा अपने पड़ोसी से प्यार करो (Love thy neighbour)। इनसे अण्डा-मांसाहार का निषेध हो जाता है।[12]

जैन धर्म

अहिंसा जैन धर्म का सबसे मुख्य सिद्धान्त है। जैन ग्रन्थों में हिंसा के 108 भेद किये गये हैं। भाव हिंसा, द्रव्य हिंसा, स्वयं हिंसा करना, दूसरे के द्वारा हिंसा करवाना अथवा सहमति प्रकट करके हिंसा कराना आदि सभी वर्जित हैं। हिंसा के विषय में सोचना तक पाप माना है। हिंसा मन, वचन व कर्म द्वारा की जाती है। अत: किसी को ऐसे शब्द कहना जो उसको पीड़ित करे, वह भी हिंसा मानी गई है। ऐसे धर्म में जहाँ जानवरों को बांधना, दु:ख पहुँचाना, मारना-पीटना व उनपर अधिक भार लादना तक पाप माना जाता है, वहाँ अण्डा-मांसाहार का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता।[13]

इसी प्रकार बौद्ध मत में अहिंसा पर बल देते हुए अण्डा-मांसाहार की मनाही है।[14]

आहार का उद्देश्य

भोजन से मनुष्य का उद्देश्य मात्र उदरपूर्ति या स्वादपूर्ति नहीं है अपितु स्वास्थ्य-प्राप्ति, निरोग रहना व मानसिक और चारित्रिक विकास करना भी है। आहार का हमारे स्वास्थ्य, आचार, विचार व व्यवहार से सीधा सम्बन्ध है। मनुष्य की विभिन्न प्रकार के भोजन के प्रति रूचि उसके आचरण व चरित्र की पहचान कराती है। **'जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन'**। अत: आहार का उद्देश्य उन पदार्थों का सेवन करना है जो शारीरिक, नैतिक, सामाजिक व आध्यात्मिक उन्नति करने वाले, रोगों से बचाव करने वाले तथा स्नेह, प्रेम, दया, अहिंसा, शान्ति आदि गुणों को बढ़ावा देने वाला हो।[15]

प्राय: देखने में आता है कि दुष्कर्म, बलात्कार, हत्या, निर्दयतापूर्ण कार्य करने वाले व्यक्ति साधारण स्थिति में ऐसे दुष्कर्म नहीं करते अपितु इन कुकर्मों के करने से पहले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे शराब, अण्डा - मांसाहार आदि का सेवन करते हैं ताकि उनका विवेक, मानवीयता व नैतिकता नष्ट हो जाये और वे इन्हें इन कुकर्मों को करने से रोके नहीं।[16]

डॉ. धनंजय के अनुसार - अण्डे 40° सेंटिग्रेड से अधिक ताप पर 12 घंटे से अधिक समय तक रहें तो उनके भीतर सड़ने की क्रिया आरम्भ हो जाती है। भारत एक उष्णकटिबंधीय देश है। यहाँ का तापमान 30° से 40° तक रहता है। पॉल्ट्री फार्म से बाजार में लाकर बेचने तक प्राय: 24 से 28 घंटे तक का समय लगता है। प्राय: अधिकांश अण्डे भीतर ही भीतर सड़ जाते हैं और रोगों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं।

जर्मनी के प्रो. एग्नबर्ग का निष्कर्ष है - 'अण्डा 51 - 83% कफ़ पैदा करता है। वह शरीर के पोषक तत्वों को असंतुलित कर देता है।[17]

अमरीका के डॉ. इ. बी. एमारी तथा इंग्लैण्ड के डॉ. इन्हों ने अपनी विश्वविख्यात पुस्तक 'पोषण का नवीनतम ज्ञान और रोगियों की प्रकृति' में साफ - साफ माना है कि अण्डा मनुष्य के लिये विष है।[18]

इंग्लैण्ड के डॉ. आर. जे. विलियम का निष्कर्ष है - सम्भव है अण्डा खाने वाले आरम्भ में अधिक चुस्ती का अनुभव करें, किन्तु बाद में उन्हें हृदयरोग, ऐक्जीमा, लकवा जैसे भयानक रोगों का शिकार होना पड़ता है।[19]

भारतीय चिकित्सक डॉ. योगेशकुमार अरोड़ा के अनुसार - अण्डों में डीडीटी नामक विष पाया गया है जिससे पुरानी कब्ज, आंतों का कैन्सर, गठिया, बवासीर एवं अल्सर आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

सन्दर्भ

1. डॉ. जगदीश प्रसाद, अर्हत् वचन, **14** (4), अक्टूबर - दिसम्बर 2002, पृ. 45.
2. डॉ. ए. हेग, यूरिक एसिड ऐज़ ए फैक्टर इन दि कोज़ेशन ऑफ डिजीज, पंचम सस्करण, 1990, जे. एण्ड ए. चर्चिल, लन्दन।
3. दयानन्द सन्देश (मासिक), मार्च 1987, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।
4. वही
5. देखें सन्दर्भ - 2
6. कल्याण (मासिक), मार्च 1987, गीता प्रेस, गोरखपुर (उ.प्र.)।
7. नई वैज्ञानिक खोज, सम्पा. केवलचन्द जैन, 1980 - 81, नवजीवन दयामंडल, दिल्ली।
8. ईश्वर उपासना - क्यों और कैसे ?, डॉ. वेदप्रकाश, 1999, पृ. 190, वैदिक प्रकाशन, मेरठ।
9. पवमान (मासिक), देहरादून, मार्च 1997, पृ. 79 - 81.
10. अथर्ववेद, 8/6/23, टीका. क्षेमकरण त्रिवेदी, दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली, 1974 संस्करण.
11. देखें सन्दर्भ - 9.
12. वही
13. वही
14. वही
15. पवमान (मासिक), देहरादून, दिसम्बर, 1999, पृ. 343.
16. वही, मई 1997, पृ. 159.
17. शाकाहार एक जीवन पद्धति, सम्पा. - डॉ. नीलम जैन, 1997 संस्करण, प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)
18. जीवन की आवश्यकता - शाकाहार या मांसाहार ?, सम्पा. - श्री हेमचन्द जैन एवं श्री नरेन्द्रकुमार जैन, 1996 संस्करण, श्री वर्धमान जैन सेवक मण्डल, कैलाश नगर, दिल्ली.
19. वही

प्राप्त - 22.02.03

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानोदय इतिहास पुरस्कार

श्रीमती शांतिदेवी रतनलालजी बोबरा की स्मृति में श्री सूरजमलजी बोबरा, इन्दौर द्वारा स्थापित ज्ञानोदय फाउण्डेशन के सौजन्य से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के माध्यम से ज्ञानोदय पुरस्कार की स्थापना 1998 में की गई है। यह सर्वविदित तथ्य है कि दर्शन एवं साहित्य की अपेक्षा इतिहास एवं पुरातत्त्व के क्षेत्र में मौलिक शोध की मात्रा अल्प रहती है। फलत: यह पुरस्कार जैन इतिहास के क्षेत्र में मौलिक शोध को समर्पित किया गया है। इसके अन्तर्गत पुरस्कार राशि में वृद्धि करते हुए वर्ष 2000 से प्रतिवर्ष जैन इतिहास के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र/पुस्तक प्रस्तुत करने वाले विद्वान् को रुपये 11000/- की नगद राशि, शाल एवं श्रीफल से सम्मानित किया जायेगा।

वर्ष 1998 का पुरस्कार रामकथा संग्रहालय, फैजाबाद के पूर्व निदेशक **डॉ. शैलेन्द्र रस्तोगी** को उनकी कृति **'जैन धर्म कला प्राण ऋषभदेव और उनके अभिलेखीय साक्ष्य'** पर 29.3.2000 को समर्पित किया गया। इस कृति का ज्ञानोदय फाउण्डेशन के आर्थिक सहयोग से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा प्रकाशन किया जा रहा है।

वर्ष 1999 का पुरस्कार प्रो. हम्पा नागराजैय्या **(Prof. Hampa Nagarajaiyah)** को उनकी कृति **'A History of the Rastrakutas of Malkhed and Jainism** पर प्रदान किया गया।

वर्ष 2000 का पुरस्कार **डॉ. अभयप्रकाश जैन (ग्वालियर)** को उनकी कृति **'जैन स्तूप परम्परा'** पर एवं 2001 का पुरस्कार **श्री सदानन्द अग्रवाल (मेण्डा-उड़ीसा)** को उनकी कृति **'खारवेल'** पर 3 मई 2003 को समर्पित किया गया।

वर्ष 2002 से चयन की प्रक्रिया में परिवर्तन किया जा रहा है। अब कोई भी व्यक्ति पुरस्कार हेतु किसी लेख या पुस्तक के लेखक के नाम का प्रस्ताव सामग्री सहित प्रेषित कर सकता है। चयनित कृति के लेखक को अब रु. 11000/- की राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति प्रदान की जायेगी।

साथ ही चयनित कृति के प्रस्तावक को भी रु. 1000/- की राशि से सम्मानित किया जायेगा। वर्ष 2002 एवं 2003 के पुरस्कार हेतु प्रस्ताव सादे कागज पर एवं सम्बद्ध कृति/आलेख के लेखक तथा प्रस्तावक के सम्पर्क के पते, फोन नं. सहित 30 सितम्बर 2003 तक मानद सचिव, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर-452 001 के पते पर प्राप्त हो जाना चाहिये।

जैन विद्याओं के अध्ययन/अनुसंधान में रुचि रखने वाले सभी विद्वानों/समाजसेवियों से आग्रह है कि वे विगत 5 वर्षों में प्रकाश में आये जैन इतिहास/पुरातत्त्व विषयक मौलिक शोध कार्यों के संकलन, मूल्यांकन एवं सम्मानित करने में हमें अपना सहयोग प्रदान करें।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 3, 2003, 49 - 52

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

णमोकार महामंत्र : एक वैज्ञानिक अनुचिन्तन

■ अजितकुमार जैन *

सारांश

णमोकार महामंत्र अत्यन्त वैज्ञानिक है एवं इस मंत्र के जाप से शरीर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस मंत्र से शरीर में संचित ऊर्जा दिव्य शक्तियों की प्रकटीकरण का पथ प्रशस्त करती है एवं अन्ततोगत्वा कर्मों की निर्जरा में सहायक होती है।

\- सम्पादक

मन के साथ जिन ध्वनियों का घर्षण होने से दिव्य ज्योति प्रकट होती है उन ध्वनियों के समुदाय को मंत्र कहा जाता है, मंत्र और विज्ञान दोनों में अन्तर है, क्योंकि विज्ञान का प्रयोग जहाँ भी किया जाता है, वहाँ फल एक ही होता है, परन्तु मंत्र में यह बात नहीं है, उसकी सफलता साधक और साध्य पर निर्भर करती है। ध्यान के अस्थिर होने से मंत्र असफल हो जाता है। मंत्र तभी सफल होता है, जब श्रद्धा, इच्छा और दृढ़ संकल्प के साथ एकाग्रता - तीनों ही यथावत कार्य करें। सर्वाधिक कठिन होता है एकाग्रचित्त का होना, जो बिना किसी माध्यम के नहीं आती। णमोकार महामंत्र का उच्चारण यदि वर्णों के माध्यम से किया जावे तो चित्त की एकाग्रता तो बढ़ती ही है साथ में वर्ण रूपी 'लैंस' मंत्र ध्वनि रूपी तरंगों को केन्द्रीभूत कर लेती हैं, जिससे महामंत्र के उच्चारण से आत्मा में अधिक ऊर्जा का संचय होता है। (जैसे लैंस के माध्यम से सूर्य रश्मियों का अधिक से अधिक केन्द्रीयकरण होने से सूर्य रश्मियाँ अधिक से अधिक ऊष्णता को प्राप्त हो जाती है एवं एक समय ऐसा आता है जब लैंस के नीचे स्थित कागज में अग्नि प्रज्जवलित हो जाती है। संचित ऊर्जा के प्रभाव में आत्मा में स्थित दिव्य शक्तियाँ अधिक से अधिक उत्पन्न होती हैं, अन्त में ऐसी भी एक परिस्थिति उत्पन्न होती है, जिससे तीव्र ध्यान रूपी अग्नि से समस्त कर्म बंधन एक - एक कर टूट जाते हैं।

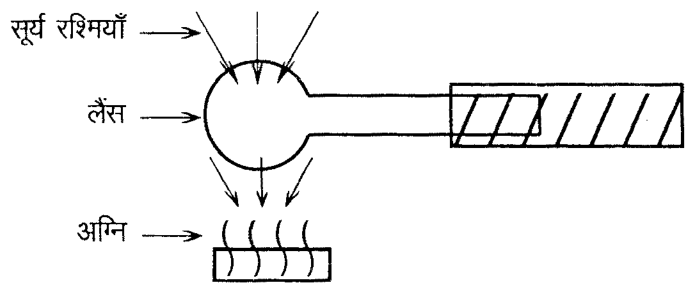

णमोकार महामंत्र मंत्र शास्त्र की दृष्टि से विश्व के समस्त मंत्रों में अलौकिक है। इसकी महानता को वे ही समझते हैं जिन्होंने निष्काम भाव से इसकी आराधना कर सिद्धि या फल प्राप्त किया है। संसार की ऐसी कोई ऋद्धि - सिद्धि नहीं है जो इस मंत्र के द्वारा प्राप्त न की जा सके। मंत्र की महत्ता के सन्दर्भ में कहा गया है कि पंच नमस्कार महामंत्र सब पापों का नाश करने वाला और सब मंगलों में पहला मंगल है।

एसो पंच णमोक्कारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढ़मं हवई मंगलं॥

* प्राध्यापक - रसायनशास्त्र, एस.एस.एल. जैन महाविद्यालय, विदिशा - 464 001 (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णमोकार मंत्र का उच्चारण तथा ध्यान वर्णों के माध्यम से करने पर लक्ष्य की दृढ़ता होती है तथा मन एकाग्र होता है जिससे कर्मों की अपरिमेय गुना निर्जरा होती है। वास्तु शास्त्र के 'मानसार' नामक ग्रन्थ में पंच परमेष्ठियों को क्रमश: निम्न पाँच वर्णों द्वारा निरूपित किया गया है -

स्फटिकश्वेत रक्तं च पीत श्याम - निभं तथा।
एतत्पज्वपरमेष्ठी पज्यवर्ण - यथाक्रमम॥[1]

अर्थात् स्फटिक के समान श्वेत वर्ण, लाल वर्ण, पीत वर्ण, हरा वर्ण एवं नीला वर्ण - ये पाँच वर्ण क्रमश: पंच परमेष्ठी के सूचक हैं। इनमें श्वेत वर्ण अरिहंत परमेष्ठी का सूचक है। स्फटिक निर्मलता की प्रतीक होती है तो अरिहंत भी चार घातिया कर्मों का क्षय करके निर्मल स्वरूप में स्थित हैं। लाल रंग पुरुषार्थ का प्रतीक है तो सिद्ध परमेष्ठी ने परम पुरुषार्थ से मोक्ष की सिद्धि की है। अत: उन्हें लाल वर्ण से संसूचित किया गया है। पीत वर्ण वात्सल्य को दर्शाता है तो 'आचार्य' परमेष्ठी संघ को वात्सल्य भाव से अनुशासित कर सन्मार्ग में मर्यादित रखते हैं। अत: उन्हें पीत वर्ण से संकेतित किया गया है। हरा रंग समृद्धि का द्योतक है। 'उपाध्याय' परमेष्ठी संघ को ज्ञान देकर समृद्धि करते हैं अत: हरा रंग उनका सटीक परिचायक है। गहरा नीला रंग अथवा काला रंग साधु परमेष्ठी के उस वैराग्य का द्योतक है जिस पर कोई रंग नहीं चढ़ सकता। इसी कारण से सूरदासजी ने लिखा है - **'सूरदास की काली कामरि चढ़े न दूजो रंग'।** कुछ विचारक इन पाँच वर्णों को क्रमश: अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का प्रतीक भी मानते हैं। इसी कारण से पाँचों वर्णों की समानुपातिक पट्टियों से जैन महाध्वज निर्मित किया गया है।

1. 'श्याम' पद आजकल साँवले या हल्के काले वर्ण का सूचक रूढ़िवसात माने जाना लगा है, किन्तु मूलत: यह हरित वर्ण का ही सूचक है। इसीलिये हरियाली से युक्त पृथ्वी को शस्यश्यामला कहा जाता है।

2. 'निभं' शब्द को नभ या आकाश का समानार्थी माना गया है - **निभं नभ:**[2] तथा आकाश के लिये नीलाम्बर शब्द का प्रयोग मिलता है। वस्तुत: रात्रि में जैसे आकाश का वर्ण गहरा नीला होता है, वही गहरा नीला वर्ण यहाँ निभं पद से अभिप्रेरित है। गहरा नीला होने से रात्रि में आकाश काला प्रतीत होता है। संभवत: इसीलिये निभं पद को काले वर्ण का सूचक मान लिया गया है, परन्तु आलेख में निभं का अभिप्राय नीला माना गया है।

जैसा कि आधुनिक विज्ञान की अवधारणा है कि दृश्य प्रकाश सात रंगों के योग से निर्मित है एवं इन सात रंगों से प्राप्त होने वाली ऊर्जा निम्न क्रम में होती है -

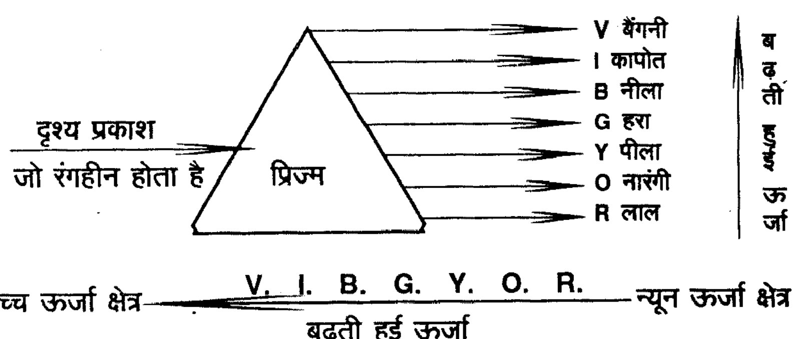

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठकगण ठीक प्रकार से समझ सकें इस हेतु यह बतलाना भी आवश्यक है कि जब कोई वस्तु दृश्य प्रकाश में उपस्थित इन सात रंगों का पूर्ण परावर्तन कर देती है तब वह वस्तु श्वेत (स्फटिक) दिखलाई देती है। परन्तु जब इन सात रंगों का वस्तु द्वारा पूर्ण अवशोषण कर लिया जाता है तब वस्तु काली दिखाई देती है।

जब हम दृश्य प्रकाश में उपस्थित विभिन्न रंगों के माध्यम से णमोकार महामंत्र का उच्चारण करते हैं तब नीचे चित्र में दर्शाये अनुसार ऊर्जा का संचय करते हैं। संचित ऊर्जा से आत्मा में स्थित दिव्य शक्तियाँ अधिक से अधिक उत्पन्न होती हैं। एक बिन्दु ऐसा आता है जब तीव्र ध्यान रूपी अग्नि (संचित ऊर्जा) से कर्म बंधन तड़-तड़ कर टूटना प्रारम्भ कर देते हैं।

विभिन्न रंगों के माध्यम से णमोकार महामंत्र के उच्चारण से ऊर्जा का संचय

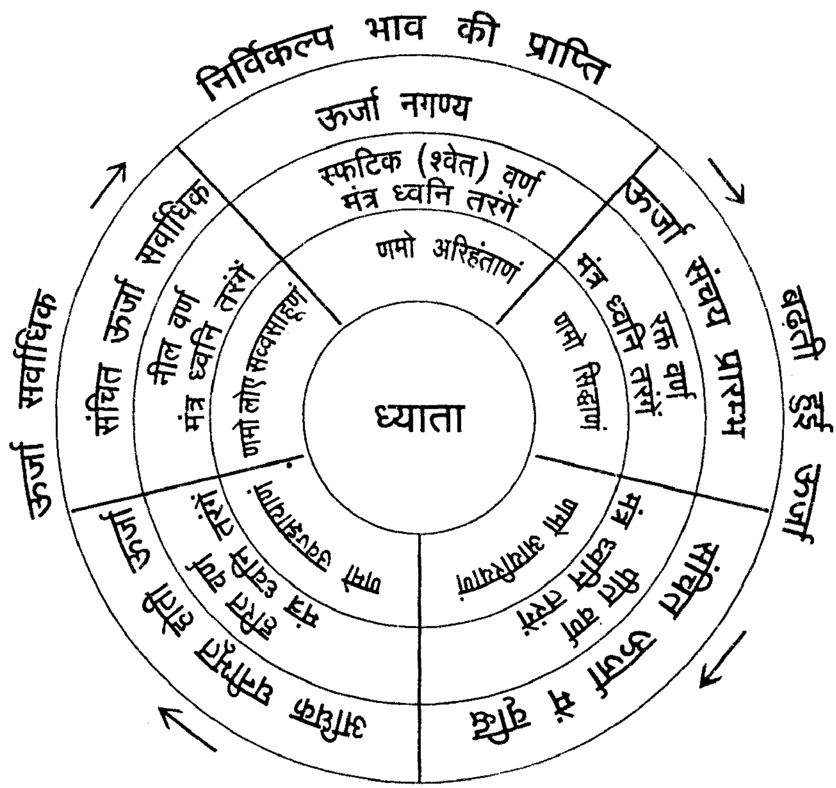

चित्र में दर्शाये अनुसार जब हम साफ स्वच्छ स्थान पर शुद्ध साफ होकर पूर्ण मनोयोग से आत्मकेन्द्रित होकर श्वेत वर्ण के माध्यम से **'णमो अरिहंताणं'** का उच्चारण करते हैं तब हमारे भाव निर्मल एवं निर्विकल्प हो जाते हैं। इस बिन्दु पर हम अपने आपको एकदम तरोताजा महसूस करते हैं एवं अगले पदों के उच्चारण द्वारा प्राप्त ऊर्जा को ग्रहण करने हेतु पूर्ण रूप से तैयार हो चुके होते हैं। आगे जैसे ही रक्त वर्ण के माध्यम से महामंत्र का दूसरा पद **'णमो सिद्धाणं'** का उच्चारण किया जाता है तब मंत्र ध्वनि तरंग जैसे ही रक्त वर्ण के माध्यम से होती हुई हमारी आत्मा तक पहुँचती है वैसे ही आत्मा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में ऊर्जा का संचार प्रारम्भ हो जाता है तथा यह ऊर्जा महामंत्र के तीसरे पद **'णमो आयरियाणं'** का उच्चारण पीत वर्ण के माध्यम में करने पर और अधिक बढ़ जाती है। इसी प्रकार जब महामंत्र के चौथे पद **'णमो उवज्झायाणं'** का उच्चारण हरित वर्ण के माध्यम में किया जाता है तब संचित ऊर्जा और अधिक घनीभूत हो जाती है। महामंत्र के अन्तिम पद **'णमो लोएसव्वसाहूणं'** का उच्चारण नील वर्ण या काले वर्ण के माध्यम में करने पर संचित ऊर्जा अपने चरम पर होती है। इस प्रकार संचित ऊर्जा का उपयोग हम आत्मा स्थित दिव्य शक्तियों के प्रकट होने में लगा देते हैं जिससे निरन्तर कर्मबंध कटते रहते हैं। उपर्युक्त प्रक्रिया को पुन: पुन: दोहराया जाता है। अधिक उत्तम होगा यदि प्रत्येक पद को लगातार कम से कम नौ बार एक ही वर्ण पर केन्द्रित कर दुहराया जाये। ऐसा करने में णमोकार महामंत्र की एक बार में नौ जाप हो जाती हैं।

अन्त में प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या णमोकार महामंत्र का उच्चारण बगैर माध्यम के करना कारगर नहीं होगा? उत्तर - निश्चित होगा, परन्तु तब, जब महामंत्र का जाप पूरी एकाग्रता से किया गया हो। वर्णों का माध्यम चित्त की एकाग्रता बढ़ाता है। आलेख को पढ़कर पुन: प्रश्न उठेगा कि क्या साधु परमेष्ठी के नाम का उच्चारण सर्वाधिक ऊर्जा प्रदान करने वाला होता है, मेरी दृष्टि में निश्चित होता होगा क्योंकि कबीर जैसे आध्यात्मिक चिन्तक के अनुसार -

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय॥

कर्मबन्ध कटने के साथ-साथ जो आगमानुसार है, मेरा स्वयं का अनुभव है कि महामंत्र का प्रतिदिन लगभग 1 घंटा किया गया जाप उच्च एवं न्यून रक्तचाप को नियंत्रित कर लगभग सामान्य कर देता है। साथ में मेरा यह भी मानना है कि अन्य दूसरी व्याधियों का उपचार भी महामंत्र द्वारा संभव है परन्तु इसके सत्यापन हेतु एक सुसज्जित प्रयोगशाला में अनुसंधान करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

सन्दर्भ :

1. मानसार, 55 / 44
2. महाकवि कालिदास, ॠतुसंहारम् 2 / 51

प्राप्त : 06.05.02

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 3, 2003, 53 - 58

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अकबर और जैन धर्म

■ रमा कान्त जैन *

सारांश

सम्राट अकबर की सर्वधर्म समभाव नीति के कारण वह लोकप्रिय शासक रहा। उसके शासनकाल में जैन धर्म के प्रभावना के अनेक कार्य सम्पन्न हुए। जैनाचार्यों एवं भट्टारकों से सम्राट के मधुर सम्बन्ध रहे। वे जैनाचार्यों एवं भट्टारकों का बहुमान करते थे। प्रस्तुत आलेख में इनका विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। **- सम्पादक**

सन् 1540 ई. में कन्नौज के निकट बिहार के पठान सरदार शेरशाह सूरि के साथ हुए भीषण युद्ध में जबरदस्त पराजय प्राप्त कर अपना भारतीय राज्य गँवा मुगल बादशाह नसीरूद्दीन हुमायूँ को जब पलायन करना पड़ा तो उसने पहले सिन्ध की मरूभूमि में शरण ली। वहां अमरकोट नामक स्थान में 1542 ई. में हमीदा बानू बेगम की कोख से उसके बेटे अकबर का जन्म हुआ। सन् 1555 ई. में हुमायूँ ने पुन: पंजाब दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया, किन्तु कुछ मास बाद ही 1556 ई. के प्रारंभ में दिल्ली में अपने पुस्तकालय की सीढ़ी से गिरकर बादशाह हुमायूँ की मृत्यु हो गई। उस समय उसका पुत्र जलालुद्दीन अकबर मात्र 14 वर्ष का बालक था और उसके साम अपने पिता द्वारा विजित दिल्ली और आगरा प्रदेश, जिसे हुमायूँ की मृत्यु होते ही पठान आदिलशाह सूरि के मंत्री एवं सेनापति हेमू ने आक्रमण कर हस्तगत कर लिया था, को पुन: प्राप्त कर लेने तथा भारत में अपने अस्तित्व की रक्षा की कड़ी चुनौतियां थीं। अकबर का राज्याभिषेक पंजाब के जिला गुरूदासपुर में कलानौर गाँव के बाहर बाग में ईटों के कच्चे चबूतरे पर 14 फरवरी 1556 ई. को हुआ था। उस समय उसका राज्याधिकार आस - पास के दस - बीस गाँवों पर ही रह गया था। वह धन - जन दोनों से ही हीन था। मुट्ठी भर सेना हाथ में थी। बैरमखाँ जैसे इने - गिने विश्वासी, स्वामिभक्त और उत्साही सरदार उसके साथ थे। अपने पिता के संघर्षपूर्ण जीवन के कारण उसकी कोई शिक्षा - दीक्षा भी नहीं हो पाई थी। देश की राजनैतिक स्थिति बड़ी विषम थी। दिल्ली के सिंहासन के लिये ही उसके सामने तीन प्रतिद्वन्दी दावेदार हेमू विक्रमादित्य, आदिलशाह सूरि और सिकन्दर शाह सूरि थे और उत्तर भारत में उस समय भीषण अकाल पड़ रहा था। ऐसी विषम परिस्थितियों में अकबर के सामने तीन ही मार्ग थे - या तो हुमायूँ की भांति भारत छोड़कर भाग जाये, या सब आकाक्षांओं को तिलाञ्जलि देकर सामान्यजन की भांति यहीं बस जाये, अथवा राज्योद्धार का प्रयत्न करें। अकबर ने इस तीसरे वीरोचित मार्ग को चुना और शीघ्र ही पानीपत की ऐतिहासिक रणभूमि में 1556 ई. में हेमू को परास्त कर दिल्ली और आगरा पर पुन: अधिकार कर लिया। आदिलशाह और सिकन्दरशाह सूरि ने भी फिर अकबर का कोई विरोध नहीं किया। अकबर की इस ऐतिहासिक विजय ने भारत में मुगल वंश और मुगल साम्राज्य के पैर जमा दिये।

अकबर जन्मत: पूर्ण विदेशी और विधर्मी था भारत और भारतवासियों के लिये। वह पढ़ा - लिखा भी नहीं था, किन्तु वह बुद्धिमान और दूरदर्शी था। उसने यह अच्छी

* ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ - 226 004 (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरह समझ लिया था कि यदि उसे भारत में अपना राज्य जमाना है, तो सैन्य शक्ति के बल पर साम्राज्य विस्तार करने के साथ-साथ इस देश की बहुसंख्यक मुसलमानेतर जनता का दिल भी जीतना होगा। अतः उसने भारतीय और भारतीयों का बनकर राज्य करने का निश्चय किया और उदारता, समदर्शिता और सर्वधर्म सहिष्णुता की कुशल नीति को अपनाया। अपने राज्य के प्रारम्भिक वर्षों (1560-64 ई.) में ही उसनें युद्धबंदियों को गुलाम बनाये जाने की पुरानी प्रथा का अन्त कर दिया, समस्त हिन्दू और जैन तीर्थों पर पूर्ववर्ती सुलतानों द्वारा लगाये गये यात्री-कर को समाप्त कर दिया तथा समस्त मुसलमानेतर भारतीयों पर लगा हुआ जजिया नामक अपमानजनक कर भी हटा लिया।

राक्या गोत्रीय, श्रीमाल जातीय जैन रणकाराव सम्राट अकबर की ओर से आबू प्रदेश के शासक नियुक्त थे और श्रीपुरपट्टन से शासनकार्य चलाते थे। उनके पुत्र राजा भारमल्ल को अकबर नेसांमर (शाकम्मरी) के सम्पूर्ण इलाके का शासक नियुक्त किया हुआ था। राजा भारमल नागौर में निवास करते थे। स्वर्ण और जवाहरात का व्यापार उनके हाथ में था, उनकी अपनी सेना थी और उनके अपने सिक्के चलते थे। उनकी दैनिक आय एक लाख टका (रूपये) थी और स्वयं सम्राट के कोष में प्रतिदिन वह पचास हजार टका देते थे। सम्राट उनका बहुत सम्मान करते थे और शाहजादा सलीम उनसे भेंट करने बहुधा उनके दरबार में नागौर जाया करता था। राजा भारमल धर्मात्मा, उदार, असाम्प्रदायिक मनोवृत्ति के विद्यारसिक श्रीमान थे। धार्मिक कार्यों और दानादि में वह प्रचुर धन खर्च करते थे। काष्ठासंघी भट्टारकीय विद्वान पाण्डे राजमल्ल ने उनकी प्रेरणा से उनके लिये 'छिन्दोविद्या' नामक महत्वपूर्ण पिंगलशास्त्र की रचना की थी। उसमें विविध छन्दों का निरूपण करते हुए कवि ने अपने आश्रयदाता राजा भारमल्ल के प्रताप, यश, वैभव और उदारता आदि का भी सुन्दर परिचय दिया है।

अग्रवाल जैन साह रनबीर सिंह अकबर के समय में एक शाही खजांची और एक शाही टकसाल के अधिकारी थे। उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर अकबर ने उन्हें वर्तमान पश्चिमी उत्तर प्रदेश में एक जागीर प्रदान की थी जिसमें उन्होंने अपने नाम पर ही 'सहारनपुर' नगर बसाया। सहारनपुर में कायम हुई शाही टकसाल के अधीक्षक वही नियुक्त हुए। उनके परिवार द्वारा कई स्थानों पर जैन मंदिर बनवाये गये बताये जाते हैं।

भटानियाकोल (अलीगढ़) निवासी गर्ग गोत्रीय अग्रवाल जैन साहू टोडर आगरा की शाही टकसाल के अधीक्षक थे और अकबर के कृपा पात्र थे। शाही सहायता से वह जैन तीर्थ क्षेत्र मथुरा यात्रा संघ लेकर गये थे और वहाँ के प्राचीन जैन स्तूपों का जीर्णोद्धार कराकर सन् 1573 ई. में उन्होंने समारोहपूर्वक उनकी प्रतिष्ठा कराई थी। इसी उपलक्ष्य में उन्होंने उपर्युक्त पाण्डे राजमल्ल से 1575 में संस्कृत भाषा में 'जम्बूस्वामी चरित' की रचना भी कराई थी। साहू टोडर ने आगरा नगर में भी एक भव्य मंदिर बनवाया बताया जाता है। कवि राजमल्ल ने अपने उपर्युक्त ग्रन्थ में बादशाह अकबर की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि 'धर्म के प्रभाव से सम्राट अकबर ने जजिया नामक कर बन्द करके यश का उपार्जन किया, हिंसक वचन उसके मुख से भी नहीं निकलते थे। हिंसा से वह सदा दूर रहता था, अपने धर्मराज्य में उसने द्यूत और मद्यपान का भी निषेध कर दिया था क्योंकि मद्यपान से मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और वह कुमार्ग में प्रवृत्ति करता है। सन् 1585 ई. में साहू टोडर ने पाण्डे जिनदास नामक एक अन्य विद्वान से हिन्दी भाषा में भी 'जम्बूस्वामिचरित' लिखवाया था। उस कवि ने भी अकबर के सुराज्य और साहू टोडर के धर्म कार्यों की प्रशंसा की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन् 1579 ई. में अकबर मुल्ला - मौलवियों की परवाह किये बगैर स्वयं 'इमामे - आदिल' (धर्माध्यक्ष) बन गया और उसने अपने राज्य में सभी धर्मों को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी इसी वर्ष राजधानी आगरा में दिगम्बर जैनों ने एक मंदिर का निर्माण कराकर समारोहपूर्वक उसकी बिम्ब - प्रतिष्ठा की। आगरा के निकट शौरीपुर और हथिकन्त में तथा साम्राज्य की द्वितीय राजधानी दिल्ली में नन्दि संघ, काष्ठा संघ एवं सेन संघ के दिगम्बर परम्परा के भट्टारकों तथा श्वेताम्बर यतियों की गदिद्यां पहले से थीं। फतेहपुर सीकरी के अपने इबादतखाने में अकबर शैव, वैष्णव, जैन, पारसी, इसाई, शिया, सुन्नी, सूफी आदि सभी धर्मों और विचारधाराओं के विद्वानों को आमन्त्रित कर उनके पारस्परिक वाद - विवाद चाव से सुनता था और यदा - कदा स्वयं भी उन वाद - विवादों में भाग लेता था। विभिन्न धार्मिक विचारधाराओं के इस प्रकार अध्ययन से उन सबका समन्वय कर उसने अपने नवीन मत **'दीने - इलाही'** को जन्म दिया था।

सन् 1581 ई. में बादशाह ने श्वेताम्बर जैनाचार्य हरिविजय सूरि को बुलाने हेतु गुजरात के सूबेदार साहबखाँ के पास संदेश भेजा। बादशाह के आमंत्रण पर आचार्य गुजरात से पैदल ही चलकर आगरा आये। बादशाह ने उनका भव्य स्वागत किया और उनकी विद्वत्ता एवं उपदेशों से प्रभावित होकर उन्हें 'जगद्गुरु' की उपाधि प्रदान की। बादशाह ने फतेहपुर सीकरी के अपने महल में जैन गुरुओं के बैठने के लिये जैनकलायुक्त एक छत्री भी बनवाई जो 'ज्योतिषी की बैठक' कहलाती थी। आचार्य हरिविजय के शिष्य विजयसेनगणि ने दरबार में 'ईश्वर कर्ता - हर्ता नहीं है' विषय पर अन्य धर्मों के विद्वानों से शास्त्रार्थ किया और भट्ट नामक ब्राह्मण विद्वान को पराजित कर 'सवाई' उपाधि प्राप्त की। बादशाह ने उन्हें लाहौर में भी अपने पास बुलाया था। यति भानुचन्द्र ने बादशाह के लिये 'सूर्यसहस्रनाम' की रचना की थी। अत: वह 'पाठशाह अकबर जुलालुद्दीन सूर्यसहस्रनामाध्यापक' कहलाते थे। वह फारसी के भी उद्भट विद्वान थे। बादशाह ने प्रसन्न होकर उन्हें 'खुशफ़हम' उपाधि प्रदान की थी। कहा जाता है कि एक बार बादशाह अकबर के सिर में भयंकर दर्द हुआ। भानुचन्द्र बुलाये गये। उन्होंने बताया कि वह कोई वैद्य - हकीम नहीं है। किन्तु जब बादशाह के विशेष आग्रह पर यतिजी ने उनके माथे पर हाथ रखा तो बादशाह की पीड़ा दूर हो गई।

मुनि शान्तिचन्द्र का भी अकबर पर बड़ा प्रभाव था। एक बार ईदुज्जुहा (बकरीद) के निकट वह बादशाह के पास ही थे। उन्होंने ईद से एक दिन पहले वहाँ से चले जाने की बादशाह से अनुमति मांगी क्योंकि अगले दिन ईद के उपलक्ष्य में हजारों - लाखों निरीह पशुओं का वध होने वाला था। मुनि शान्तिचन्द्र ने कुरान शरीफ की आयतों से यह सिद्ध कर दिखाया कि 'कुर्बानी का मांस और खून खुदा को नहीं पहुँचता, वह इस हिंसा से प्रसन्न नहीं होता, बल्कि परहेजगारी से प्रसन्न होता है, रोटी और शाक खाने से ही रोजे कबूल हो जाते हैं।' उन्होंने अन्य अनेक मुसलमान ग्रन्थों का हवाला देकर बादशाह और उसके उमरावों के दिल पर अपनी बात की सच्चाई जमा दी। फलस्वरूप उस वर्ष ईद पर किसी जीव का वध न किये जाने की घोषणा बादशाह ने करा दी।

बीकानेर नरेश रायसिंह के मन्त्री कर्मचन्द्र बच्छावत की प्रेरणा से अकबर ने 1592 ई. में श्वेताम्बर यति जिनचन्द्रसूरि को खम्भात से आमन्त्रित किया और लाहौर पधारने पर उनका उत्साह से स्वागत किया। जिनचन्द्रसूरि ने अकबर का प्रतिबोध करने हेतु 'अकबर प्रतिबोधरास' ग्रन्थ का प्रणयन किया था और बादशाह ने उन्हें 'युग प्रधान' उपाधि प्रदान की थी तथा उनके कहने से दो फरमान जारी किये थे। एक फरमान के द्वारा खम्भात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की खाड़ी में मछली पकड़ने पर प्रतिबन्ध लगाया गया और दूसरे के द्वारा आषाढ़ी अष्टान्हिका में पशुवध का निषेध किया गया। सूरिजी के साथ उनके शिष्य मानसिंह, विद्याहर्ष, परमानन्द और समयसुन्दर भी पधारे थे। बादशाह के परामर्शानुसार सूरिजी ने अपने शिष्य मानसिंह को 'जिनसिंहसूरि' नाम देकर उन्हें अपना उत्तराधिकार और आचार्य पद प्रदान किया था तथा यह पट्टबन्धोत्सव अकबर की सहमति से कर्मचन्द्र बच्छावत ने समारोहपूर्वक मनाया था। पट्टन के पार्श्वनाथ मंदिर में अंकित वृहत् संस्कृत शिलालेख में जिनचन्द्रसूरि विषयक यह सब प्रसंग वर्णित हैं।

मुनि पद्मसुन्दर भी बादशाह से सम्मानित हुए थे और उन्होंने 'अकबरशाही श्रृंगारदर्पण' ग्रन्थ की रचना की थी। सन् 1594 ई. में ग्वालियर निवासी कवि परिमल ने आगरा में रहकर अपने 'श्रीपाल चरित्र' की रचना की जिसमें अकबर की प्रशंसा, उसके द्वारा गोरक्षा के कार्य और आगरा नगर की सुन्दरता का वर्णन है।

उपर्युक्त कर्मचन्द्र बच्छावत जब बीकानेर नरेश से अनबन होने पर अकबर की शरण में आ गये तो उसने उन्हें भी अपना एक प्रतिष्ठित मंत्री बना लिया। कर्मचन्द्र बच्छावत ने पूर्ववर्ती सुलतानों द्वारा अपहृत अनेक धातुमयी जिनमूर्तियां मुसलमानों से प्राप्त कर उन्हें बीकानेर के मंदिरों में भिजवाया था। कहा जाता है कि एक बार शाहजादे सलीम के घर मूल नक्षत्र के प्रथम पाद में कन्या का जन्म हुआ। ज्योतिषियों ने कन्या के ग्रह उसके पिता के लिये अनिष्टकारक बताये और उसका मुख देखने का भी निषेध किया। बादशाह अकबर ने अबुलफजल आदि विद्वान अमात्यों से परामर्श कर मन्त्री कर्मचन्द्र बच्छावत को जैन धर्मानुसार ग्रहशान्ति का उपाय करने का आदेश दिया। मंत्री ने चैत्र शुक्ल पूर्णिमा के दिन स्वर्ण रजत कलशों से तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की प्रतिमा का समारोहपूर्वक अभिषेक किया। पूजन की समाप्ति पर मंगलदीप और आरती के समय अकबर अपने पुत्रों और दरबारियों के साथ वहाँ आया, उसने अभिषेक का गन्धोदक विजयपूर्वक अपने मस्तक पर चढ़ाया और अन्तःपुर में बेगमों के लिये भी भेजा तथा उक्त जिन मंदिर को दस सहस्र मुद्राएं भेंट की। गुजरात में गिरनार, शत्रुञ्जय आदि जैन तीर्थों की रक्षार्थ अकबर ने अहमदाबाद के सूबेदार आजमखाँ को फरमान भेजा था कि राज्य में जैन तीर्थों, जैन मंदिरों और मूर्तियों को कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार की क्षति न पहुँचाये और यह कि इस आज्ञा का उल्लंघन करने वाला कठोर दण्ड का भागी होगा।

उसी काल के मेड़ता दुर्ग के जैन मंदिरों के शिलालेखों में लिखा है कि 'अकबर ने जैन मुनियों को 'युगप्रधान' पदवी दी। प्रतिवर्ष आषाढ़ की अष्टान्हिका में अमारि (जीवहिंसानिषेध) घोषणा की, प्रतिवर्ष सब मिलाकर छह मास पर्यन्त समस्त राज्य में हिंसा बन्द करायी, खम्भात की खाड़ी में मछलियों का शिकार बन्द करवाया, शत्रुञ्जय आदि तीर्थों का करमोचन किया, सर्वत्र गोरक्षा प्रचार किया आदि।'

सन् 1595 ई. में पुर्तगाली जैसुइट पादरी पिन्हेरों ने अपने बादशाह को पुर्तगाल भेजे एक पत्र में, अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर लिखा था कि 'अकबर जैन धर्म का अनुयायी हो गया है, वह जैन नियमों का पालन करता है, जैन विधि से आत्मचिंतन एवं आत्माराधन में बहुधा लीन रहता है, मद्य-मांस और द्यूत के निषेध की आज्ञा उसने प्रचारित कर दी है।'

विद्याहर्ष सूरि ने 1604 ई. में प्रणीत अपने ग्रन्थ 'अंजनासुन्दरीरास' में लिखा है कि 'विजयसेन आदि जैन गुरुओं के प्रभाव से अकबर ने गाय, बैल, भैंस, बकरी आदि पशुओं की हिंसा का निषेध कर दिया था, पुराने कैदियों को मुक्त कर दिया था, जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुओं के प्रति भक्ति प्रदर्शित की थी, दान-पुण्य के कार्यों में वह सदा अग्रसर रहता था।'

अकबर के मित्र एवं प्रमुख अमात्य अबुलफजल की 'आइने-अकबरी' में अकबर की उक्तियां भी दी हुई हैं जो उसकी मनोवृत्ति की परिचायक हैं। वह कहा करता था कि 'यह उचित नहीं है कि मनुष्य अपने उदर को पशुओं की कब्र बनावे। बाजपक्षी के लिये मांस के अतिरिक्त कोई अन्य भोजन न होने पर भी उसे मांस भक्षण का दण्ड अल्पायु के रूप में मिलता है, तब मनुष्यों को, जिनका स्वाभाविक भोजन मांस नहीं है, इस अपराध का क्या दण्ड मिलेगा? कसाई, बहेलिये आदि जीव हिंसा करने वाले जब नगर से बाहर रहते हैं तो मांसाहारियों को नगर के भीतर रहने का क्या अधिकार है? मेरे लिये यह कितने सुख की बात होती कि यदि मेरा शरीर इतना बड़ा होता कि सब मांसाहारी केवल उसे खाकर सन्तुष्ट हो जाते और अन्य जीवों की हिंसा न करते। जीव हिंसा को रोकना अत्यन्त आवश्यक है इसीलिये मैंने स्वयं मांस खाना छोड़ दिया।'

उपर्युक्त के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना तो अत्युक्ति होगी कि अकबर बादशाह जैन धर्मानुयायी और पूर्णतया शाकाहारी हो गया था, किन्तु इससे इतना स्पष्ट है कि वह सर्वधर्म समभावी महान सम्राट जैन गुरुओं से भी प्रभावित रहा और उसने जीव हिंसा और मांसाहार को त्याज्य माना था।

विद्वानों का आदर करने वाले विद्यारसिक अकबर बादशाह के राज्यकाल में उसके आश्रय में तथा अन्यथा विपुल साहित्य सृजन हुआ था। अबुलफजल ने 'अकबरनामा' और 'आइने-अकबरी' का प्रणयन किया। 'आइने-अकबरी' में जैन धर्मानुयायियों और जैन धर्म का विवरण भी संकलित है। इस ग्रन्थ की रचना में उसने जैन विद्वानों का भी सहयोग लिया बताया जाता है। बंगाल आदि के नरेशों की वंशावली उसने उन्हीं की सहायता से संकलित की बताई जाती है। अलबदायुनी और निजामुद्दीन ने इतिहास ग्रन्थ लिखे और फैजी ने सूफी कविताएं रचीं। अब्दुर्रहीमखानरवाजा (रहीम) के लोकप्रिय दोहे और बीरबल के चुटकुले अकबर के दरबार की ही देन है। कहते हैं अकबर स्वयं भी कविता करता था और उसने 'महाभारत' व अन्य प्राचीन भारतीय ग्रन्थों का फारसी में तथा फारसी ग्रन्थों का संस्कृत में अनुवाद कराया था। कृष्णभक्त महाकवि सूरदास के पद, अष्टछाप के कवियों की भक्तिपरक रचनाएं और रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास का सुप्रसिद्ध 'रामचरित मानस' एवं अन्य कृतियां उसी काल की हैं। नरहरि, गंगा प्रभृति अन्य अनेक कवि भी अकबर के राज्यकाल में हुए। अध्यात्मरसिक कविवर बनारसीदास का जन्म भी उसके राज्यकाल में 1586 ई. में हो चुका था। उनके आत्मचरित्र 'अर्द्ध कथानक' से विदित होता है कि संवत् 1662 (1605 ई.) में अकबर के निधन का समाचार सुनकर उन्हें इतना आघात लगा था कि घर पर सीढ़ी पर बैठे हुए लुढक गये और उनका माथा फूट गया था।

जैन साहित्यकार भी अकबर के राज्यकाल में भारती का, विशेषकर हिन्दी साहित्य का, भंडार भरने में किसी से पीछे नहीं रहे। पूर्व पंक्तियों में उल्लिखित कृतियों के अतिरिक्त कर्मचन्द्र की 'मृगावती चौपई', पाण्डे रूपचन्द्र का 'परमार्थी दोहाशतक' एवं 'गीत परमार्थी', पाण्डे राजमल्ल की 'पञ्चाध्यायी', 'लाटीसंहिता', 'अध्यात्मकमलमार्त्तण्ड' और आचार्य कुन्दकुन्द के 'समयसार' पर 'बालाबोधनी टीका', भट्टारक सोमकीर्ति का 'यशोधररास', ब्रह्मरायमल्ल (1559 ई.) के 'हनुमन्तचरित्र', 'सीताचरित्र' एवं 'भविष्यदत्तचरित्र', विशाल कीर्ति (1563 ई.) का 'रोहिणीव्रतरास', सुमतिकीर्ति (1568 ई.) का 'धर्मपरीक्षारास', विजयदेवसूरि (1576 ई.) का 'सीलरासा', 1576 ई. में बाग्वर (बागड़) देश के शाकावारपुर (सागवाड़ा) के हूमड़वंशी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेठ हर्षचन्द्र और उसकी पत्नी के अनन्तव्रत उद्यापन पर भट्टारक गुणचन्द्र द्वारा आदिनाथ चैत्यालय में रची 'अनन्तजिनव्रत पूजा', कुम्भनगर के बड़गूजर राजकुमार पद्मासिंह अपरनाम शिवाभिराम द्वारा पहले संस्कृत में 'चन्द्रप्रभ पुराण' की तथा तदनन्तर 1582 ई. में दिविजनगर दुर्ग (सम्भवतया देवगढ़) के जिनालय में 'षट्चतुर्थ-वर्तमान-जिनार्चन' काव्य की रचना पाण्डे जिनदास (1585 ई.) का 'जम्बूचरित्र', 'ज्ञानसूर्योदय', 'जोगीरासा' और फुटकर पद, कल्याणदेव (1586 ई.) की 'देवराज बच्छराज चौपई', मालदेवसूरि (1595 ई.) की 'पुरन्दरकुमार चौपई', सन् 1602 ई. में आमेर महाराज मानसिंह के महामात्य साह नानू की प्रेरणा से मुनि ज्ञान कीर्ति द्वारा संस्कृत काव्य 'यशोधर चरित्र' की रचना तथा उदयराज जती (1603 ई.) के राजनीति के दोहे आदि अकबर के राज्यकाल की देन हैं।

इन्दौर के निकट रामपुरा-भानपुरा क्षेत्र में मुगल बादशाह की ओर से नियुक्त शासक दुर्गभान के समय में 1559 ई. में कमलापुर (भानपुरा से 7 मील दूर) में संघपति डूंगर ने सुन्दर 'महावीर चैत्यालय' बनवाया था, जो 'सास-बहू का मंदिर' भी कहलाता था। सन् 1591 ई. में रणथम्भौर दुर्ग में वहाँ पर मुगल बादशाह द्वारा नियुक्त शासक जगन्नाथ के मंत्री अग्रवाल जैन रवीमसी (तेमसिंह) ने एक भव्य जिनालय बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा कराई थी। उसी वर्ष निमाड़ (वर्तमान मध्यप्रदेश के अन्तर्गत) में सुराणावंशी संघपति साहु माणिक ने रत्नाकरसूरि से बिम्ब प्रतिष्ठा कराई थी। सन् 1600 ई. में उपर्युक्त कमलापुर में भट्टारक पद्मसागरसूरि ने 'आदिनाथ बिम्ब' प्रतिष्ठा की।

जैन इतिहास में अकबर का उल्लेखनीय स्थान इसी कारण है कि किसी भी जैनेत्तर सम्राट से जैन धर्म, जैन गुरूओं और जैन जनता को उस युग में जो उदार सहिष्णुता, संरक्षण, पोषण और मान प्राप्त हो सकता था वह उससे प्राप्त हुआ। यहाँ तक कहा जाता है कि भावदेवसूरि के शिष्य शीलदेव से प्रभावित होकर अकबर ने 1577 ई. के लगभग एक जिन मंदिर के स्थान पर बनायी गई मस्जिद तुड़वाकर फिर से जिन मंदिर बनवाने की आज्ञा दे दी थी।

टिप्पणी - विशद जानकारी हेतु इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की कृतियां - 'भारतीय इतिहास : एक दृष्टि' तथा 'प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरूष और महिलाएँ और कविवर बनारसीदास का 'अर्द्ध कथानक' दृष्टव्य हैं।

प्राप्त : 10.06.02

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 3, 2003, 59 - 64

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

भारतीय राष्ट्रीयता के अतिपुरुष श्री सुहेलदेव एवं कवि द्विजदीन विरचित सुहेलबावनी

■ पुरुषोत्तम दुबे *

सारांश

प्रस्तुत लेख में भगवान संभवनाथ की जन्मभूमि श्रावस्ती के जैन नरेश ***श्री सुहेलदेव*** *के जीवन एवं उनके शौर्य एवं पराक्रम पर लिखी पुस्तक* ***सुहेलबावनी*** *के काव्यात्मक वैशिष्ट्य की चर्चा है। जैन नरेश का जीवन एवं सुहेलबावनी दोनों वीर रस से परिपूर्ण एवं वर्तमान पीढ़ी हेतु प्रेरक हैं।* **- सम्पादक**

भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास में अनुसंधानों के कार्य अभी भी शेष हैं। न जाने कितने ही युगपुरुष इतिहास की परतों के नीचे अचीन्हें रहकर दबे पड़े हैं। समय ने जिनको याद किया है उनकी ध्वनियाँ प्रेरणा सदृश हमारे मध्य उपस्थित हैं परन्तु वर्तमान में प्रासंगिकता की दृष्टि से इतिहास के आद्योपांत अध्ययन की आवश्यकता जोर पकड़ने लगी है। इतिहास में अवस्थित युगपुरुषों के चरित्रों की निधियाँ राष्ट्रीय हित में अपरम्पार कार्य के वैशिष्ट्य से उद्वेलित हैं। राष्ट्रीय ऐतिहासिक चरित्रों की गुणवत्ताएँ अतीत में कई बार दोहराई गई हैं। जब भी राष्ट्र के सम्मुख संकट की घड़ियाँ उभर कर आई हैं, इतिहास में वर्णित युगपुरुषों के त्याग और बलिदानों की गाथाओं का अनुसरण कर संकटों का निष्पादन किया गया है। अत: इतिहास से जानकारी बटोरना और इतिहास से सीखना एक प्रकार से दृष्टि - सम्पन्न होने जैसा है।

भारतीय राष्ट्रीय इतिहास की धारा अनेक मोड़ और घुमावों के व्यवधानों से टकराकर भी सदैव अविरल रही है। राष्ट्र में लड़ी जाने वाली हमारी लड़ाइयाँ आजकल की बात न होकर सदियों पुरानी है। हमने दो समय के भोजन की आवश्यकता की भाँति राष्ट्रप्रेम को पाला है और राष्ट्र के हित से प्राण - पण को जोड़ा है। हमारी वसुन्धरा के चमकते हुए कलेवर ने कई बार विदेशियों को ललचाया है। फलस्वरूप आक्रांता के अर्थ में आई विदेशी शक्तियों से हमको लोहा लेना पड़ा है। अतीत के हजारों सालों में हमने हमारी कमर की कसावट को ढीला नहीं किया है। हम बीती शताब्दियों में हजारों साल राष्ट्र की सीमाओं पर जागते रहे हैं और शत्रुओं के दाँतों को खट्टे करते रहे हैं। हमारे बलिदानों से अभिषिक्त होकर ही वर्तमान में हमारा देश भारत स्वतंत्रता के सिंहासन पर आरूढ़ है।

अटक से लेकर कटक तक और कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक एक जैसी धड़कनों से पूरा राष्ट्र स्पन्दित रहा है। जातिगत भिन्नता और वर्गीय अनेकता का भान हम राष्ट्रीय हित में भूल कर चले हैं, तभी तो विश्व में सिरमौर हमारी शक्तियाँ रही हैं। शत्रुओं के आगे घुटने टेकने की आदत को हमने कभी बलवती नहीं होने दिया है। अहिंसा और संधि प्रस्तावों जैसे मानवीय भावों से यूँ तो हर समय हम परिचालित रहे हैं लेकिन जब भी इस आशय के चलते शत्रुओं ने हमको कायर समझकर हल्ला बोला है तब हमने दुगुना साहस संचित कर शत्रुओं को धराशायी बनाया है।

किसी भी राष्ट्रीय चरित्र की पहचान हमने जाति और धर्म के बल पर नहीं ली है। जो भी राष्ट्र हित में लड़ा है वह जाति और धर्म से ऊपर रहा है फिर भी स्थापना के आशय में हमने हमारे राष्ट्रीय चरित्रों को उनकी जाति और उनके धर्म को पहचान के अर्थ में सुरक्षित रखा है। ऐसा इसलिये कि समय - समय पर उनकी विरदावलियों का

* प्राध्यापक - हिन्दी, शशीपुष्प, 74 जे/ए, स्कीम नं. 71, इन्दौर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बखान कर सकें ताकि हमारे राष्ट्र में रह रहे विभिन्न समुदायों और जातियों के लोग स्वयं पर गर्व करने लगें कि राष्ट्रीय अस्मिता को संवारने में मात्र एक जाति अथवा धर्म के पालन कर्ता का ही विनियोग नहीं रहा है, अपितु समस्त जातियों के कर्णधारों ने भारतीय राष्ट्रीय स्वरूप को निहाल किया है।

भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में सूर्यवंशशिरोमणि श्री सुहेलदेव जैन नरेश को कदापि नहीं भुलाया जा सकता है। इतिहास में सुहेलदेव को सुहृदध्वज के नाम से भी अभिहित किया गया है। सुहेलदेव वास्तव में गोण्डा के थे। उन्हें 'वैश्य' और 'जैन' वर्णित किया गया है। गजेटियर जिला बहराइच में लिखा है कि - **'राजा सुहेलदेव राय जैनी राजा थे। इनकी राजधानी श्रावस्तीपुरी थी।'** सुहेलदेव के जैन होने की पुष्टि जर्नल एशियाटिक सोसायटी सन् 1900 ई. के प्रथम पृष्ठ पर छपा मि. स्मिथ का एक लेख है जिसमें लिखा है कि **'राजा सुहेलदेव राय जैन थे। सुहेलदेव अहिंसा धर्म को जानते थे तथा राष्ट्र धर्म का पालन करना अनिवार्य समझते थे।'**

श्रावस्ती जैन नरेशराजा सुहेलदेव के ऐतिहासिक चरित्र को आधार बनाकर **स्व. पं. गुरुसहाय दीक्षित 'द्विजदीन'** ने श्री सुहेलबावनी की रचना कर भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में श्रावस्ती नरेश राजा सुहेलदेव जैन के महती योगदान को निरूपित किया है। 'बावनी' बावन पदों के संकलन को कहते हैं। स्वयं श्री द्विजदीन स्कूल में हिन्दी के शिक्षक थे अतएव हिन्दी काव्य-लेखन की परम्पराओं और धाराओं से उनका समीप का परिचय था। यही कारण है कि द्विजदीन ने श्रेष्ठ वीर श्री सुहेलदेव के चरित्र को आधार बनाकर श्री सुहेल बावनी की रचना की।

हिन्दी काव्य जगत में इतिहास के सद्वंशजात और धीरोदात्त चरित्र वाले नायकों को लेकर काव्य रचने की प्राचीन परम्परा रही है। हिन्दी के रासो साहित्य में जहाँ ऐतिहासिक महत्व के चरित्रों को आधार बनाया गया है, वहाँ थोड़ा बहुत काव्य की भाषा के गढ़ने का कार्य भी हुआ है। इसके अतिरिक्त रासो काव्य परम्परा तत्कालीन अभिरूचियों, विश्वासों तथा काव्य रूचियों के आधार पर इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत करती है। हिन्दी में वीरगाथा काल के नामकरण का आधार उपस्थित करने में रासो साहित्य का बड़ा महत्व है। हिन्दी में दलपत विजय का 'खुमान रासो', नरपति का 'बीसलदेव रासो', चन्दर वरदाई का 'पृथ्वीराज रासो', जगनिक का 'परमाल रासो', नल्लसिंह भट्ट का 'विजयपाल रासो' और सारंगधर का 'हमीर रासो' इस बात के प्रमाण हैं कि रासो साहित्य की रचनाओं में किसी विशेष प्रवृत्ति का निश्चय नहीं मिलता है अपितु धर्म, नीति, श्रृंगार तथा वीर सब प्रकार की रचना दोहों में मिलती है तथापि इस अनिर्दिष्ट लोक प्रवृत्ति के उपरान्त जब से मुसलमानों के आक्रमणों का आरम्भ होता है तब से हिन्दी साहित्य की प्रवृत्ति एक विशेष रूप में बंधती हुई पाते हैं। हिन्दी काव्य में पराक्रमपूर्ण चरित्रों अथवा गाथाओं का वर्णन हमलावर मुसलमान शासकों के साथ भारतीय या देशी राजाओं की टकराहट का परिणाम है।

'श्री सुहेलदेव बावनी' के रचयिता पं. द्विजदीन ने जिस चरित्र नायक की स्थापना प्रस्तुत स्फुट-काव्य में की है उसका ऐतिहासिक आधार भी मिलता है। कनिंघम आर्कोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट ऑफ इण्डिया व स्मिथ जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी जैन नृपति श्रावस्ती नरेश श्री सुहेलदेव के संबंध में लिखा मिलता है कि जब भारत में मुसलमानों ने आक्रमण किया और वे उत्तर भारत में घुसने लगे तो उनका सामना जैन नरेश श्री सुहेलदेव ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीरतापूर्वक किया था।

ग्यारहवीं सदी के समारम्भ का समय था जब मुसलमान शासक महमूद ने भारत पर आक्रमण किया था। पं. द्विजदीन ने उस समय की भारतीय अवस्था को निरूपित करते हुए 'श्री सुहेलबावनी' के द्वितीय छन्द में कहा है -

ग्यारहवीय सदी का समारम्भ हो रहा था जब,
भारत के भाग्य पै बिगड़ चुका व्योम था।
खण्ड - खण्ड होके राज दण्ड हो चले थे ढीले,
अहमान्यता का विष भरा रोम - रोम था॥

कवि द्विजदीन देश डूबा था विलासिता में,
भूल चुका नाम रामकृष्ण हरिओम था।
ज्ञान रवि मोह गिरि पीछे जा छिपा था तब,
दम्भ का विषैला अति घोर तम तोम था॥

कविवर पं. द्विजदीन ने प्रस्तुत छन्द में ग्यारहवीं सदी के भारत की विपन्न दशा का चित्रण किया है। हमारा राष्ट्र छोटे - छोटे राज्यों में विभक्त था। सभी देसी राजा ज्ञानहीन और दम्भ से भरे हुए थे। पूरा देश विलासिता के महानद में डूबा हुआ था। ईश्वर की उपासना को बिसरा दिया गया था। यहाँ यह भाव पकड़ में आता है कि ग्यारहवीं सदी के भारत में छोटे - छोटे राज्यों के शासकों में राष्ट्रीयता का भान और पारस्परिक सामंजस्य का भाव नहीं था तथा तब के भारत की ऐसी दुर्बल अवस्था थी कि साम्राज्यवाद के विस्तार के भूखे किसी भी विदेशी शासक के भारत पर हमला करने का मार्ग प्रशस्त था। फलस्वरूप तत्कालीन भारत की आंतरिक दुरावस्था का लाभ लेने के अर्थ में मुस्लिम शासक महमूद गजनवी ने भारत पर आक्रमण कर दिया -

जोरि दल लायो गजनी ते आतताइन को,
करत कसाइन को काम असि फैरि कै।
लूटत नगर गाँव गोठि लौ बचत नाहिं,
आगिन लगावै औ जरावै घेरि घेरि कै॥

हाहाकार मचिगो प्रलै सो सिंधुतट पर,
पंचनद पाँयन कुचलि डारयो खेरि कै।
बाल वृद्ध वनिता युवक जरि व्हार भये,
जमकी जमाति से हरामी हँसे हेरि कै॥

महमूद गजनी को भारतीय राजे - महाराजे की ढीलों का सुफल मिला। भारत में प्रवेश कर महमूद की दृष्टि अवध को जीतने के लिये ललचायी। तब अवध का बहराइच जनपद का क्षेत्र जैन नरेश सुहेलदेव के अधीन था। महमूद गजनी ने संभवत: प्रतापी राजा सुहेलदेव को दुर्बल मानकर उनसे स्वयं युद्ध न करने की सोचकर अपनी बहिन के पुत्र सैयद सालार को बहराइच पर आक्रमण करने के लिये भेजा था।

साहू संग सैयद सलार है सरोस आयो, जोरि दल दीरघ लुटेरे तुरकन को।
पंचन्नद गुरजर मथुरा कन्नौज देस, करकन लागे देखि तेग तरकन को॥

चौवा चौवा भूमि सब कौवा सोमझाय डार्यो, क्रूरता दिखाइ भे, मकौवा लरिकन को।
झण्डा इसलामी गाड़्यो सप्त ऋषि थान पर, रूद्रपुरी डांड़्यो भय छाँड़्यो नरकन को॥

रणवांकुरा सैयद सालार की बहराइच पर आक्रमण की सूचना से वीर सुहेलदेव का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोध खौल उठा। उनका चेहरा लाल हो गया, फलस्वरूप अहिंसा के पुजारी राजा सुहेलदेव ने राष्ट्र धर्म को सर्वोपरि रखते हुए तथा जैन शास्त्रों में निर्दिष्ट विधान से अनुप्राणित होकर विरोधी हिंसा को अपना विधेय मानकर सैयद सालार से मुकाबले की ठान ली -

सुनत सलार के हवाल तन लाल भयो,
त्योरी परी वक उमगी उमंग रनोकी।
फरकि फरकि भुजदण्ड उभरौहें भये,
भरकि भरकि उठी आगि अभिरन को।
कवि द्विजदीन क्रोध बढ़त उतालन पै,
घालन को घाघरा पै सेन यवनन की।
प्यासी प्रान की कृपान रूधिर नहान जानि,
खान को मियान कौं मियान ही ते खन की॥

सैयद सालार के आक्रमण की मंशा को समझकर वीर शिरोमणि सुहेलदेव ने अपनी सेना और सामंतों से भरे खचाखच दरबार में सैयद सालार के विरूद्ध यह ठाना कि -

सिंह की शोरो! है स्वर्ण सुयोग न, भूलि के पैर को पीछे हटाना।
है हम वंशज पारथ भीम के, शत्रुओं को भली - भाँति जताना॥
यो चमके द्विजदीन कृपाण कि, सोना हो स्वप्न हराम जो खाना।
वीरों! चलो समरांगन को, प्रण ठानों न माता का दूध लजाना॥

इतना ही नहीं, वीर सुहेलदेव ने अपनी सेना और सामंतों को राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए विलुण्ठित हुए मथुरा के मन्दिर सोमपती की खण्डित मूर्ति, गायों और चोटियों के कटने की घटनाओं का हवाला दिया और महमूद गजनी के मनसूबे को नष्ट करने का वादा लिया -

मंदिर वै मथुरा के विलुण्ठित, मार रहे बड़ी देर से ताना।
सोमपती का वो खण्डित मूर्ति, पुकार रही कर क्रन्दन नाना॥
चोटी कटी कटती सुरभी, द्विजदीन सरोष सुहेल बखाना।
वीरों! बढ़ो बदला दिल खोल के लो, बैठे रहे से भला मर जाना॥

वीर सुहेल देव की राष्ट्रहित में की गई एक पुकार पर सम्पूर्ण सेना में जैसे मातृभूमि के प्रति कर्तव्य निर्वहन का भाव संचारित हो गया। फलत: सैयद सालार से मुकाबले के लिये श्रावस्ती नरेश अपनी चतुरंग सेना को लेकर बहराइच की ओर निकल पड़े -

स्रावती नगर तै कढ़यो है श्री सुहेलदेव,
संग चतुरंग रन रंग भरकै लगे।
हस लागे हींसन त्यों गज चिक्करन लागे,
ज्वानन के आँख के तरेरे तरकै लगे॥
कवि द्विजदीन दिग्गजन पै दरेरा परयो,
हेरा पर्यो हर को औ सेस सरकै लगे।
आतुर तुरक दल खण्डन को मण्डि रन,
भानु कुल भूप भुजदण्ड फरकै लगे॥

अन्तत: एक ओर रणबाँकुरा सैयद सालार और श्रावस्ती का अहिंसा व्रती शासक नरेश सुहेलदेव का आमना - सामना सन् 1030 ई. को बहराइच से 5 मील पर कुटिला नदी के तट पर हिन्दू और मुसलमानों की सेनाओं के भिड़ने के अर्थ में हुआ। जो सैयद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सालार शत्रुओं को हराता हुआ आगे बढ़ता आया था उसको बहराइच के समीप पहुँचने पर वीर सुहेलदेव के सामने लोहे के चने चबाने पड़े। वीर सुहेलदेव ने रण क्षेत्र में आते ही मुसलमानों के छक्के छुड़ा दिये। सैयद सालार को पराभूत होते देख उसकी मदद के लिये शीघ्र ही महोबा से हसन, गोपामऊ से अजीजुद्दीन, लखनऊ से मलिक आदम और कड़ा मानिकपुर से मालिक फैज सदल बल पहुँचे थे। वीर सुहेलदेव इस शौर्य और पराक्रम से लड़े कि एक भी मुसलमान जीवित न बचा।

अब्दुर्रहमान चिश्ती ने 'मीराते मसऊदी' नामक पुस्तक में, जो कि जहाँगीर बादशाह के समय लिखी गई है, वर्णन करते हुए लिखा है कि सैयद सालार मसऊद गाजी की सेना 17 शावान सन् 425 हिजरी (ई. सन् 1033) को बहराइच पहुँची। कौड़िया के निकट हिन्दुओं को हराया। इसके उपरान्त राजा सुहेलदेव राय ने युद्ध संचालन अपने हाथ में लेकर उनके पड़ाव को बहराइच में आ घेरा। यहाँ सैयद सालार मसऊन गाजी 128 रज्जब सन् 426 हिजरी (ई. सन् 1034) में अपनी सारी सेना सहित शहीद हो गये।

इतिहास के परिदृश्यों के साथ कल्पना की तुक मिलाकर न जाने कितने ही ऐतिहासिक चरित्रों का अवतार हिन्दी काव्य साहित्य में समय-समय पर हुआ है परन्तु यह अपवाद ही है कि स्वर्गीय श्री पं. गुरुसहाय दीक्षित द्विजदीन ने अपनी रचना सुहेलबावनी में न केवल जैन राजा सुहेलदेव की प्रामाणिकता के साथ विरदावली अंकित की है अपितु प्रस्तुत रचना को कल्पना के स्वांग से अधिकांश स्थलों पर बचाया भी है।

जब भी कोई ऐतिहासिक महत्व की कृति सामने आती है, तब उस कृति को लेकर प्रथमतः विश्वसनीयता का प्रश्न खड़ा होता है। दूसरे स्तर के प्रश्न भाषा, शिल्प और सम्प्रेषणीयता को लेकर उठते हैं। एक कृति की समालोचना केवल कथ्य की प्रस्तुति भर से नहीं हो जाती अपितु कथ्य में घटनाओं को यदि उपस्थित नहीं किया जाता है तो ऐसी दशा में बना संवारा गया कथानक भ्रम को पैदा करने वाला प्रतीत होने लगता है। कवि श्री द्विजदीन ने अपनी श्री सुहेलबावनी को रचने में न तो अपने शिक्षक होने का पण्डित आगे आने दिया, न सुहेलदेव की वीरता का बखान करने में भावुक हृदय की महिमा बघारी। काव्य सर्जन हेतु नियोजित मूल्यों का अवलम्ब लेकर कवि द्विजदीन ने श्री सुहेलबावनी के कथानक को निरूपित किया है।

प्रायः ग्यारहवीं सदी से लेकर चौदहवीं सदी तक की गणना में आने वाले वीर पुरुषों के चारित्रिक बखानों की भाषा हिन्दी की उत्पत्ति काल की भाषा रही है। अगर हम हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार **आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी** से सहमत होते हैं तो इस अवधि को 'बीजवपन काल' का नाम दे सकते हैं। अतः इस समयावधि के अन्तर्गत जो भी ऐतिहासिक चरित्र रचनाकारों की सर्जनात्मक शक्ति के रूप में आते हैं उन चरित्रों के निर्वहन की भाषा का स्वरूप प्रायः एक जैसा होता है, फिर भी, कवि द्विजदीन ने वैसे तो श्री सुहेलबावनी की भाषा का संयोग हिन्दी के वीर कवि भूषण की भाषा के साथ बहुतायत में कराया है फिर भी उसमें अधिकांश आधुनिक हिन्दी में प्रचलित खड़ी बोली के शब्दों को उतारकर श्री सुहेलबावनी को सहज पठनीय बना दिया है।

कवि श्री द्विजदीन ने लोक परम्परा में सब कुछ डूब जाने के अर्थ में 'हरि ओम्' के प्रचलित मुहावरों को 'श्लेष अलंकार' की छटा पिरोते हुए भाषा में जिस अद्भुत शिल्प को गढ़ लिया है वह स्तुत्य है -

कवि द्विजदीन देश डूबा था विलासिता में,
भूल चुका नाम राम कृष्ण हरि ओम् था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ हारे ओम् अकेले राम कृष्ण के नाम के डूब जाने के अर्थ का भी मान देता है और साथ ही साथ राम, कृष्ण, हरि, ओम् चारों को सम्मिलित रूप में डूब जाने की स्थिति को भी प्रकट करता है।

श्री सुहेलबावनी का प्रथम संस्करण 1950 में प्रकाशित हुआ था। अत: कवि श्री द्विजदीन ने अपनी कृति सुहेलबावनी में काव्य हेतु उस समय के निर्धारित प्रतिमानों का आसरा लिया है लेकिन यह मणिकाँचन संयोग ही कहलायेगा कि श्री सुहेलबावनी के रचने में कवि ने देश - काल की दृष्टि से भाषा के रूप को अपनाया है।

अब सवाल यह है कि इतने लम्बे अन्तराल के पश्चात् यानी कि सन् 1950 के बाद 50 वर्ष के बीतने पर सन् 2001 में श्री सुहेलबावनी का दूसरा संस्करण आया है। इतने वर्षों के पश्चात् आखिरकार श्री सुहेलबावनी को दूसरे संस्करण के रूप में पुनर्जीवित करने की क्यों सोची गई? यही एक वह प्रश्न है जो श्री सुहेलबावनी को प्रासंगिकता से जोड़ने का अभिप्राय देता है।

वर्तमान में राष्ट्र के सम्मुख असुरक्षा का भाव फिर पैदा हो गया है। ऐसे समय में श्री सुहेलबावनी देश के कर्णधारों को जगाये रखने में प्रेरणास्रोत बनकर अपने दूसरे संस्करण के रूप में सामने आई है।

श्री सुहेलबावनी मात्र बावन छन्दों का स्फुट - काव्य भर नहीं है बल्कि इतिहास का एक सच्चा अन्वेषण कार्य है।

श्री सुहेलदेव की रचना के सन्दर्भ में यह बात निर्विवाद रूप से मान्य करनी होगी कि श्री द्विजदीन का कवि जिस समय जिस प्रकार की भावनाओं से आन्दोलित हो उठा था, जिस प्रकार के भावावेश ने उसके हृदय को झंकृत किया था, उसका यथा तथ्य अंकन और झनझनाहट सुनाने का कवि ने प्रयास किया और वह उसमें सफल भी हुआ है।

सन्दर्भ

1. श्री सुहेलबावनी, स्व. श्री गुरुसहाय दीक्षित 'द्विजदीन', लखनऊ, 2001.
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
3. इरविन एस.सी., दि गार्डेन ऑफ इण्डिया (लखनऊ), वोल्यूम - 1, पृष्ठ 59, 62 - 63.
4. नेविल एच. आर. गोण्डा, गजेटियर, सन् 1905, 9 बही इलाहाबाद, सन् 1921, पृष्ठ 133, 138 एवं 178.
5. पाण्डेय के एन. गोण्डा, गजेटियर, पृष्ठ 23 - 24, लखनऊ, 1989.
6. नेविल बहराइच गजेटियर, पृष्ठ 17, लखनऊ, 1988.
7. कनिंघम ए. आर्कि., सर्वे रिपोर्ट ऑफ इण्डिया, भाग - 2, पृष्ठ 306 - 313, 1872 व स्मिथ जनरल ऑफ एशियाटिक सोसायटी, पृष्ठ1, 1900.

नोट : सन्दर्भ क्रमांक 3 से 7 तक - डॉ. शैलेन्द्रकुमार रस्तोगी, पूर्व निदेशक - रामकथा संग्रहालय, अयोध्या द्वारा श्री सुहेलबावनी के प्रारम्भिक पृष्ठों में 'श्री सुहेलदेव कौन' शीर्षक की सत्यापना में जिन सन्दर्भ ग्रन्थों का आधार ग्रहण किया है उन आधारों से संश्लिष्ट होकर प्रस्तुत आलेख के प्रणयन में उनका साभार उपयोग किया गया है।

प्राप्त - 27.09.02

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 3, 2003, 65 - 70

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन पांडुलिपियों में विज्ञान

■ अनुपम जैन * एवं रजनी जैन **

सारांश

जैन ग्रन्थ भंडारों की समृद्धता के कारणों की चर्चा के उपरान्त इनमें संग्रहीत विज्ञान विषयक पांडुलिपियों एवं उनकी विषय वस्तु की संक्षिप्त चर्चा की गई है। जैन भंडारों में गणित, ज्योतिष, ज्योतिर्विज्ञान, आयुर्वेद, भौतिक विज्ञान, रसायन आदि विषयक पांडुलिपियां उपलब्ध है। **– सम्पादक**

देव पूजा गुरूपास्ति: स्वाध्याय: संयमस्तप:
दानं चेति गृहस्थानां, षट्कर्माणि दिने दिने॥ [1]

जैन धर्म के अनुयायी जिन्हें श्रावक की संज्ञा दी जाती है, के दैनिक षट्कर्मों में आराध्य देव तीर्थंकरों की पूजा, निर्ग्रंथ दिगम्बर गुरूओं की उपासना, स्वाध्याय, तपश्चरण एवं दान, सम्मिलित हैं। इन षट्कर्मों में स्वाध्याय सम्मिलित होने के कारण श्रावकों की प्राथमिक आवश्यकताओं में परम्पराचार्यों द्वारा प्रणीत शास्त्र सम्मिलित हैं। स्वाध्याय का अर्थ परम्पराचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रंथों का नियमित अध्ययन है, फलत: जैन उपासना स्थलों (जिन मंदिरों) के साथ स्वाध्याय के लिए आवश्यक शास्त्रों का संकलन एक अनिवार्य आवश्यकता बन गई। प्राचीन काल में मुद्रण की सुविधा उपलब्ध न होने के कारण श्रावक प्रतिलिपिकार विद्वानों की मदद से शास्त्रों की प्रतिलिपियाँ कराकर मंदिरों में विराजमान कराते थे। जैन ग्रंथों में उपलब्ध कथानकों में ऐसे अनेक प्रसंग उपलब्ध हैं जिनमें व्रतादिक अनुष्ठानों की समाप्ति पर मंदिरजी में शास्त्र विराजमान कराने अथवा शास्त्र भेंट में देने का उल्लेख मिलता है। विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न पंडितों को उनके अध्ययन में सहयोग देने हेतु श्रेष्ठियों द्वारा सुदूरवर्ती स्थानों से शास्त्रों की प्रतिलिपियाँ मंगवाकर देने अथवा किसी शास्त्र विशेष की अनेक प्रतिलिपियाँ कराकर तीर्थयात्राओं के मध्य विभिन्न स्थानों पर भेंट स्वरूप देने के भी अनेक उल्लेख विद्यमान हैं।

जैन परम्परा में प्रचलित इस पद्धति के कारण अनेक मंदिरों के साथ अत्यंत समृद्ध शास्त्र भंडार भी विकसित हुए। ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी जिसे **श्रुत पंचमी** की संज्ञा प्रदान की जाती है, के दिन इन शास्त्रों की पूजन, साज - संभाल की परम्परा है।[2] अत: शास्त्र के पन्नों को क्रमबद्ध करना, नये वेष्ठन लगाना, उन्हें धूप दिखाना आदि सदृश परम्पराएं शास्त्र भंडारों के संरक्षण में सहायक रहीं। यही कारण है मध्यकाल के धार्मिक विद्वेष के झंझावातों एवं जैन ग्रंथों को समूल रूप से नष्ट किए जाने के कई लोमहर्षक प्रयासों के बावजूद आज कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, बंगाल, बिहार आदि के अनेक मठों, मंदिरों में दुर्लभ पाण्डुलिपियों को समाहित करने वाले सहस्राधिक शास्त्र भंडार उपलब्ध हैं।[3] जैन आचार्यों एवं प्रबुद्ध श्रावकों की साधना का प्रमुख लक्ष्य आत्मसाधना रहा है। यद्यपि जैन परम्परा स्वयं के तपश्चरण के माध्यम से कर्मों की निर्जरा कर आत्मा से परमात्मा बनने में विश्वास करती है, तथापि आत्मसाधना से बचे हुए समय में जन कल्याण की पुनीत भावना अथवा श्रावकों के प्रति

* मानद सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001
** शोध छात्रा - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वात्सल्य भाव से अनुप्राणित होकर जैनाचार्यों ने लोक-हित के अनेक विषयों पर विपुल ग्रंथ राशि का सृजन भी किया है। सम्पूर्ण जैन साहित्य के विषयानुसार विभाजन, जिसे अनुयोग की संज्ञा दी जाती है, के क्रम में निम्नवत चार वर्ग प्राप्त होते हैं।

रत्नकरण्डश्रावकाचार में लिखा है :-

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।[4]

तदनुसार चार अनुयोग निम्नवत् हैं -

1. **प्रथमानुयोग** - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरूषार्थों तथा इनके साधन करने वालों की कथाएँ महापुरूषों के जीवन चरित्र, त्रेषठ शलाका पुरूषों एवं उनके पूर्व भवों का जीवनवृत्त, पुण्यकथाएँ आदि इसमें सम्मिलित हैं। जैसे - आदिपुराण, हरिवंश पुराण आदि।
2. **करणानुयोग** - इसमें लोक के स्वरूप भूगोल-खगोल, गणित, कर्म सिद्धांत, आदि की चर्चा हैं। जैसे - तिलोयपण्णत्ती, जम्बुद्दीवपण्णत्ती संगहो, गोम्मटसार जीवकाण्ड - कर्मकाण्ड, लब्धिसार, त्रिलोकसार, आदि।
3. **चरणानुयोग** - जिसमें गृहस्थों एवं साधुओं के चारिंत्र की उत्पत्ति, वृद्धि एवं संरक्षण के नियमों का वर्णन समाहित हैं। जैसे - मूलाचार, रत्नकरण्डश्रावकाचार, अनगार धर्मामृत, सागार धर्मामृत आदि।
4. **द्रव्यानुयोग** - इसमें जीव-अजीव आदि सात तत्वों, नव पदार्थों, षट् द्रव्यों, अध्यात्म विषयक चर्चा हैं। जैसे - पंचास्तिकाय, समयसार, प्रवचनसार, द्रव्यसंग्रह आदि।

इस विभाजन से स्पष्ट है कि करणानुयोग का साहित्य, गणितीय सिद्धांतों से परिपूर्ण है। लोक के स्वरूप के विवेचन, आकार, प्रकार, ग्रहों की स्थिति इत्यादि के निर्देशन में अनेक जटिल ज्यामिति संरचनाओं, मापन की पद्धतियों का विवेचन तो मिलता ही हैं। कर्म की प्रकृतियों के विवेचन में क्रमचय-संचय (Combination and Permutation) राशि सिद्धांत (Set Theory) निकाय सिद्धांत (System Theory) घातांक के सिद्धांत (Theory of Indices) लघुगुणकीय सिद्धांत (Principle of Logarithms) आदि का व्यापक प्रयोग हुआ है। अध्यात्म विषयक विवेचनों में भी अपने तर्कों की सुसंगता सिद्ध करने हेतु गणितीय प्रक्रियाओं का प्रयोग किया गया है। गणितीय सिद्धांतों का पल्लवन अथवा स्थापना जैनाचार्यों का साध्य नहीं रहा, किन्तु वे साधन रूप में जरूर प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु गणित उसमें ऐसी रचपच गई कि 18 वीं शताब्दी के बहुश्रुत विद्वान पं. टोडरमलजी को गोम्मटसार की पूर्व पीठिका में लिखना पड़ा कि **बहुरि जे जीव संस्कृतादिक ज्ञानते सहित हैं किन्तु गणितादिक के ज्ञान के अभाव ते मूल ग्रंथन विषय प्रवेश न पावे हैं, तिन भव्य जीवन काजै इन ग्रंथन की रचना करी है।**[5] साथ ही पं. टोडरमल जी ने अपनी **'सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका टीका'** में अर्थ संदृष्टि अधिकार अलग से सम्मिलित किया है। मात्र इतना ही नहीं जैन ग्रंथों के गहन गंभीर अध्ययन हेतु गणितीय ज्ञान की अपरिहार्यता के कारण ही अनेक महान जैनाचार्यों ने स्वतंत्र गणितीय ग्रंथों का भी सृजन किया है।[6] **''परियम्यसुत्तं' (परिकर्म-सूत्र)**[7] **सिद्धभूपद्धति टीका,**[8] वृहद् धारा परिकर्म[9] के उल्लेख क्रमशः **धवला, उत्तरपुराण** एवं **त्रिलोकसार** में पाये जाते हैं। ये अपने समय के अत्यंत महत्वपूर्ण गणितीय ग्रंथ थे जो आज उपलब्ध नहीं हैं। किन्तु आचार्य श्रीधर प्रणीत **'त्रिशतिका'**, आचार्य महावीर प्रणीत **'गणितसार'**, सिंहतिलक सूरि कृत **'गणित तिलक'** टीका, ठक्करफेरू कृत **'गणितसार कौमुदी'**, राजादित्य कृत **गणित विलास,** महिमोदय कृत **'गणित साठसौ'** एवं हेमराज कृत **'गणितसार'** हमें आज भी उपलब्ध **हैं,**[10]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो जैनाचार्यों की गणितीय पारंगतता एवं अभिरूचि के ज्वलंत प्रमाण हैं। हेमराज कृत **'गणितसार'**, महिमोदय कृत **'गणित साठसौ'** तो हिन्दी भाषा में गणित विषय की अमूल्य कृतियां हैं। हिन्दी पद्य ग्रंथों में गणितीय विषय खूब पल्लवित हुए है।[11] बीसवीं सदी के महान दिगम्बर जैनाचार्य आचार्य श्री विद्यासागर जी ने अपनी कालजयी कृति **'मूकमाटी'** में गणित के नौमांक के वैशिष्ट्य का उल्लेख किया है।[12] यह प्रकरण गणितज्ञों को भले ही महत्वपूर्ण न लगे किन्तु जैनाचार्यों की गणितीय अभिरूचि को तो दिखाता ही है। गणिनी ज्ञानमती माताजी ने अपनी कृतियों त्रिलोक भास्कर, जम्बूद्वीप, जैन ज्योतिर्लोक, जैन भूगोल में गणितीय विषयों को प्रमुखता से विवेचित किया है।[13] एक प्राथमिक सर्वेक्षण में हमने पाया कि आज भी जैन शास्त्र भंडारों में 500 से अधिक गणितीय पांडुलिपियां सुरक्षित हैं, और इनके माध्यम से हम लगभग 40 स्वतंत्र कृतियों को सूचीबद्ध कर सके हैं।

''शरीर माध्यम खलु धर्म साधनं''[14] वस्तुत: स्वस्थ शरीर के माध्यम से ही हम आत्मकल्याण हेतु तपश्चरण तथा वस्तु स्वरूप के ज्ञान हेतु आगम साहित्य का अध्ययन कर सकते हैं। फलत: संघस्थ साधुवृंदों एवं श्रावकों की अस्वस्थता की स्थिति में रोगोपचार हेतु औषधियों का प्रयोग किया जाता रहा है। द्वादशांग के अंतर्गत पूर्व साहित्य के एक भेद **'कल्याणानुवाद**[15] में आयुर्वेद की चर्चा है। 5 वीं शताब्दी के महान जैनाचार्य उग्रादित्याचार्य द्वारा प्रणीत **'कल्याणकारक'**[16] जैन आयुर्वेद का सिरमौर ग्रंथ हैं। आचार्य समंतभद्र एवं अन्य अनेक आचार्यों ने आयुर्वेदिक साहित्य सृजित किया है। हमें यह स्वीकार करने में किंचित भी संकोच नहीं हैं कि जैनाचार्य द्वारा प्रणीत आयुर्वेदिक ग्रंथों एवं परम्परा के आचार्यों द्वारा सृजित आयुर्वेदिक ग्रंथों में अनेक साम्य हैं। परस्पर आदान-प्रदान भी हुए हैं, क्योंकि लक्ष्य तो दोनों का एक ही था। किन्तु **'अहिंसा परमोधर्म:'** की उद्घोषणा करने वाले जैन धर्म के आचार्यों को प्राण रक्षा हेतु भी हिंसा स्वीकार नहीं थी। प्राणों का उत्सर्ग भले हो जाये किन्तु वे ऐसी किसी भी औषधि को स्वीकार नहीं कर सकते थे जिसमें किंचित भी हिंसा हुई हो। यही कारण है कि जैन आयुर्वेद के ग्रंथों में दिये गये निदान काष्ठ औषधि, भस्मादि पर ही आधारित होते हैं। वर्तमान में अनुपलब्ध पुष्पायुर्वेद में विभिन्न जाति के पुष्पों से निर्मित औषधियों का संदर्भ हमें प्राप्त होता है।[17]

मैंने पाया है कि जैन भंडारों में रस रत्नाकर, रस संग्रह, नाड़ी विचार आदि जैसे शताधिक ग्रंथ उपलब्ध हैं। इनमें से अधिकांश हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि में लिखे गये हैं।[18]

अत्यंत प्राचीन काल से ही भारत में ज्योतिष विद्या को अत्यंत महत्व दिया जाता रहा है। प्रारम्भ में तो गणित-ज्योतिष का ही एक अंग था। जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा, दीक्षादि मंगल कार्यों के लिए शुभ मुहूर्त और स्थान का ज्ञान आवश्यक होता है और इनके ज्ञान हेतु ज्योतिष का ज्ञान अपरिहार्य है, फलत: ज्योतिष जैन साधुओं की ज्ञान साधना का अभिन्न अंग रहा है और इस आवश्यकता की प्रति पूर्ति हेतु ज्योतिष विषयक ग्रंथों का सृजन भी किया गया। अनुषांगिक रूप से शकुन विचार, रत्नपरीक्षा आदि पर भी ग्रंथ लिखे गये, **'भद्रबाहुसंहिता'**, **'केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि'** सदृश एवं अन्य ज्योतिष ग्रंथ हमारी अमूल्य निधियां हैं। आचार्य वसुनंदि, आचार्य जिनसेन, आचार्य अकलंक, पंडित आशाधर जी कृत प्रतिष्ठापाठ आदि सभी प्रतिष्ठा पाठों में मुहूर्त विषयक प्रकरण पाये जाते हैं। जैन ग्रंथ भंडार ज्योतिष विषयक ग्रंथों से अत्यंत समृद्ध हैं।[19]

प्रतिष्ठा विषयक इन्हीं ग्रंथों में मूर्ति निर्माण हेतु पाषाण के परीक्षण आदि के बारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ं भी मूल्यवान जानकारी उपलब्ध है एवं इस संदर्भ में जैनाचार्यों द्वारा किए गए उल्लेख ौमिकी (Geology) के संदर्भ में जैनाचार्यों के ज्ञान को व्यक्त करती है। अद्यतन मुझे भूगर्भ ास्त्र या भौमिकी पर कोई स्वतंत्र ग्रंथ देखने को नहीं मिला तथापि रत्नशास्त्र विषयक कई ग्रंथ देखने को मिले हैं।[20]

आचार्य कुंदकुंद कृत 'पंचास्तिकाय' आदि ग्रंथों में षट् द्रव्यों की चर्चा के संदर्भ ं काल की सूक्ष्मतम इकाई समय, क्षेत्र की सूक्ष्मतम इकाई प्रदेश एवं पुद्गल के सूक्ष्मतम ंश परमाणु को परिभाषित किया गया हैं। जघन्य और उत्कृष्ट के माध्यम से इन इकाईयों क सीमांत मानों एवं परमाणु की गतियों की भी चर्चा है। वस्तुत: पुद्गल विषयक यह वेवेचन सापेक्षता के सिद्धांत तथा प्रयुक्त गणित एवं भौतिकी के अनेक सिद्धांतों का आधार ने हैं।[21]

आचार्य समंतभद्र कृत **'आप्तमीमांसा'** में जहां प्रायिकता के सिद्धांत अवक्तव्य के ंदर्भ में विवेचित हैं वहीं जैन परम्परा का परमाणु द्रव्य का अविनाशी अविभाज्य अंग है। ह वर्तमान भौमिकी के परमाणु से बहुत अधिक सूक्ष्म है। भौतिकी में वर्तमान में प्रचलित रमाणु तो जैन परम्परा के स्कंध हैं। विज्ञान भी वर्तमान परमाणु के अनेक खण्ड कर ुका है।

आचार्य उमास्वामी ने दूसरी शताब्दी में **'उत्पादव्ययध्रौव्य'** के रूप में द्रव्य की अविनाशिता का सिद्धांत स्थापित किया था वहीं अन्य अनेक आचार्यों की कृति में जड़त्व का नियम, स्थितिज उर्जा का नियम, उत्प्लावन का नियम एवं गति के नियम उपलब्ध होते हैं। संक्षिप्त: जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत साहित्य जो कि जैन शास्त्र भंडारों में संरक्षित है, में ज्ञान की अनेक ाखाओं का ज्ञान निहित है।

विगत 3-4 दशकों में जैन शास्त्र भंडारों के सूचीकरण तथा उसमें निहित ज्ञान ंपदा को प्रगट करने के कुछ प्रयास अवश्य हुए हैं, किन्तु उनमें से अधिकांश मात्र सूचीकरण तक ही सीमित रह गए हैं। स्वयं हमने लगभग 80 ऐसे सूची पत्रों की सूची तैयार की है। हम यहां कुछ जैन भंडारों की सूचियों को लिपिबद्ध कर रहे हैं -

1. **जिनरत्नकोश** - भाग - 1, भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीटयूट, पूना 1994
2. **कन्नड प्रांतीय ताड़पत्रीय ग्रंथ सूची** - भाग - 1, संकलन - पं. के. भुजबली शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली - 1947
3. **राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची** - भाग - 1 - 5 सं. डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल, प्रबंधकारिणी समिति, दिग. जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी, 1949, 1954, 1957, 1962, 1972
4. **दिल्ली जैन ग्रंथ रत्नावली** - संकलन - प्राचार्य कुंदनलाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली - 1981
5. **श्री जैन सिद्धांत भवन ग्रंथावली** - भाग 1 - 2, संपादक - डॉ. ऋषभचंद जैन 'फौजदार', जैन सिद्धांत भवन, आरा - 1987।
6. **अनेकान्त भवन ग्रंथावली,** भाग 1 - 3 अनेकान्त ज्ञान मंदिर, बीना, 2002

इसके अतिरिक्त डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल ने अपने शोध प्रबंध Jain Granth Bhandaras in Rajasthan में राजस्थानों के जैन ग्रंथ भंडारों में निहित ज्ञान राशि एवं उसके वैशिष्ट्य का विवेचन किया हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि जैन शास्त्र भंडारों में संग्रहीत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेन्दी वैज्ञानिक साहित्य का व्यापक रूप से सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन किया जाये। यह मानवता के लिये तो कल्याणकारी होगा ही जैनत्व की गरिमा में भी अभिवृद्धि करेगा। इसके लिए प्रथम चरण में पांडुलिपियों का सूचीकरण एवं अगले चरण में वैज्ञानिक विषयों की पांडुलिपियों को छाँटकर उनका संरक्षण, अनुवाद करना होगा।

संदर्भ स्थल -

1. पद्मनंदि पंचविंशतिका, आ. पद्मनंदि, हिन्दी टीका - पं. गजाधरलाल न्यायतीर्थ, प्रकाशक - कुन्दकुन्द दिग. जैन स्वाध्याय मंडल, नागपुर - 1996, गा. - 403, पृ. - 157
2. राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची, भाग - 2, कस्तूरचंद कासलीवाल, श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र, महावीरजी, 1954
3. Kastoorchand Kasliwal, Jain Grantha Bhandars in Rajasthan, Vol. - 1, Shri Dig. Jain Atishaya Kshetra Shri - Mahavirji 1967.
4. श्रावक प्रतिक्रमण पाठ (संस्कृत)
5. गोम्मटसार जीवकांड, पूर्वपीठिका, पृ. - 5
6. अनुपम जैन, जैन गणितीय साहित्य, अर्हत् वचन (इन्दौर), 1 (1) सित. 88।
7. परियम्यसुत्तं (परिकर्मसूत्र) वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं।
8. सिद्धपद्धति टीका, वर्तमान में उपलब्ध नहीं है।
9. वृहद्धारा परिकर्म, वर्तमान में उपलब्ध नहीं है।
10. विस्तृत विवरण हेतु देखें, सन्दर्भ - 6.
11. अनुपम जैन, हेमराज व्यक्तित्व एवं कृतित्व, अर्हत् वचन (इन्दौर), **1** (11), 88, पृ. 53 - 64।
12. मूकमाटी, आचार्य श्री विद्यासागर जी, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1998, पृ. 166।
13. ये सभी ग्रन्थ वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला, दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर - 250 404 मेरठ से प्रकाशित है।
14. अनगार धर्मामृत, पं. आशाधर, संपा. - अनु. - पं. कैलाशचंद शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली 1977, 7 / 9, पृ. 495।
15. आयुर्वेद के विकास में जैनाचार्यों का योगदान, डॉ. शकुन्तला जैन, Ph.D. शोध प्रबन्ध, विक्रम वि.वि. उज्जैन, 1991।
16. उग्रादित्य, कल्याणकारक, सं. - पं. व्ही. पी. शास्त्री, सोलापुर, 1940।
17. सन्दर्भ - 15, पृ. 8.
18. वही।
19. नेमिचंद्र शास्त्री, जैन ज्योतिष साहित्य, भारतीय संस्कृति के विकास में जैनाचार्यों का अवदान, भाग - 2, अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद, सागर, 1983।
20. ठक्कर फेरू, रत्नपरीक्षादि सप्तग्रंथसंग्रह, जोधपुर, 1961।
20. लक्ष्मीचंद्र जैन, आ. नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती की खगोल विद्या एवं गणित संबंधी मान्यताएं आधुनिक संदर्भ में, अर्हत् वचन, 1 (1), पृ. 80, सित. 1988।

संशोधनोपरान्त प्राप्त - 1.7.03

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृति की अमूल्य निधियाँ

पांडुलिपियाँ

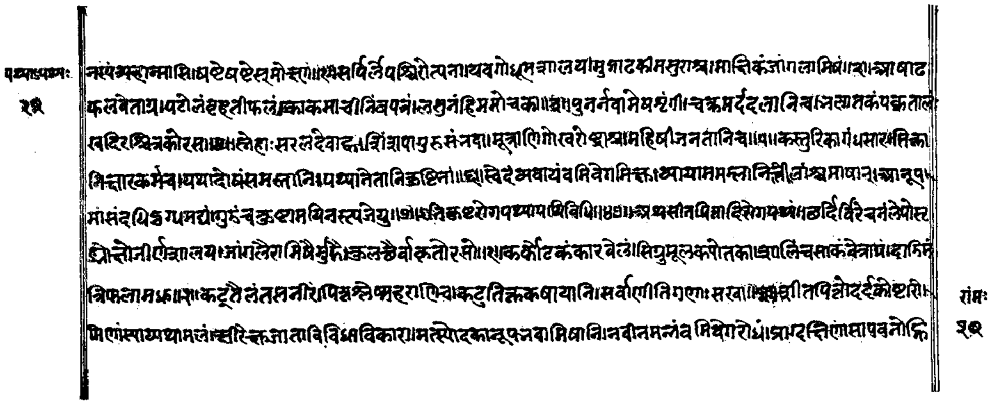

'पथ्यापथ्य विधि' का एक पृष्ठ

'पथ्यापथ्य विधि' का एक पृष्ठ

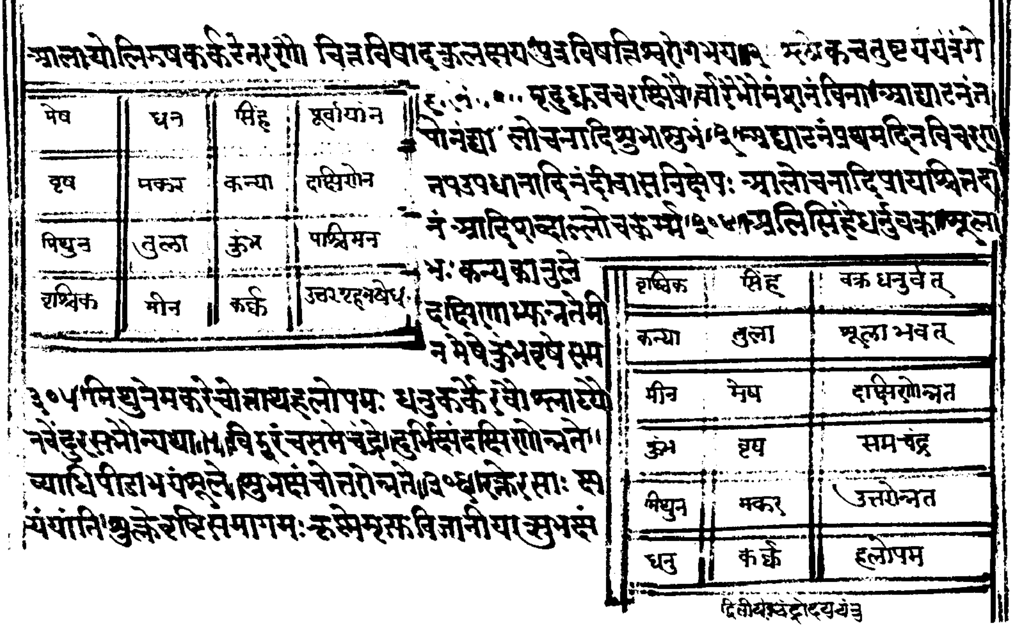

'नारद्रव ज्योतिष' ग्रन्थ का एक पृष्ठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 3, 2003, 71 - 75

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

संस्कृति संरक्षण, सामाजिक विकास एवं पांडुलिपियाँ*

■ गणेश कावड़िया **

प्रस्तावना

हमारे प्राचीन आचार्यों ने मोक्ष मार्ग के लिये छः बाह्य (अनशन, अवमोदार्य, वृत्ति परिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन, काय क्लेश तथा छः अन्तरंग (प्रायश्चित, विनय, स्वाध्याय, वैयावृत्ति, व्युत्सर्ग, ध्यान) तपों का मार्ग बताया है।[1] इनमें स्वाध्याय को भी एक अन्तरंग तप माना है। स्वाध्याय तप के अन्तर्गत वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा (चिन्तन), पाठ और धर्मोपदेश को सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार नित्य स्वाध्याय तप की आराधना को मोक्ष का मार्ग बताया है। जीवन के अन्तरंग निखार के लिये इसे अति आवश्यक तप कहा गया है। यदि स्वाध्याय आवश्यक है तो उसके लिये शास्त्रों की रचना भी आवश्यक थी। इसीलिये हमारे आचार्यों ने मानव के आध्यात्मिक विकास के लिये शास्त्रों का लेखन किया। इन शास्त्रों के मूलरूप को पांडुलिपि कहा जाता है तथा इसकी विभिन्न प्रतियों को प्रतिलिपि कहा जाता है। इन्हीं पांडुलिपियों में हमारी संस्कृति की व्यापक झलक देखने को मिलती है। अतः इनके संरक्षण की आवश्यकता है। इस प्रकार स्वाध्याय के लिये शास्त्र तैयार किये और ये मानव जीवन में कल्याण का कार्य कर सकें इसके लिये स्वाध्याय तप को आवश्यक बताया। हम कितनी महान संस्कृति के लोग है जिसमें स्वाध्याय करने को भी तप की आराधना कहा गया है।

स्वाध्याय कर्म

मोक्ष मार्ग के लिये न केवल तप की आवश्यकता है बल्कि गृहस्थ जीवन के लिये 6 दैनिक कर्म (देव पूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, इन्द्रिय संयम, तप, दान) भी आवश्यक बताये हैं।[2] इन 6 कर्मों में भी तीसरा कर्म स्वाध्याय का है। अतः आवश्यक कर्मों के उपादान के लिये भी शास्त्रों की आवश्यकता हुई और इसीलिये शास्त्र, साहित्य आदि की रचना की गई। शास्त्रों की उपयोगिता तथा निरन्तर आपूर्ति बनी रहे इसके लिये गृहस्थ के लिये जिन चार प्रकार के दानों की चर्चा की गई है उसमें शास्त्रों के दान का भी उल्लेख मिलता है। इस प्रकार हमारे श्रेष्ठ आचार्यों ने शास्त्रों तथा स्वाध्याय को तप, कर्म तथा दान से जोड़कर इसे न केवल महत्वपूर्ण बना दिया बल्कि उसे सतत् जारी रहने वाली क्रिया बना दिया।

हमारी संस्कृति में इन पांडुलिपियों का बहुत ही महत्व है। हमारे आचार्यों ने, श्रेष्ठियों ने, श्रावकों तथा सन्तों ने इन पांडुलिपियों से हमारे ज्ञान के भंडार में वृद्धि की है। इनमें कई मंत्रों के रूप में, कई चित्र कथाओं के रूप में, स्तोत्रों के रूप में तथा कुछ सूत्रों के रूप में भी उपलब्ध है। इनकी आराधना से जीवन को निखारा जा सकता है। कई कथा चित्रों को बाद में लिपिबद्ध किया गया होगा। इससे इनकी व्याख्याओं में विभिन्नता आना स्वाभाविक है। अतः इस प्रकार के कार्यों में उच्च कोटि का सम्पादन भी आवश्यक है।

---

* कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ व्याख्यानमाला के अन्तर्गत दिनांक 5.6.03 को प्रदत्त व्याख्यान

** अधिष्ठाता - समाज विज्ञान संकाय, प्राध्यापक - अर्थशास्त्र, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर। निवास : ए - 3, प्राध्यापक निवास, खंडवा रोड, इन्दौर - 452 017

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म और सम्प्रदाय

इन प्राचीन पांडुलिपियों में हमारी संस्कृति तथा धर्म की जो जानकारी मिलती है उसके अनुसार धर्म कभी भी नकारात्मक नहीं बल्कि सकारात्मक ही हो सकता है। यह जाति, समाज अथवा राष्ट्र मूलक भी नहीं हो सकता है। कोई भी धर्म किसी जाति विशेष अथवा राष्ट्र के उत्थान के लिये नहीं बना है। वह तो सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण ही क्यों, समस्त जीव तथा पर्यावरण के विकास के लिये बना है। अत: किसी जाति, समाज तथा राष्ट्र विशेष के विकास को धर्म से जोड़ना गलत है। धर्म का लक्ष्य मानव कल्याण है और उसके अधीन अलग-अलग सम्प्रदाय हो सकते हैं। सभी सम्प्रदायों का लक्ष्य एक ही है अत: ये सभी धर्म समत् हैं तथा एक ही धर्म के अधीन हैं। इन सम्प्रदायों में विभिन्नता स्वाभाविक है क्योंकि ये जाति विशेष अथवा समाज विशेष की आवश्यकता और परिस्थितियों के अनुकूल बनाये गये हैं। लेकिन फिर भी इनमें विभिन्नता के बावजूद भी ये विरोधाभासी नहीं हैं क्योंकि सभी एक ही धर्म के अन्तर्गत हैं। अत: अलग-अलग सम्प्रदाय होना मेरे विचार से अस्वाभाविक नहीं है क्योंकि सभी एक ही धर्म के अन्तर्गत कार्य करते हैं। अत: इनके प्रति सभी का सम्मान, स्नेह तथा प्रेम होना चाहिये। वास्तव में सम्प्रदाय एक प्रकार से मार्ग है। एक ही मंजिल पर पहुँचने के लिये जिस प्रकार अलग-अलग मार्ग हो सकते हैं ठीक उसी प्रकार से मोक्ष मार्ग की प्राप्ति के लिये अलग-अलग सम्प्रदाय बन सकते हैं। हो सकता है मेरा मार्ग आपके घर के सामने से गुजरे। केवल मार्ग की स्थिति के कारण ही यह अच्छा अथवा बुरा नहीं हो सकता है। तकलीफ जब होने लगती है जब मुझे मेरे घर के पास से गुजरने वाले मुझे अच्छे नहीं लगे। हमारी इसी प्रवृत्ति के कारण विरोधाभास की स्थिति उत्पन्न होने लगती है। हमें अपने सम्प्रदाय को श्रेष्ठ बताने की बजाय दूसरे सम्प्रदाय के प्रति प्रेम, स्नेह तथा सम्मान भाव प्रकट करना चाहिये। यही हमारी संस्कृति है इसीलिये यह देश कई संस्कृतियों का संगम स्थल बना हुआ है। आज इन विराट संस्कृतियों के संरक्षण की आवश्यकता है। इन्हीं संस्कृतियों में मानव के भौतिक जीवन तथा आध्यात्मिक दशा के विकास के मार्ग तथा तरीके विद्यमान है। आज इनको समझने, खोजने तथा अंगीकार करने की आवश्यकता है।

सामाजिक समस्यायें और संस्कृति

कुछ लोग हमारी सांस्कृतिक विरासत पर संदेह करने लगे है। भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा धन कमाने के अनैतिक तरीकों की व्यापकता को कमजोर संस्कृति का कारण मानने लगते हैं। उनका मानना है कि गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, नारी शोषण आदि से भरमार इस राष्ट्र की संस्कृति कैसे महान हो सकती है? संस्कृति से इस प्रकार के निष्कर्ष निकालना सरासर गलत तथा भ्रामक है। संस्कृति स्थान, जाति तथा राष्ट्र शून्य होती है। किसी राष्ट्र अथवा जाति की उन्नति अथवा अवनति को सांस्कृतिक परिवेश से जोड़ना उचित नहीं है। हमारे यहाँ लोग किसी भी राष्ट्र की तुलना में कम नैतिक नहीं हैं। आज भी हमारे यहाँ कई आदर्शों और श्रेष्ठों को देखा जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है। सामाजिक बुराईयों का कारण राजनैतिक और आर्थिक नीति में देखना चाहिये।

बाज़ारवाद तथा उपभोक्ता

वास्तव में तीव्र औद्योगीकरण तथा पश्चिम के बढ़ते बाज़ारवाद ने सब को अधिक भौतिकवादी बना दिया है। आज बाज़ार उपभोक्ता वस्तुओं से भरे पड़े हैं। विक्रेता किसी भी तरह आकर्षक योजना अथवा उपहार देकर अपनी वस्तु बेचना चाहता है। और उपभोक्ता भी वस्तुओं के प्रति लालायित होकर उसे प्राप्त करना चाहता है। कई बार तो वह अपनी क्षमता से अधिक प्राप्त कर लेता है और फिर ऋण जाल में फँस जाता है। 'क्रेडिट कार्ड' के माध्यम से भी उपभोक्ता को बाजार 'उधारी के जाल' में फँसाने का भरसक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयास कर रहा है। ऐसे वातावरण में हम भी अपने उपभोग के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये आय अर्जन के नये-नये तरीके खोजने में लग गये हैं। अब कार्य के घंटों की कोई सींमा नहीं है। 10-12-15 घंटे कोई सीमा नहीं। सभी तरफ कमाने-कमाने का बोल बाला है। इस कुचक्र में कुछ लोग सफल हो जाते हैं और कुछ उच्च आय की मरीचिका में फँस जाते हैं। जो कुछ भी सफल हुऐ हैं उन्होंने अन्य की आय पर अतिक्रमण किया होगा? कैसा विकास? सब अधिक से अधिक हथियाना चाहते हैं। ऐसे में उसके पास संस्कृति के बारे में सोचने या धर्म का आचरण करने का समय ही कहाँ रह जाता है। इस बाजार मूलक विकास ने व्यक्ति को मात्र अर्थव्यवस्था का उपभोक्ता बनाकर रख दिया है। ऐसे में कैसे हम मानव के भावनात्मक तथा आध्यात्मिक विकास की कल्पना कर सकते हैं। आज न हम प्राकृतिक सम्पदा के उचित विदोहन की सोचते हैं और न ही पर्यावरण के रख-रखाव की चिन्ता करते हैं। जीव मात्र के प्रति हमारी करूणा कहाँ मर गई है? आज अधिक दूध प्राप्त करने के लिये गायों को लेक्टोजन का इन्जेक्शन लगाते हैं जिससे उसकी आयु को भी दाँव पर लगा देते हैं। अभी तो वैज्ञानिकों ने यह भी पता लगा लिया है कि कुछ कृषक अपनी आय बढ़ाने के लिये इस प्रकार के इन्जेक्शन हरी सब्जियों में भी लगाने लगे हैं। कहते हैं इससे सब्जी का आकार जल्दी बढ़ता है। ये केमिकल सब्जी के माध्यम से हमारे शरीर में जा रहा है। कभी नहीं सोचते कि उसका क्या दुष्परिणाम होगा? कैसा विकृत विकास? पर्यावरण, प्रदूषण, मिलावट आदि के कई उदाहरण हम आये दिन समाचार पत्रों में देखते हैं। लगता है बाजारवाद तथा बढ़ते हुए मुद्रास्फीति के दबाव में हम विकास का अर्थ ही भूल गये हैं।

बाजारवाद तथा आर्थिक संकट

वास्तव में बाजारवाद में आर्थिक विकास की दर को बढ़ाने की प्रतिस्पर्धा ने विश्व अर्थ व्यवस्था को कई संकटों में फँसा दिया है। कभी एशियाई देशों की अर्थ व्यवस्था को तो कभी इण्डोनेशिया तथा अर्जेंटीना की अर्थ व्यवस्था को धराशायी होते देखा है। संकट तथा संघर्ष ने भीमकाय अमेरिकन अर्थ व्यवस्था को भी नहीं छोड़ा है। पिछले लगातार तीन वर्षों से वह भी आर्थिक मन्दी से ग्रस्त है। बेरोजगारी की बढ़ती दर से वह भी चिन्तित है। अन्तर्राष्ट्रीय आंतकवाद से वह भी नहीं बच सका। सम्पन्न, शक्तिशाली तथा शोषण से बचने के लिये कई राष्ट्रों को आर्थिक संघ बनाने को मजबूर किया है। यह नया आर्थिक दर्शन किस प्रकार की राजनैतिक तथा सामाजिक अर्थ व्यवस्था को जन्म देगा इसकी कल्पना अभी करना कठिन है। संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्था भी अप्रभावी हो गई है। *आर्थिक उथल-पुथल, अनिश्चितता, भय जनित विकास को कैसे आदर्श विकास कहा जा सकता है।*

विकास का सही माप

वास्तव में आज विचारक विकास की सही परिभाषा खोजने में लगे हुये हैं। प्रति व्यक्ति आय बढ़ जाने अथवा उपभोग के लिये ज्यादा वस्तुओं को प्राप्त कर लेने की क्षमता ही विकास नहीं है। पेट्रोलियम पदार्थों की बढ़ती कीमतों ने कई खाड़ी देशों की क्रय शक्ति तो बढ़ा दी लेकिन यह उनकी मानवीय क्षमता को बढ़ाने में सक्षम नहीं हो सकी। इस प्रकार की अवस्था को विकास कैसे कहा जा सकता है? अत: अब लोग विकास को मानवीय क्षमताओं में वृद्धि के रूप में देख रहे हैं। इस रूप में विकास का अर्थ शिक्षा, स्वास्थ्य तथा क्रय शक्ति में विस्तार से हो। इसीलिये अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देशों के विकास का आकलन मानवीय पूंजी अर्थात मानवीय क्षमताओं के रूप में कर रहे हैं।[3] इस पर थोड़ा और चिन्तन करें तो पायेंगे की यह मानवीय क्षमता न केवल वर्तमान के लिये बल्कि भविष्य के सन्दर्भ में भी होना चाहिये। आगे के वर्षों में भी निरन्तर जारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहना चाहिये। इसके लिये हमें भविष्य के लिये अपनी प्राकृतिक सम्पदा तथा पर्यावरण को बचाये रखना पड़ेगा। इस प्रकार आर्थिक विकास, मानवीय क्षमता तथा प्राकृतिक सम्पदा और पर्यावरण संरक्षण के समन्वय को विचारक 'सामाजिक विकास' कहने लगे हैं। इसमें शिक्षा तथा स्वास्थ्य महत्वपूर्ण है जिससे मानवीय क्षमताओं में वृद्धि की जा सके। इसके लिये विकास को पर्यावरण सम्मत बनाने के लिये जोर दिया जाने लगा है। विकास की इसी नई अवधारणा के कारण विश्व व्यापार संगठन ने विश्व व्यापार में कई पर्यावरणीय तथा सामाजिक शर्तों को जोड़ दिया है। भारत समेत कई विकासशील देशों के लिये अब निर्यात व्यापार बढ़ाना कठिन हो रहा है। क्योंकि ये पर्यावरणीय तथा सामाजिक शर्तों को पूरा नहीं कर पा रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अब विकास का आंकलन सामाजिक विकास तथा पर्यावरण संरक्षण के रूप में किया जाने लगा है। इस प्रकार के विकास का सीधा सम्बन्ध शिक्षा तथा स्वास्थ्य से है।

विकास मे शिक्षा का महत्व

अर्थशास्त्र में नोबल पुरस्कार विजेता भारतीय अर्थशास्त्री प्रो. अमृत्य सेन ने इसी आधार पर शिक्षा और स्वास्थ्य को विकास की आवश्यक शर्त माना है।[4] शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुविधाओं के आधार पर मानवीय पूंजी का निर्माण किया जा सकता है। इस प्रकार की मानवीय पूंजी तकनीकी ज्ञान का विकास करने और उसे ग्रहण करने में अधिक सक्षम होती है। शिक्षित मानवीय सम्पदा अवसरों का उपयोग करने में भी अधिक सजग रहती है। अतः इस प्रकार की मानवीय पूंजी का निर्माण स्वतः ही सतत् तथा आदर्श विकास कर सकेगा। पिछले दशक में हमने तकनीकी तथा ज्ञान आधारित विकास का चमत्कार देखा है। किस प्रकार ज्ञान ने हमारी अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में प्रवेश कर उत्पादन की संरचना को ही बदल दिया है, हम सब उससे परिचित हैं। यह कैसे संभव हुआ? शिक्षा तथा ज्ञान से। इस प्रकार आधुनिक विश्व अर्थ व्यवस्था में शिक्षा तथा ज्ञान विकास के महत्वपूर्ण घटक बन गये हैं। हमें गर्व है कि हमारी प्राचीन संस्कृति में शिक्षा तथा ज्ञान के विकास के लिये स्वाध्याय को तप, कर्म तथा शास्त्रदान से जोड़ कर इसे जीवन के लिये परम आवश्यक बना रखा। इससे न केवल भौतिक जीवन बल्कि आध्यात्मिक जीवन में भी निखार आता है। इसीलिये शिक्षा तथा दीक्षा सभी के लिये आवश्यक है। मर्यादा पुरूषोत्तम राम तो अवतारी पुरूष थे लेकिन राजा दशरथ ने उनको भी गुरू वशिष्ट के पास ज्ञानार्जन के लिये भेजा। माता-पिता जन्म दे सकते हैं लेकिन जीवन निर्माण का कार्य गुरू अर्थात् शिक्षा से ही संभव है।

भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति की अहम बात यह है कि इसमें विविध किस्मों की महक और उनकी सामाजिक विशेषताये हैं। जन्म, परिणय, गृह निर्माण, वास्तु, विरक्ति, मृत्यु आदि का हमारी संस्कृति में बहुत महत्व है, पवित्र है। परिणय संस्कार के प्रति भी विशिष्ट श्रद्धा व पवित्रता देखी जा सकती है। मंत्र से दो अनजान दिलों को अपनत्व के धागे से जोड़ा जाता है और वे जन्म जन्मों के बंधन में बंध कर एक हो जाते हैं। कितनी पवित्रता है। राखी के बंधन की पवित्रता हमारी संस्कृति की अनुपम कृति है जो इतिहास के पन्नों में स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। कितनी महान तथा आदर्श संस्कृति है जिसमें भौतिकता तथा आध्यात्मिकता का बराबर समावेश है। हम आध्यात्मिकता से ही भौतिकता को सीमित कर पाते हैं। इसीलिये मृत्यु भी हमारे लिये एक महोत्सव है जहाँ मृत्यु आने पर कह सकते हैं कि 'ओ बन्धु मृत्य' मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। आदर्श धर्म का उद्देश्य व्यक्ति को जीवित रखने के साथ-साथ मरने के प्रति भी तैयार करता है। हमारा अध्यात्म न केवल इस जीवन को वरन आने वाले जीवन को भी निखारता है। इसीलिये इस संस्कृति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने भौतिक सुखों का परित्याग कर अध्यात्म का विकास किया है। यह भौतिक तथा अध्यात्म का समन्वय ही हमारी संस्कृति की महत्वपूर्ण उपलब्धी है और यही सच्चा विकास है।

हमारी सांस्कृतिक विरासत में कई अमूल्य सम्पदा का खजाना भरा पड़ा है। उसे खोजने, समझने तथा अनुसरण करने की आवश्यकता है। हमारी कई पाण्डुलिपियाँ विदेशों में देखी जा सकती हैं जो उनके यहां आधुनिक अनुसन्धान का आधार बनी हुई है। आज इसे खोजने और चिन्तन करने की आवश्यकता है क्योंकि अब तो विकास का केन्द्र बिन्दु श्रम नहीं, पूंजी नहीं ज्ञान होने वाला है। उत्पादन ढॉचे में बहुत जल्दी तीव्र बदलाव आने वाला है जिससे हमारी उत्पादन क्षमता कई गुना बढ़ जावेगी। महावीर वाणी में आचार्य रजनीश ने लिखा है कि अब मनुष्य को अपनी आवश्यक सुख सुविधा जुटाने के लिये मात्र 2-3 घंटे कार्य करना पड़ेगा।[5] इस प्रकार तकनीकी ज्ञान के कारण कार्य की अवधि कम हो जावेगी। ऐसे में मनुष्य के पास आराम के घंटे बढ़ जावेंगे। इनका उपयोग यदि समाज स्वाध्याय की ओर करा सका तो समाज का विकास होता जावेगा और इस ओर प्रवृत्त नहीं कर सके तो यह खाली समय अथवा दिमाग कई विकृतियाँ उत्पन्न करेगा। इसीलिये यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने लोगों को स्वाध्याय की ओर प्रवृत्त करें।

ध्यान की संस्कृति

इसी प्रकार वैज्ञानिकों ने हमारी सांस्कृतिक विरासत में 'ध्यान' पर काफी खोज की है। उनका मत है कि हम अपने मस्तिष्क की क्षमता के मात्र कुछ ही भाग का उपयोग कर पाते हैं। ध्यान के द्वारा इसकी उपयोग सीमा को बढ़ाया जा सकता है। ध्यान के माध्यम से मस्तिष्क को Super Computer बनाया जा सकता है। वास्तव में ध्यान विज्ञान भी है और कला भी। ध्यान दरअसल में आध्यात्मिक तकनीक है। इसमें मानव मन में उत्पन्न होने वाले अनन्त विचारों के प्रबन्धन की कला है। इससे मन का विचलन कम हो जाता है। ध्यान का जितना आध्यात्मिक मूल्य है उतना ही व्यावहारिक मूल्य भी है। आन्तरिक आनन्द या अपरिमित आनन्द तो ध्यान की चरम अवस्था है। ध्यान से उर्जा का संचार और केन्द्रीयकरण किया जा सकता है। वास्तव में हम भौतिक उपभोग से उर्जा का ही संचार करते हैं। इसी प्रकार हमारी संस्कृति में योग / वास्तु / आयुर्वेद आदि में जीवन जीने की कला के सम्बन्ध में काफी खजाना भरा है। उसके उपयोग से हम अपने भौतिक जीवन तथा आध्यात्मिक जीवन को निखार सकते हैं।

इसीलिये आज हमारी सांस्कृतिक विरासत जो पाण्डुलिपियों के अन्दर भरी पड़ी है उसके संरक्षण, समझने और उस पर वैज्ञानिक सोच की आवश्यकता है। इसके द्वारा ही हम सच्चे अर्थों में अपना कल्याण कर सकेंगे। मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पाण्डुलिपियों के संरक्षण के कार्य में अपनी प्रभावी भूमिका निभा रहा है। मैं इस कार्य में उनकी सफलता की कामना करता हूँ। कुंदकुंद व्याख्यान में मुझे यह अवसर देने के लिये आप सबका आभार।

सन्दर्भ स्थल :

1. तत्वार्थ सूत्र 9 / 19, 9 / 20
2. पद्मनन्दि पंचविंशतिका, आ. पद्मनन्दि, 1977
3. मानव संसाधन विकास प्रतिवेदन 2002, यू.एन.डी.पी. प्रकाशन
4. Resources Values and Development - Amartya Oxford University Press, 1999
5. महावीर वाणी, भाग - 1, आचार्य रजनीश

प्राप्त - 15.06.03

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन पांडुलिपियों की राष्ट्रीय पंजी (रजिस्टर) का निर्माण

भगवान महावीर 2600 वाँ जन्म जयन्ती महोत्सव वर्ष के कार्यक्रमों की श्रृंखला में संस्कृति मंत्रालय - भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय अभिलेखागार (National Archives), दिल्ली के माध्यम से देश के विविध अंचलों में विकीर्ण जैन पांडुलिपियों की विस्तृत सूची तैयार करने का निश्चय किया गया, जिससे इन पांडुलिपियों के संरक्षण, अनुवाद, आलोचनात्मक अध्ययन का पथ प्रशस्त हो सके।

शासन द्वारा निर्धारित विस्तृत प्रारूप में कम्प्यूटर पर जैन पांडुलिपियों की राष्ट्रीय पंजी के निर्माण का कार्य राष्ट्रीय स्तर पर चयनित 5 संस्थाओं के माध्यम से प्रारम्भ किया जा चुका है। कार्य की सुविधा की दृष्टि से सम्पूर्ण देश को 5 भागों में विभाजित किया गया है। मध्य क्षेत्र - मध्यप्रदेश एवं महाराष्ट्र अंचल में यह कार्य **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर** को प्रदान किया गया है।

इस योजना में पांडुलिपियों के स्वामित्व, अधिकार एवं संरक्षण स्थल में कोई परिवर्तन नहीं किया जायेगा, वे जहाँ, जिसके स्वामित्व में हैं, वहीं संरक्षित रहेंगी। मात्र उनके बारे में जानकारी संकलित कर राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध कराई जायेगी जिससे अध्येता इसकी जानकारी प्राप्त कर आवश्यकतानुसार अध्ययन हेतु उनका उपयोग कर सकें। दुर्लभ एवं महत्वपूर्ण पांडुलिपियों के संरक्षण हेतु भविष्य में शासन का सहयोग भी प्राप्त होने की संभावना है।

अत: जैन पांडुलिपियों के भंडारों के प्रबन्धकों एवं उन समस्त व्यक्तियों, जिनके सरक्षण में जैन पांडुलिपियाँ हैं, से अनुरोध है कि वे निम्नांकित जानकारी प्रदान कर अनुग्रहीत करें -

1. भंडार का नाम व पता
2. भंडार के प्रबन्धक का नाम एवं पता
3. भंडार में उपलब्ध पांडुलिपियों की संख्या
4. क्या केटेलाग (सूची) प्रकाशित है।? हाँ/नहीं.
5. पत्राचार हेतु पूर्ण पता (पिनकोड सहित)
6. फोन नं. कोड सहित

जानकारी प्राप्त होने पर हमारे प्रतिनिधि आपके पास आकर पूर्ण विनय एवं सावधानी के साथ सूचीकरण का कार्य सम्पन्न करायेंगे। इस प्रक्रिया में आपका भंडार भी व्यवस्थित हो जायेगा तथा पांडुलिपियों की कम्प्यूटरीकृत सूची भी आपको उपलब्ध हो जायेगी। हम मात्र सूची की एक प्रति अपने साथ लायेंगे।

कृपया सहयोग कर जिनवाणी संरक्षण के इस कार्य में हमें सहयोग प्रदान करें।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

विज्ञान एवं नेतृत्व के प्रतीक - गणेश

■ आचार्य कनकनन्दी*

भारत वर्ष विविधता भरा देश है। यहाँ क्रांति-शांति का सूत्रपात, संवर्द्धन, संरक्षण प्रदान करने वाले अनेकों महापर्व आते हैं। गणेश चतुर्थी भी इसी में से एक है। इसका प्रारम्भ कब, कैसे हुआ, इसका इतना महत्व नहीं, जितना इसकी उपयोगिता का है। प्राचीन साहित्य रचनाओं, चित्रकारों, शिल्पकारों, कलाकारों ने अन्तर्निहित सत्य को अक्षर से भी भिन्न प्रणाली से व्यक्त करने का प्रयास किया है।

जिससे कभी अर्थ विपर्यास हुआ तो कभी मूल रहस्य पर पर्दा पड़ा। लेकिन फिर भी सत्य, तथ्य पूर्ण रहस्य खोजियों के नजरों से ओझल नहीं हो सका। गणेशजी के अनेकों नाम हैं - गणपति, गणधर, गणेश, गजानन, विनायक, अग्रपूज्य, विघ्नविनाशक, एकदन्त, दाता आदि। गणेशजी की कृति की जिसने भी परिकल्पना की होगी, निश्चित ही वे गणेश पुत्र (प्रज्ञा पुत्र) होंगे। गणेशजी गणनायक हैं, गण के धारी हैं, गण के ईश हैं, विघ्न विनाश के नायक हैं, प्रमुख पुरुष हैं, विघ्न विनाशक हैं। ऐसे ही मान्यवरों से धरती गौरवान्वित होती है।

गणेशजी संघ, समाज, राष्ट्र व धर्म की प्रतिमूर्ति हैं। इस अर्थ में वे गणनायक हैं। गणेशजी के गुरुत्व पद पर आसीन होने से गुण सृजेता (ब्रह्मा) हैं, गुण विस्तारक विष्णु हैं, दुर्गुण विध्वंसक (महेश) हैं अतएव वे ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। वे लम्बोदर इस अर्थ में हैं कि अपरम्पार ज्ञान धारी होने पर भी कभी वे उससे तृप्त नहीं होते। लम्बा उदर असामान्य पात्रता का द्योतक है। सतत श्रमजीवी प्रयत्नशील रहते हैं, इस माने ज्ञान आराधक हैं। दीर्घ कर्ण उनकी शास्त्र श्रवण की जिजीविषा का संकेत है। किसी भी व्यक्ति के कान लम्बे होना उनके श्रोतृत्व गुण का लक्षण है। सामुद्रिक शास्त्र में इसे शुभ लक्षण कहा है।

गणपति के चार हाथ हैं। चार हाथ चतुर्मुखी विकास का प्रतीक है। सर्वांगीण विकास ही व्यक्ति की पराकाष्ठा है। यह बहुमुखी प्रतिभा की प्रेरणा देता है। संकीर्णता को मिटाकर पूर्णता की ओर बढ़ना सिखाता है।

प्रथम हाथ में 'वीणा' है। विश्व प्रसिद्ध बड़ी-बड़ी हस्तियाँ संगीत प्रिय, कलाप्रिय रही है। फिर चाहे महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आईन्स्टीन हों, डॉ. अब्दुल कलाम हों या प्रधानमंत्री अटलबिहारी बाजपेयी हों। संगीत बिना जीवन अधूरा है। दूसरे हाथ में 'फरसा' है। यह शस्त्र विशेष बुराइयों का सामना करने की शिक्षा देता है। भीतरी व बाहरी बुराइयों को नष्ट किये बिना किसी भी व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियाँ जाग्रत नहीं हो सकतीं। सामाजिक, राष्ट्रीय, आध्यात्मिक मान्यताओं को उखाड़ फेंकना ही युग पुरुषों का एकमात्र कार्य है। संगीत प्रेम का प्रतीक है, शांति का प्रतीक है तो शस्त्र बुराइयों के प्रति असहमति का प्रतीक है।

गणेशजी के हाथ में लड्डू है। लड्डू स्वाद वाला है, ज्ञान सुख स्वरूप है। जिस शिक्षा से आत्म आनन्द का स्वाद आता है, वही अनौपचारिक शिक्षा है। शेष विद्या का बोझ है। गणेशजी का एक हाथ आशीर्वादात्मक है। सच्चे भगवान कभी क्रूर नहीं होते, वे अभय मुद्रा से अपनी शुभ लेश्या से सम भाव से कातर जीवों को अभय प्रदान करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणेशजी का वाहन चूहा है। चूहा विश्लेषण का प्रतीक है, वस्तुओं को कुरेदता है। उसमें विश्लेषण करने की, गुप्त चीजों के उद्घाटन करने की क्षमता अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक रहती है। प्रज्ञा पुत्र, गणनायक भी ब्रह्माण्ड के सत्य की खोज करने चिर काल तक तपस्या करते गये, जब तक सत्य का साक्षात्कार नहीं हुआ तब तक अपनी एकाग्रता से (एकदन्त) उसके विश्लेषण में लगे रहे। अन्त में उपाध्याय पद पर आसीन होकर अपने निकटस्थ मुमुक्षुओं की जिज्ञासा का समाधान करते रहे। प्राचीन जैन तीर्थ स्थलों (देवगढ़) पर उपाध्याय परमेष्ठी जिस आसन पर बैठते हैं, ठीक उसी प्रकार गणेशजी का आसन है।

गणेशजी के दोनों पार्श्व भाग में उनकी उभय पत्नियाँ विराजमान रहती हैं। उनके नाम ऋद्धि और सिद्धि हैं। श्रमजीवी के पीछे संसार की समस्त विभूति लगी रहती हैं। ऋद्धि-सिद्धि स्वत: अनुगामी होती हैं। आवश्यकता है सच्चे हृदय से अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन की। गणपति, सरस्वती बैठे रहते हैं, लक्ष्मी की तरह खड़े नहीं रहते। विद्या चिर प्रतीक्षा के बाद आती है, लेकिन आने के बाद शीघ्र जाती नहीं है। लक्ष्मी जितनी जल्दी आती है, उतनी ही जल्दी जाती है। क्योंकि वह किसी के पास बैठने नहीं आती। जबकि वाग्मी सरस्वती जन्मांतरों में भी साथ रहती है।

यही कारण है कि भारत में ज्ञानियों की, विद्वत्ता की पूजा होती है, धनपतियों की पूजा नहीं होती। श्रेष्ठतम पुरुष मानव समाज के मुकुट होते हैं। तभी उन्हें समाज शिरोमणि, समाजरत्न, भारतभूषण, पद्मश्री जैसी विरूदावलियों से नवाजा जाता है। गणेश महाराज के सिर पर भी मुकुट बांधकर उनका नेतृत्व समाज स्वीकार करती है। उनकी अनुग्रह-निग्रह वृत्ति की कोई सानी नहीं है। उनके सिर पर रखा ताज किसी भूखण्ड या विजेता चतुरंगिणी सेना समूह का द्योतक नहीं अपितु अध्यात्म जगत में चतुर्विध संघ के गण नायकत्व का बोधक है। गणेशजी अपने आप में विविधताओं से मंडित हैं। उनकी असलियत तक पहुँचने के लिये दिमाग को खुला रखना होगा।

आयुर्वेद में पित्त प्रकृति वालों को बुद्धिमान, प्रामाणिक, परिश्रमी, कर्त्तव्यशील, विद्याप्रेमी बताया है। इस प्रकृति के लोगों में प्राय: कार्यक्षमता अधिक रहती है। ऐसे लोगों को और भी बुद्धिवर्द्धन करने, स्वादिष्ट मिष्ठान्न सेवन करने की आयुर्वेद विज्ञान सलाह देता है। जैन तीर्थंकर और तथागत बुद्ध का भी प्रिय भोजन मिष्ठान्न ही था। आज के विद्यार्थियों को उनके आहार सेवन से उनकी अन्त:चेतना को परखा जा सकता है।

गणेशजी सम्बन्धी जो शोधपूर्ण गुत्थियाँ हैं, वे सुलझी हुई हैं, मगर दुर्भाग्य है कि शब्दाडम्बरपूर्ण अलंकारित साहित्य के बोझ तले वे सदैव उलझती गईं। आज उनका स्वरूप जिस रूप में है, वह किसी से छिपा हुआ नहीं है।

* दिगम्बर जैन धर्म संघ में दीक्षित आचार्य
वर्ष 2003 का चातुर्मास मोंगावा, तह. धरियावद जिला प्रतापगढ़ (राज.)

प्रात : 23.09.02

[इस वर्ष यह पर्व गणेश चतुर्थी 31 अगस्त को है - सम्पादक]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

विज्ञान को भी अविज्ञात विषय

■ आचार्य कनकनन्दी*

पंचम अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी (प्रतापगढ़) में एक शोधार्थी से वैज्ञानिक राजमलजी जैन ने प्रश्न किया कि जो विषय विज्ञान में भी शोध नहीं हो पाया है लेकिन वह जैन धर्म में है, ऐसा विषय मुझे बतायें। शोधार्थी तो इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाया लेकिन वैज्ञानिक राजमल जैन की जिज्ञासा तथा शोधार्थियों/जनता/श्रोताओं की जिज्ञासा को देखकर मैंने कुछ संक्षिप्त में उसी समय उत्तर दिया था। इसके बाद वैज्ञानिक राजमलजी ने मुझसे ऐसे शोधपूर्ण वैज्ञानिक लेख व पुस्तक लिखने के लिये अनुरोध किया एवं इसरो जाकर रामसेतु की फोटो व रिपोर्ट के साथ पत्र द्वारा (जो नासा-अमेरिका से प्राप्त हुआ था) पुनः अनुरोध किया कि हे गुरुदेव! आपने संगोष्ठी में जिस विषय को कहा था उस विषय को आप लिखकर भेजें, हम उस पर रिसर्च करेंगे। इसी उद्देश्य से मैं यह शोधपूर्ण लेख लिख रहा हूँ और आगे जाकर विस्तृत रूप में इस विषय पर पुस्तक लिखने वाला हूँ, जिससे विश्व मानव विशेषतः प्रगतिशील, सत्यशोधक वैज्ञानिक एवं जिज्ञासु विद्यार्थी लाभान्वित होकर सत्य की खोज करें एवं विश्व को उपकृत करें। आधुनिक विज्ञान के साथ-साथ इतिहास, खगोल, भूगोल, राजनीति, न्याय, कानून आदि को भी जो विषय अविज्ञात हैं उसका भी दिग्दर्शन इस शोध लेख में कर रहा हूँ। विशेष जिज्ञासु मेरे द्वारा रचित एवं प्रकाशित 140 ग्रन्थों का अध्ययन करें।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अकृत्रिम/शाश्वतिक एवं परिणमनशील है, इसका निर्णयात्मक सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान को नहीं है। विज्ञान में भौतिक तत्त्वों का तो कुछ शोध-बोध हुआ है तथा किंचित रूप से जीवद्रव्य, आकाश, काल, गति माध्यम, स्थिति माध्यम का वर्णन पाया जाता है परन्तु जिस प्रकार सर्वांगीण रूप से गणितीय/वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जीव, भौतिक तत्त्व (पुद्गल), धर्म द्रव्य (गति माध्यम), अधर्म द्रव्य (स्थिति माध्यम), आकाश, काल का वर्णन है ऐसा वर्णन जैनधर्म को छोड़कर अन्य धर्म यहाँ तक कि विज्ञान में भी नहीं है। विश्व का आकार-प्रकार, घनफल और विश्व में स्थित समस्त द्रव्यों की संख्या का वर्णन भी जैनधर्म में जैसे है वैसे अन्य धर्मों में नहीं है। वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने विश्व-प्रतिविश्व की परिकल्पना तो की है परन्तु वे भी समग्र रूप से उसके क्षेत्रफल, घनफल, सीमा का निर्धारण नहीं कर पाये और यह निर्धारण अभी तक नहीं हो पाया है।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में 23 भौतिक वर्गणाएँ एवं 5 सूक्ष्म स्थावर जीव ठसाठस भरे हुए हैं, इसका वर्णन भी अन्यत्र नहीं है।

प्रायः प्रत्येक धर्म व विज्ञान परिणमन को तो मानते हैं, परन्तु विश्व के प्रत्येक द्रव्य में उसके अनंतगुणी आदि षट्गुण हानि-वृद्धि रूप में जो परिणमन होता है उसका परिज्ञान उन्हें नहीं है। इस प्रकार काल परिवर्तन रूप उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी एवं षट्कालों का वर्णन विधिवत् नहीं पाया जाता है।

विज्ञान में यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि विश्व कब से है, कब तक रहेगा, कब नष्ट होगा, जीव कब से है, उसके गुण, धर्म, स्वभाव क्या हैं? उसकी शुद्ध अवस्था क्या है? जैन धर्म में सूक्ष्म निगोदिया जीव से लेकर पंचेन्द्रिय मनुष्य, पशु-पक्षी, नारकी, स्वर्ग के देव एवं पूर्ण शुद्धता को प्राप्त शुद्ध जीव (सिद्ध परमात्मा) का वर्णन 14 गुणस्थानों,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्गणा, जीव समास के माध्यम से अत्यन्त वैज्ञानिक/गणितीय पद्धति से किया गया है।

गणित का आविष्कार भारत में हुआ परन्तु जैन धर्म में जो अलौकिक गणित में अनंत, असंख्यात, पल्य, सागर आदि का वर्णन है ऐसा विधिवत् वर्णन अन्य धर्मों में व आधुनिक विज्ञान में भी नहीं है। अलौकिक गणित में जो चिह्न/उपमान आदि का वर्णन किया गया है, वह भी अन्यत्र कहीं नहीं है।

शुद्ध परमाणु की एवं शुद्ध जीव की गति एवं मृत्यु के बाद जीव की गति की मंदता, मध्यमता, तीव्रता का जो वर्णन जैनधर्म में पाया जाता है वह अन्यत्र नहीं है। यहाँ तक की आइन्स्टीन ने जो प्रकाश की परम गति को एक सेकेण्ड में 3 लाख कि.मी. माना है, वह भी दोषपूर्ण है। अभी तक विज्ञान अविभाज्य परमाणु की खोज नहीं कर पाया है, परन्तु इसका वर्णन जैनधर्म में है। शुद्ध परमाणु में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और उसकी गति आदि का वर्णन जैसा जैनधर्म में वर्णित है वैसा विज्ञान में नहीं है।

विज्ञान में वनस्पति को तो जीव रूप में सिद्ध कर लिया है और स्वीकार कर लिया है परन्तु पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक को जीवरूप में सिद्ध नहीं कर पाया है।

प्राय: प्रत्येक धर्म तथा मनोविज्ञान अच्छे-बुरे भाव एवं कर्म के फल को तो मानते हैं परन्तु जिस प्रकार जैनधर्म में माना है कि योग (मन-वचन-काय का परिस्पंदन) उपयोग (विभिन्न भावनाएँ एवं आवेश) से अनंतानंत भौतिक कर्म परमाणु आकर्षित होकर आत्मा के प्रत्येक असंख्यात प्रदेशों में बँधते हैं, स्थिर रहते हैं एवं समय प्राप्त होने पर फल देते हैं, ऐसा गणितीय/वैज्ञानिक वर्णन नहीं है। जैनधर्म का सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त अनेकान्तवाद (सापेक्षवाद) है। इस सिद्धान्त को व्यावहारिक जीवन में तो सब कोई अपनाते हैं लेकिन किसी भी धर्म-दर्शन में इसका विधिवत् वर्णन नहीं पाया जाता है। वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने इस सिद्धान्त को माना है परन्तु आइन्स्टीन का सापेक्षवाद भी जैनधर्म के अनेकान्तवाद सिद्धान्त के बराबर व्यापक/सार्वभौम नहीं है।

वनस्पति से लेकर पशु-पक्षी-मनुष्य में जो आकार-प्रकार, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, भाव, क्रिया-प्रतिक्रिया, संवेदना, ज्ञान, अनुभूति आदि होती है उसके कार्य-कारण संबंधों का संपूर्ण ज्ञान अन्यत्र कहीं नहीं है।

जैनधर्म में जैसे गणितीय/वैज्ञानिक दृष्टि से कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यय ज्ञान, केवलज्ञान का वर्णन पाया जाता है वैसा वर्णन अन्य धर्मों में यहाँ तक कि विज्ञान में भी नहीं है।

जीव के पूर्वोत्तर अनंत भवों का वर्णन जैसा जैनधर्म में है वैसा वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। जीव के जो औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्माण आदि 5 शरीरों का विधिवत् वैज्ञानिक वर्णन है वह भी अन्यत्र नहीं है।

संसारी जीव ही जिस प्रकार क्रमविकास करता हुआ भगवान बनता है ऐसा विधिवत् क्रमविकास का वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता है। जब कोई साधक अरहन्त बनता है उस समय समवशरण की जो रचना होती है उस समय अरहन्त 718 भाषाओं में उपदेश देते हैं। उनके हजारों पशु-पक्षी शिष्य होते हैं। उनका शरीर स्फटिक के समान पारदर्शी होता है। आकाश में गमन होता है। उनके प्रभाव से षट् ऋतुओं के फल-फूल एक साथ फलते-फूलते हैं, दुर्भिक्ष, युद्ध, महामारी आदि नहीं होता है, ऐसा वर्णन अन्यत्र नहीं पाया जाता है। प्रलय का जिस प्रकार व्यवस्थित वर्णन जैनधर्म में है वैसा अन्यत्र नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म में जो साम्यवाद/समाजवाद का वर्णन भोगभूमि, सर्वार्थसिद्धि के देव और सिद्ध अवस्था के प्रकरण में पाया जाता है ऐसा वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं पाया जाता है।

जैनधर्म में जिस आत्मा - परामात्मा का व्यवस्थित/क्रमबद्ध/गणितीय वर्णन है ऐसा वर्णन अन्यत्र नहीं पाया जाता।

श्यामविवर (तमस्कंध) Black Hole का भी जैसा वर्णन जैन धर्म में है, ऐसा वर्णन विज्ञान में भी नहीं है। वैज्ञानिक अभी इसकी खोज कर रहे हैं।

इस लेख में मैने केवल संक्षिप्त रूप में वर्णन किया है परन्तु कार्य - कारण संबंध से लेकर विधि - निषेध परक पद्धति से वर्णन आगे करूँगा। जिज्ञासु आगामी लेख व पुस्तक से लाभान्वित होवें।

* दिगम्बर जैन धर्म संघ में दीक्षित आचार्य
वर्ष 2003 का चातुर्मास मोंगावा, तह. धरियावद जिला प्रतापगढ़ (राज.)

प्राप्त : 06.12.02

Megh Prakashan

239, Daribakalan, Delhi - 110 006

Ph.: 23278761 (O) 22913794 (R) □ e-mail : megh-prakashan@rediffmail.com

Books must for your Library

1.	Ancient Geography of Ayodhya	Dr. S. N. Pandey	Rs. 200.00
2.	Introduction to Mythology	L. Spence	Rs. 400.00
3.	Scientific Treatise on Namokar	Dr. R. K. Jain	Rs. 90.00
4.	Daulatram's Chhahdhala (Jain Bible)	Dr. S. C. Jain	Rs. 70.00
5.	Jaina Astronomy	Dr. S. S. Lishk	Rs. 400.00
6.	Tao of Jaina Scienes	Prof. L. C. Jain	Rs. 500.00
7.	Meru Temples & Angkour	Dr. J. D. Jain	Rs. 200.00
8.	Jaina & Hindu Logic : A Comperative Study	Dr. P. K. Jain	Rs. 400.00
9.	Jaina Way of Life	Dr. P. K. Jain	Rs. 300.00
10.	Ancient Republics of Bharat	Dr. R. C. Jain	Rs. 400.00
11.	Prominent Jaina Eugolies	Dasrath Jain	Rs. 400.00
12.	Yogindue's Yogsaar	Dasrath Jain	Rs. 200.00
13.	प्राकृत और संस्कृत का समांतर अध्ययन	डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव	Rs. 200.00
14.	सप्त संधान महाकाव्य : समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. श्रेयांस जैन	Rs. 300.00
15,	सहजानन्द वर्णी और उनकी संस्कृत रचनाएँ	कुसुम जैन	Rs. 450.00

A Perfect Guide to Ultimate Happiness, Real Wealth of Life

SAHAJ - ANAND

A bilingual Quarterly, devoted to quest, bliss and knowledge in the realms of spirituality, Religion, Culture, Literature and Universal expeirences of mankind

Annual - Rs. 110.00 Life - Rs. 2000.00

RESEARCH BOOKS

B - 5/263, Yamuna Vihar, Delhi - 110 053

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषाणां विशेषोऽयम्

कुन्दकुन्दस्य ज्ञानाब्धेः वाङ्मयामृतसिञ्चितम्।
विशेषाणां विशेषोऽयम् अर्हत्वचनसंज्ञकः॥

प्राप्ते पञ्चदशे वर्षे विशेषांको प्रकाशितः।
अनुपमा कृतिः सम्यक् श्री अनुपमं मनीषिणा॥

नामानुरूपविद्यायां बुद्धिकौशलसमन्वितः।
अनुपमजैनोऽनुपमकीर्त्तिः विद्यते भारतेभुवि॥

पूर्वप्रकटसामग्र्याः सूचीनां बहुसंग्रहः।
अस्मिन् कृतौ समाविष्टः तेन बुद्धिप्रकर्षतः॥

लेखटिप्पणसारांशैः समीक्षापद्यप्राञ्जलैः।
परिचयाख्यादिभिः सार्थं शोभिता त्रैमासिकी॥

संग्रहणीयग्रन्थेऽस्मिन् जैनविद्याप्रकाशिता।
गणितविज्ञानसंगीत पुरातत्त्वादिसंयुता॥

एतेन सुष्ठु कार्येण लेखकानां प्रकाशनम्।
अभवन्नीतिमार्गेण गौरवयुतमनीषिणाम्॥

अनेकवारमिन्दौरं विद्वांसः समागताः।
जिनेन्द्रमिव भव्यास्तु भ्रमरावलीव पङ्कजम्॥

सर्वनैपुण्यभण्डारः अनुपमः ख्यातिप्राप्तकः।
विशेषांकमिदं सम्यक् श्रेष्ठरूपे प्रकाशितम्॥

सम्पादनपरामर्श - मुद्रण - हेतुसुसम्मताः
प्रशंस्या ज्ञानक्षेत्रेषु वर्धेयुः शरदः शतम्॥

देवतुल्यप्रतापेन ज्ञानपीठं समर्पितः।
देवकुमारसिंहाख्यो जीयात् वर्षशताधिकम्॥

वाङ्मयामृतसम्पूर्णं जिनवक्त्राम्बुजनिर्गतम्।
'अर्हत् वचन' जीयात्यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

■ **शिवचरनलाल जैन**
मानद संरक्षक एवं पूर्व अध्यक्ष
तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ
सीताराम मार्केट, **मैनपुरी**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

श.... श..... श..... कोई है!

■ मन्मथ पाटनी *

ह्माण्ड में हम अकेले नहीं हैं? ब्रह्माण्ड में हम ही नहीं हैं? ब्रह्माण्ड में और भी कोई है।

हाँ, प्रश्न बड़ा पेचीदा है। ब्रह्माण्ड के इतने परिचित, अर्द्धपरिचित और पता नहीं ितने अपरिचित ग्रहों में क्या जीवन सिर्फ पृथ्वी पर ही है? क्या बौद्धिक सम्पदा किसी ौर ग्रह पर उपस्थित नहीं है? शायद हाँ। शायद नहीं। जैन आगम के अनुसार भी ब्रह्माण्ड कई ग्रहों पर जीवन है, बौद्धिकता है। और शायद इसी बात को यह घटना दर्शाती । यह घटना पृथ्वी पर घटित ऐसी अनोखी घटनाओं में से है जो हमारे मस्तिष्क को ोचने पर मजबूर कर देती है - क्या ऐसा सम्भव है? जरा देखें घटना क्या है और या दर्शाती है।

16 नवम्बर 1974, आज से लगभग 29 वर्ष पूर्व श्रीमान फ्रेंक ड्रेक और कार्ल ागन ने मिलकर एक संदेश ब्रह्माण्ड के लिये बनाया और उसे अरसिबो ऑब्जरवेटरी, जो ɨ प्यूरीटो रीको, दक्षिण अमेरिका में स्थित है, वहाँ से ब्रह्माण्ड में सितारों के लिये ट्रिलियन ट पॉवर से प्रसारित किया गया। श्री फ्रेंक ड्रेक इसी आब्जरवेटरी के डायरेक्टर हैं।

जो संदेश प्रसारित किया गया था वह सितारों के समूह एम - 13 की ओर इंगित रके भेजा गया था जो कि 22800 प्रकाश वर्ष दूरी पर स्थित है और इस तारक - पुंज करीब 3 लाख तारे हैं। संदेश भेजा गया था उसकी भाषा कम्प्यूटर बायनरी भाषा ी। उसमें पृथ्वी पर मानव की उपस्थिति के बारे में था, हम कैसे दिखते हैं? हम ितनी ऊँचाई के हैं? हम कितने हैं? हमारे जैनेटिक्स किन केमिकल्स ब्लॉक के बने ? हमारे DNA की केमिकल रचना कैसी है? और क्या हैं?

संदेश को थोड़ा विस्तृत रूप में देखें - अरसिबो संदेश प्रारम्भ होता है बाइनरी ाउन्टिंग सिस्टम की परिभाषा से जो कि सभी काउन्टिंग सिस्टम की मूलभूत है। बायनरी गिनने के लिये आपको उन गिनतियों को छोड़ना पड़ता है जिसमें एक और शून्य नहीं ाते हैं अर्थात् 2,3,4,5, नहीं लेना है ...... परन्तु 1, 10, 11, 100, 101 .... त्यादि लेना है। इसके बाद DNA के बारे में डबल हेलीकल रचना बताई गई है। एक ड़ी की आकृति से आदमी को दर्शाया गया है। आदमी के दाहिनी तरफ पृथ्वी पर मनुष्य ो आबादी को दर्शाया गया है। बायीं तरफ आदमी की औसत ऊँचाई दर्शाई गई है। सके पीछे सौर - जगत को दर्शाया गया है। सूर्य एक तरफ और नौ दूसरे ग्रह दूसरी रफ दिखाये गये हैं। एक ग्रह बाहर निकला हुआ है, जिस पर हम हैं। आधार में अरसिबो लीस्कोप और उसके डायमीटर को दर्शाया गया है। इस संदेश को भेजने के करीब 27 र्षों बाद इसका उत्तर/प्रत्युत्तर 19 अगस्त 2001 को चिल बोल्टन रेडो दक्षिण इंग्लैण्ड ो जमीन पर क्राप - सर्कल के रूप में प्राप्त हुआ। क्राप - सर्कल के बारे में विस्तृत जानकारी र्हत् वचन के वर्ष 14, अंक 4, अक्टूबर - दिसम्बर 2002, पृष्ठ 95 - 86 पर दी गई ै।

क्राप फार्मेशन के रिसर्च स्कालर श्री पॉल विगय जहाँ क्राप - सर्कल बना हुआ था ाहाँ गये। उन्होंने वहाँ जाकर देखा और बताया कि क्राप - सर्कल के द्वारा बनाये गये कोड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की क्वालिटी अत्यन्त सुन्दर और बुद्धिमत्ता पूर्ण बनाई गई है। जिस जगह क्राप - सर्कल का फार्मेशन हुआ उससे थोड़ी दूर पर ही क्राप - सर्कल बनने के एक सप्ताह पूर्व क्राप - सर्कल के रूप में एक आकृति दिखाई दी जो बायीं ओर से महिला सदृश्य और दाहिनी ओर से पुरुष सदृश्य दिखाई दे रही थी। हेलीकोप्टर से देखने पर वह आकृति लगभग वैसी ही थी जैसी संदेश में चौड़े मुँह वाले आदमी की दिखाई दे रही है। इससे यह लगता है कि संदेश भेजने वाले ने अपना परिचय फोटो के रूप में साथ में भेजा है।

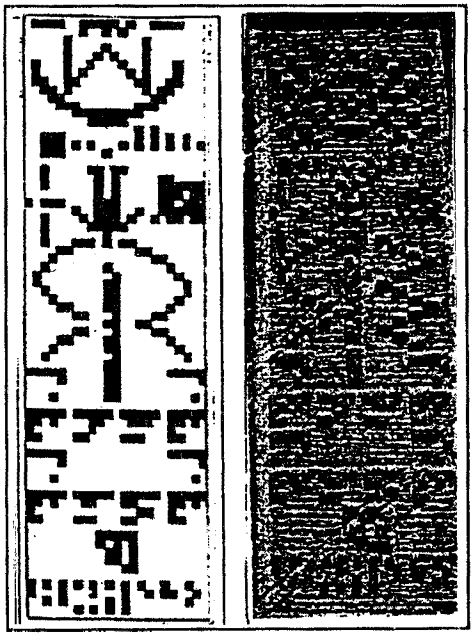

16 नवम्बर 1974 को अरसिबो ऑब्जरवेटरी से सितारों को भेजे गये संदेश की प्रतिकृति

19 अगस्त 2001 को चितबोल्टन रेडो, साऊथ इंग्लैंड की जमीन पर क्राप सर्कल के रूप में प्राप्त प्रत्युत्तर

हमारे संदेश चित्र के प्रत्युत्तर में जो संदेश चित्र प्राप्त हुआ उसमें कुछ अंतर के अतिरिक्त रूप/ढांचा तो वैसा ही था और प्रत्युत्तर भी उसी प्रकार में दिये गये थे। जो कुछ अन्तर थे, वे इस प्रकार थे -

नौ ग्रह तो दिखाये गये हैं परन्तु उनमें ग्रह 3, 4, 5 की साईज बड़ी दिखाई गई है। वृहस्पति एक विशेष हीरे के आकार में दिखाया गया है। यदि डिकोडिंग सही है तो उठे हुए ग्रह बताते हैं कि वहाँ बुद्धिजीवी जीवन है और पृथ्वी, मंगल और वृहस्पति पर जीवन है।

अन्य जानकारी इस प्रकार है - वहाँ पर स्थित जीव की चमड़ी का रंग हल्का भूरा है, सिर बड़ा है, शरीर छोटा है, परन्तु हमारी तरह त्रि - परिमाण वाले जीव हैं। शायद अपने शरीर की ज़रूरत के लिये पोषक तत्व चमड़ी के द्वारा लेते हैं। एक तरफ के फेफड़ों से साँस लेते हैं और दूसरी तरफ के फेफड़ों से साँस छोड़ते हैं। इससे लगता है कि उनका जीवन हमारी तरह कुछ निश्चित काल के लिये होता है।

कॉस्मिक स्केल पर हमारी पृथ्वी HU -1 में आती है जहाँ विज्ञान है और जीवन कार्बन आधारित/आर्गेनिक केमेस्ट्री पर आधारित है। HU -2 दूसरे नम्बर की रचना है जहाँ जीवन कार्बन और सिलिका पर आधारित शरीर रचना है। जो संदेश प्राप्त हुआ, उससे लगता है कि संदेश देने वाले HU -2 कॉस्मिक स्केल के हैं क्योंकि क्राप सर्कल जिस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जमीन पर बना वहाँ सिलिका की तह भी पाई गई।

संदेश भेजा गया और जो प्रत्युत्तर प्राप्त हुआ उससे निम्नलिखित बातें निर्णीत की जा सकती हैं -

1. जिस कम्प्यूटर गणित की भाषा हम जानते हैं, वे भी उसे जानते हैं।
2. क्राप फार्मेशन में सिलिकॉन का प्राप्त होना HU -2 सिस्टम को दर्शाता है।
3. हम उनसे कई बातों में संबंधित हैं।
4. आदमी की आकृति देखकर लगता नहीं कि वे हमसे अलग हैं।
5. डिकोडिंग से पता चलता है कि उनकी ऊँचाई 3 फीट 4 इंच के लगभग होनी चाहिये।
6. जनसंख्या 21.3 बिलियन दिखाई गई है जो कि बहुत अधिक लगती है। क्या यह उनके ग्रह की जनसंख्या है या भविष्य की जनसंख्या है।
7. पृथ्वी, मंगल और वृहस्पति पर जीवन है और बौद्धिक जीवन है।

इन सब बातों का हम यह सार निकालते हैं कि घास पर बने इन क्राप सर्कल से यह बात तो सामने आती है कि इस ब्रह्माण्ड में हम अकेले नहीं हैं। हमें हमारे सिद्धान्त पुनः स्थापित करने होंगे। हमारे अधूरे सूचना ज्ञान के रिक्त स्थानों की पूर्ति करना होगी। हम कौन हैं? हम यहाँ कैसे आये? और हमारे उनसे संबंध क्या हैं? जो हमारी बायनरी भाषा के कोड का प्रत्युत्तर दे रहे हैं। एक बात तो निश्चित है - दूसरे ग्रह पर जो भी हों, वे हमसे बौद्धिकता में आगे हैं और यह भी निश्चित है कि वे हमारी पृथ्वी की तरह रंग-भेद, घृणा, युद्ध, बेकारी, दूषित पर्यावरण की जिन्दगी में नहीं जी रहे हैं। आज जरूरत है हमें एक साथ रहने की। हमारे ग्रह की एक आवाज में सम्मान के साथ आवाज उठाने की, Cosmic Consciousness की। जैन परम्परा में ढ़ाईद्वीप में जीवन का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। सुमेरू पर्वत की प्रदक्षिणा देने वाले विमानों तथा जम्बूद्वीप एवं धातकीखंड द्वीप के अनेक क्षेत्रों में जीवन की विस्तृत चर्चा है। इन विवेचनों के परिप्रेक्ष्य में इन घटनाओं का विश्लेषण उपयोगी रहेगा।

* वाईस प्रेसिडेन्ट - प्रेस्टीज ग्रुप
'मन कमल', 104, नेमीनगर, इन्दौर - 452 009

संशोधनोपरांत प्राप्त - 28.07.03

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

प्रकाश की सजीवता पर विचार

■ अनिलकुमार जैन *

जैन दर्शनानुसार प्रकाश सजीव है या निर्जीव, यह एक विचारणीय मुद्दा है। इस विषय पर विभिन्न जैन संतों की अलग-अलग राय है। अभी किसी एक पक्ष में आम राय नहीं बन पायी है। हम यहाँ इसी विषय कर अपने विचार प्रस्तुत कर रहे हैं।

जैनाचार्यों ने स्थावर जीव पाँच प्रकार के बताये हैं - पृथ्वी, अप, तेज, वायु और वनस्पति। यहाँ तेज यानि अग्नि को भी एक इन्द्रिय जीव बनाया गया है। यहाँ एक दिलचस्प बात यह है कि अग्नि को तो जीव कहा है, लेकिन प्रकाश, ध्वनि, गर्मी आदि को जीव नहीं कहा गया है। प्रकाश, ध्वनि, गर्मी आदि ऊर्जा की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। जिस समय आचार्यों ने अग्निकायिक जीवों की चर्चा की थी, उस समय प्रकाश, गर्मी और ध्वनि आदि भी मौजूद थे। यदि ये भी जीव होते तो इनकी चर्चा भी स्थावर जीवों में की होती तथा इस स्थिति में स्थावर पाँच प्रकार के न होकर इससे अधिक होते। इससे सिद्ध होता है कि प्रकाश, गर्मी, ध्वनि आदि जीव नहीं हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है प्रकाश, गर्मी, ध्वनि आदि ऊर्जा की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। अग्नि से गर्मी और प्रकाश दोनों उत्पन्न होते हैं। अग्नि सजीव है अत: प्रकाश और गर्मी भी सजीव होंगे, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। जैसे मनुष्य ध्वनि निकालता है, मनुष्य सजीव है जबकि ध्वनि पुद्गल की पर्याय (विकार रूप) है। अत: यह तो माना जा सकता है कि प्रकाश और गर्मी अग्निकायिक जीव के निमित्त से भी पैदा होते हैं, लेकिन प्रकाश और गर्मी भी सजीव होते हैं ऐसा मानना सही नहीं है।

आगम में दो प्रकार के जीवों का वर्णन मिलता है - उद्योत और आताप। उद्योत जाति के जीव वे हैं जो अपने शरीर से शीतल प्रकाश निकालते हैं जैसे जुगनू। आताप जाति के जीव वे होते हैं जो प्रकाश के साथ-साथ गर्मी भी देते हैं जैसे अग्निकायिक जीव। हम यह मान सकते हैं कि चन्द्रमा से हमें जो शीतल प्रकाश प्राप्त होता है वह वहाँ पर स्थित उद्योत जाति के जीवों के कारण है। तथा सूर्य से जो प्रकाश प्राप्त होता है वह वहाँ पर स्थित आताप जाति के जीवों के कारण से है। जुगनू सजीव है, उससे मिलने वाला प्रकाश भी सजीव होगा, यह मानना सही नहीं है।

एक दिलचस्प बात यह और है कि अग्नि को पैदा करने के लिये तीन की आवश्यकता होती है - ईंधन, आक्सीजन और गर्मी या ताप (minimum ignition temperature)। यदि इनमें से एक भी कम होगा तो अग्नि पैदा नहीं होगी। अग्नि पैदा करने के लिये न्यूनतम ignition ताप भी चाहिये और बाद में फिर अग्नि भी और अधिक गर्मी पैदा करती है। इस प्रकार अजीव के निमित्त से जीव (के उत्पन्न होने योग्य योनि) तथा जीव के निमित्त से अजीव (पर्याय) की उत्पत्ति हो सकती है।

जिस प्रकार प्रकाश, गर्मी और ध्वनि अजीव हैं तथा ऊर्जा की विभिन्न अवस्थाएँ हैं, उसी प्रकार विद्युत भी ऊर्जा की एक अवस्था है और वह भी अजीव है। एक ऊर्जा को दूसरी ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है। ध्वनि से विद्युत और विद्युत से ध्वनि, तथा प्रकाश से विद्युत और विद्युत से प्रकाश आदि पैदा किया जा सकता है। हमारी दृष्टि में, ऊर्जा की ये सभी अवस्थाएँ स्वयं में जीव नहीं हैं। यदि ये जीव होतीं तो आचार्यों ने इन्हें भी स्थावरों में गिनाया होता। हाँ, यह अवश्य है कि इनके उत्पादन में कुछ सूक्ष्म जीवों की विरादना होती है/हो सकती है। इनका अधिक प्रयोग प्रदूषण फैला सकता है। अत: जितना हो सके उतना हमें ऊर्जा का संरक्षण करना चाहिये क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध पर्यावरण से है।

* बी-26, सूर्यनारायण सोसायटी, बिसत पैट्रोल पम्प के सामने, साबरमती, अहमदाबाद - 380005

प्राप्त - 15.12.2002

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

कृषि एवं उद्यानिकी फसलों का उत्पादन एवं पर्यावरण संरक्षण

■ सुरेश जैन 'मारोरा' *

मिट्टी एक जीवित पदार्थ है, अतः इसकी देखभाल भी अन्य जीवित प्राणियों की तरह ही होनी चाहिये। हमारे देश में हरित क्रांति में जो भूमि की उर्वरता नष्ट करने, नदी-नालों को प्रदूषित करने तथा मनुष्य शरीर में विषैलापन भरने के प्रयास किये हैं, अब उन्हें बदला जाना आवश्यक है। आज के परिप्रेक्ष्य में यह अत्यन्त जटिल कार्य होगा कि पर्यावरण की रक्षा करते हुए कृषि, उद्यानिकी फसलों का उत्पादन कैसे बढ़ायें। कृषि रासायनिक उर्वरकों का उपयोग बन्द कर जीवाणु खाद का उपयोग करने की आवश्यकता है। यह रासायनिक उर्वरकों की तुलना में सस्ता एवं प्रदूषण रहित है। जैविक विधि से रोग नियंत्रण भी एक सरल उपाय है।

जैविक खाद - कुछ पौधों के उत्पादों में (खाने के अयोग्य) उर्वरक तत्व एवं कीटनाशक गुण पाये जाते हैं। फसल एवं पेड़ पौधों के उत्पादन में 16 तत्वों की आवश्यकता होती है जिसमें 6 मुख्य तत्व एवं 10 गौड़ तत्व हैं, मुख्य तत्व एन (नाइट्रोजन), पी (फास्फोरस), के (पोटाश), कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन हैं, जिन्हें पौधे अपने आप ग्रहण कर लेते हैं। 10 गौड़ तत्व केलशियम, बोरोन, मैग्नीज, मैग्नीशियम, मौलीविडनम, क्लोरीन, आयरन, कोपर, जस्ता, आदि हैं। जब सूक्ष्म तत्वों की कमी होती है तब इन तत्वों को अलग से देकर अधिक उत्पादन ले सकते हैं, लेकिन हर वर्ष इन तत्वों की पूर्ति रासायनिक खाद, उर्वरक, दवाओं के रूप में करते-करते भूमि की उर्वरता नष्ट हो रही है। फसलों पर इन तत्वों को खाद और दवा के रूप में न देकर जैविक विधियों से पैदा कर पूर्ति की जा सकती है, जिससे भूमि की उर्वरता नष्ट न होकर जन्म जन्मांतरों के लिये बढ़ती चली जाती है और अच्छा उत्पादन होता है, कुप्रभाव भी नहीं होता। प्रदूषण से भी बचा जा सकता है, पर्यावरण की भी रक्षा की जा सकती है। अर्थात् यों भी कहें कि कृषि उत्पादन जीवाणु खाद या जैविक कीट नियंत्रण से ही बढ़ाया जाकर पर्यावरण की रक्षा सम्भव है।

जीवाणु खाद में गोबर, मलमूत्र, कूड़ा करकट, गोबर गैस, केंचुए की खाद, नील, हरितकाई, नीमखली, तिल, अलसी, सोयाबीन, महुआ की खली आदि जीवाणु खाद नाडेप विधि द्वारा बनाई जाती है, केंचुऐं द्वारा भी तैयार की जाती है।

जीवाणु खाद से लाभ

1. नीमखली को गोबर के साथ उपयोग करने से पौधों की जड़ों में गठानें बनती हैं, दीमक का प्रकोप नहीं होता। जमीन के पी.एच. को नीमखली संशोधित करती है।
2. नीम, तिल, सोयाबीन, अलसी की खली जानवरों का भोजन है।
3. नाडेप से बने खाद में सभी तत्व अधिक से अधिक मात्रा में मौजूद रहते हैं, इसके उपयोग से रासायनिक खाद की तुलना में अधिक उपज मिलती है।
4. केंचुए जमीन की तीन मीटर गहराई तक जुताई कर देते हैं, 10 एम.एम. की सतह तक जितना ह्यूमस दो सौ वर्षों में एकत्रित होता है उतना केंचुए एक वर्ष में एकत्रित करते हैं। यह पर्यावरण या किसान के मित्र कहे जा सकते हैं। इनके उपयोग से (कचरे से) जो खाद बनती है, वह संतुलित खाद होती है, जिससे रासायनिक खाद तथा दवाइयों की बचत होती है, बंजर भूमि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में सुधार हो जाता है। भू-जल में वृद्धि, दूषित जल की सफाई, कम खर्च से अधिक पैदावार एवं गुणवत्ता वाली उपज मिलती है।

5. जीवाणु वाली खादों से सुरक्षा मिलती है, इस खाद में पौध संवर्द्धन के लिये प्राकृतिक इन्जाइम, प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज उपलब्ध होते हैं।
6. जैविक खाद में सूखा, पाला, हिमपात एवं विपरीत मौसम को सहन करने की शक्ति होती है। जैविक खाद से फल, फूल, औषधि एवं सब्जी फसलों की ताजगी अधिक समय तक बनी रहती है। बीमारी के खिलाफ प्रतिरोधक शक्ति रहती है।
7. नील, हरितकाई, 10 किलोग्राम के मान से उपयोग करने पर 15 से 30 किलोग्राम वायुमण्डलीय नत्रजन का स्थिरीकरण होता है। हरितकाई से आक्सिल, जिब्रेलिक एसिड प्राप्त होता है जो फसल की वृद्धि के लिये आवश्यक है।

जैविक कीटनाशक

विभिन्न उत्पादों - गाय का मूत्र, नीम तेल, नीम की पत्ती, नीम का पावडर, मिर्च, लहसुन, प्याज, अलसी का तेल, साबुन, राख, नीलाथोथा, तम्बाकू या जला हुआ डीजल, मिट्टी का तेल कीटनाशक के रूप में उपयोग करना चाहिये।

जल शक्ति, सौर्य ऊर्जा, सौरीकरण (गेंदा, सूर्यमुखी, सोयाबीन) फसल चक्र अपनाकर एवं प्लास्टिक शीट का उपयोग कर कीटों को रोका जा सकता है।

जैविक कीटनाशक से लाभ

1. यह छिड़काव, बुरकाव करने वाले व्यक्ति, जानवरों के लिये सुरक्षित है। यह अखाद्य होकर भी हानिरहित है, इनको घर पर ही सरलता से तैयार किया जा सकता है, यह कम खर्चीले हैं।
2. ये आसानी से इधर-उधर ले जाये जा सकते हैं, इनके उपयोग से स्वास्थ्य के लिये कोई हानि नहीं होती। यह किसी लाभदायक प्रजाति को पूर्णत: नष्ट या लुप्त नहीं करते, इससे प्रकृति का संतुलन बना रहता है।
3. ये हानि रहित हैं, वातावरण प्रदूषित होने का खतरा नहीं रहता।
4. अन्तरवर्तीय फसलें बोकर भी जैविक खाद और जैविक नियंत्रण का लाभ किसानों को मिल सकता है।

अत: कृषकों को अधिक उत्पादन लेने के लिये सलाह दी जाती है कि वह 25 नीम के पेड़ अवश्य लगायें, स्वयं के बीज तैयार करें, स्वयं का खाद नाडेप विधि से या जीवाणु विधि से तैयार करें। स्वयं की दवा का उपयोग करें एवं 10 प्रतिशत जगह में फलदार पेड़ पौधे लगायें।

* वरिष्ठ उद्यान विकास अधिकारी
जीवन सदन, सर्किट हाउस के पास, शिवपुरी - 473 551 (म.प्र.)

प्राप्त - 20.04.03

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

भारतीय अध्यात्म का स्वर्ण कलश - कटवप्र

■ स्नेहरानी जैन*

कर्नाटक प्रदेश के प्रसिद्ध श्रवणबेलगोल तीर्थक्षेत्र की प्रसिद्धि का कारण अधिकांश लोग चामुण्डराय द्वारा निर्मापित, पहाड़ को तराश कर बनवाई गई बाहुबलि भगवान की मूर्ति ही मानते हैं। कुछ इतिहास में रुचि रखने वाले व्यक्ति विंध्यगिरि के साथ-साथ चन्द्रगिरि पर निर्मापित चन्द्रगुप्त मौर्य के जिन मन्दिर को मानते हैं जिसकी संगमरमरी जाली में चन्द्रगुप्त मौर्य की जीवनी सचित्र उभरी है। कुछ तपस्वी साधक भद्रबाहु की गुफा और संपूर्ण चन्द्रगिरि को मानते हैं जहाँ आचार्य भद्रबाहु और उनके शिष्य चन्द्रगुप्त ने समाधिमरण हेतु सल्लेखना ली।

इस वर्ष संक्रांति (2003) से पूर्व कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण नये तथ्य सामने आये हैं जिनसे चन्द्रगिरि द्वारा अब मानव इतिहास को नया मोड़ लेना होगा। आचार्य भद्रबाहु की गुफा के चंदोवे वाली चट्टान में सात मानवाष्म अपनी झलक दर्शा रहे हैं। इनके फोटो भी अत्यन्त स्पष्ट हैं। यहाँ तक कि आँख, नाक, मुँह भी उनमें झलकते हैं। उन्हें देखकर अनुमान होता है कि उस लावा-जन्य शिला पर मनुष्य शांति से सोता होगा। हजारों वर्षों से यही होता रहा होगा, क्योंकि वह चट्टान 'कटवप्र' चारों ओर से घने जंगलों से घिरी थी। जिस स्थिति में वे मानवाष्म हैं, उनमें से तीन के पैर उत्तर की ओर तथा चार के पैर पूर्व की ओर लगते हैं। वे लगभग 8½' से भी लम्बे कद के रहे होंगे। कर्नाटक पर्यटन विभाग कटवप्र को पुण्यजीवियों का मकबरा कहता है।

समाधिलीन उन व्यक्तियों की वे शवासन मुद्राएँ दर्शाती हैं कि कायोत्सर्ग लेकर लेटने के कारण धरती की गड़गड़ाहट अथवा पत्थरों के बिखरने, लुढ़कने ने भी उन्हें विचलित नहीं किया होगा। जिस चट्टान में वे बने हैं, वह पूरी पिघली, लावारूप उछलकर उन पर गिरी होगी और छनककर सनसनाहट से शांत हो गई होंगी। शरीरों से उठती पानी की भाप ने लावा को जहाँ जहाँ छनका कर ठंडा करा दिया वहीं वहीं वे मानवाष्म अपना रूप ले बैठे। इससे अधिक तो और कुछ समझ में नहीं आता। यह घटना निश्चित ही तब की होगी जब ज्वालामुखी ने अंतिम बार अपना लावा उगला। दक्षिणी पठार का लावा रिसना तो लाखों वर्षों पूर्व बंद होकर हरियाली में बदल गया है।

चन्द्रगिरि की वन्दना करते हुए जो दूसरी महत्वपूर्व वस्तु दिखी वह थी चट्टानी फर्श पर बिखरी बिछी लकीरों में अनबूझी अज्ञान **'उकेर'**। मंदिर नं. 4/5 की सीढ़ी से उतरते ही उस पर दृष्टि पढ़ गई। बैठकर उसे टटोला तो मैंने पाया कि उन लकीरों के आसपास कुछ परिचित अक्षर भी थे। वे हड़प्पा और मोहनजोदड़ो वाली सैंधव लिपि के जैसे ही थे। कुछ पंक्तियाँ पढ़ते ही सभी कुछ समझ में आ गया कि वह तो हड़प्पा के समकालीन सभ्यता जैसे इस बात के पुष्ट प्रमाण हैं कि चन्द्रगिरि (कटवप्र) पर भद्रबाहु पूर्व काल से ही श्रमणों द्वारा तपश्चरण और सल्लेखना की जाती रही है। भद्रबाहु की गुफा में इस बात के ज्वलंत ठोस प्रमाण हैं कि वहाँ मनुष्य तपश्चर्यारत रहते थे। वहाँ के 'मानवाष्म' और बाहरी चट्टान पर क्षरण से धूमिल 'जिन आकृतियाँ' तो उस 'उकेर' से भी प्राचीन हैं।

चन्द्रगिरि की चट्टान पर आकाश तले पैरों से कुचली जा रही वह रेखाएँ इतनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गहरी हैं कि जरा सी रंगोली बिखेरने पर वे अपने आप बोलने लगती हैं। कुछेक को तो मैंने कैमरे में बांध लिया। सभी बहुत स्पष्ट हैं। बीच - बीच में समाधिस्थ 'जिनश्रमणों' के चरण चिह्न भी हैं। कुछेक तो पास में निर्मित मन्दिरों की नीवों तले दबकर झांक रहे हैं। कुछेक पर अनेक बार चरण चिह्न पुन: बना दिये गये। ऐसे चरणों के पास सर्वप्राचीन लिपि सैंधव लिपि ही है। बाद की लिपि प्राचीन कन्नड़ या तमिल है जिसे पढ़ा नहीं जा सका है। और फिर हैं उत्तरकालीन शिलालेख जिनमें से कुछ पढ़े जाकर सुरक्षित कर दिये गये हैं। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि ये सारे चरण और चित्रलिपि उस अज्ञात 'पुरा - इतिहास' का प्रमाण हैं जो कटवप्र अथवा उससे भी पूर्व काल में जानी जाती रही, इस पहाड़ी पर लिखा गया। अधिकांश चरण पूर्वमुखी अथवा उत्तरमुखी हैं। मात्र कुछ ही पश्चिम और दक्षिणमुखी हैं जो दर्शाते हैं कि उनके काल में उन दिशाओं में स्थित मानव बस्तियों के जिन चैत्यालय रहे होंगे। एक चरण के साथ पुरुष लिंग भी उकरित है जो दर्शाता है कि सल्लेखी दिगंबरी ही थे। चतुर्दिकावर्णि के संकेत उन सल्लेखियों का जिन श्रमणत्व सिद्ध कर देते हैं। इस प्रकार इस पर्वत के पुरावशेष, कटवप्र को प्राच्य भारत की सर्वप्राचीन सैंधव संस्कृति का स्वर्ण कलश और भूलाबिसरा अति महत्वपूर्ण केन्द्र स्थापित कराते हैं जिसके अनुसार हड़प्पा जैसी ही पुरा संस्कृति दक्षिण भारत में भी सुरक्षित और पल्लवित रही।

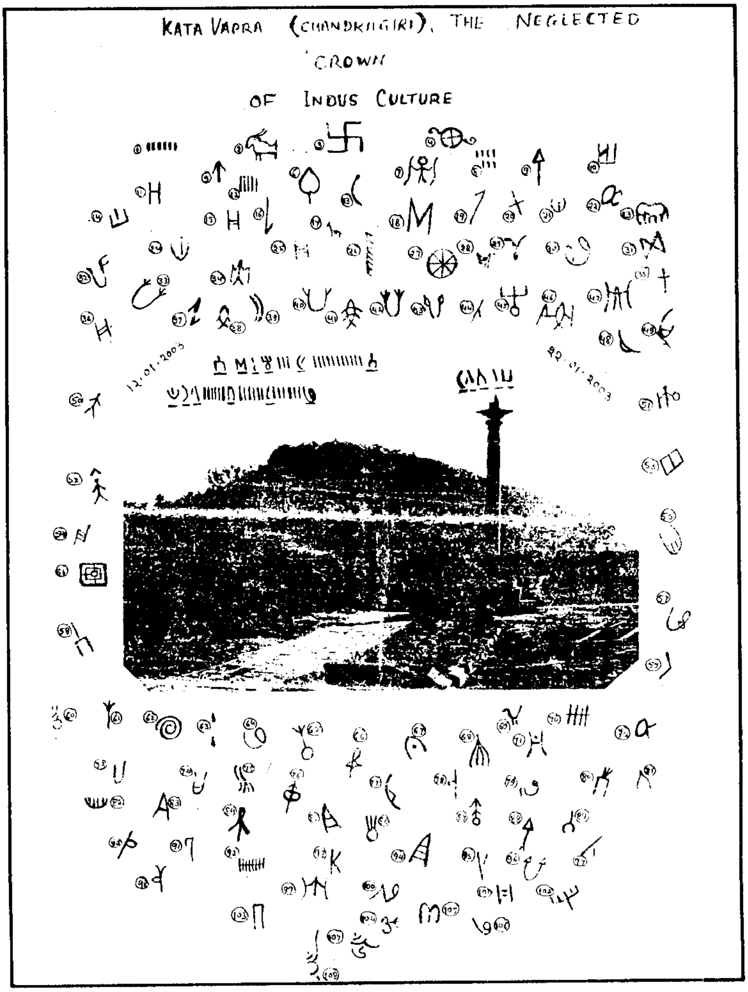

* C/o. श्री राजकुमार मलैया
मलैया ट्रेडर्स, भगवानगंज, स्टेशन रोड़, **सागर**

प्राप्त - 28.02.03

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जूना कैलोद करताल की जैन प्रतिमाएँ

■ नरेशकुमार पाठक *

ग्राम कैलोद करताल इन्दौर जिले की इन्दौर तहसील में स्थित है। वह 22^0-38^0 अक्षांस व 75^0-52^0 पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित हैं, समुद्र की सतह से ऊँचाई 2345 फीट है। इस ग्राम के पूर्व बस्ती जूना कैलोद करताल है। कहा जाता है यहाँ पहले कैलोद करताल गाँव था जो बिलावली तालाब के निर्माण के बाद इस स्थान से स्थानान्तरित कर दिया गया। यह तेजाजी नगर (खंडवा रोड़) से आधा कि.मी. दूरी पर व बिलावली तालाब की बाहरी सीमा पर स्थित है। यहाँ स्थित टीले पर मुगल-मराठा कालीन मृदभाण्ड, गन्ने का रस निकालने का कोलू, हनुमान मन्दिर है जिसमें हनुमान की प्रतिमा दो शिवलिंग युक्त जलाधारी एवं नन्दी प्रतिमा है। मंदिर के सामने मराठा कालीन जैन मन्दिर है, यहाँ खण्डहरों से प्राप्त प्रतिमाएँ हनुमान मन्दिर के बायें पार्श्व में, हनुमान मन्दिर के सामने, हनुमान मन्दिर के पास पीपल के वृक्ष के नीचे एवं सती के चबूतरे के पीछे रखी हैं जिनमें से जैन प्रतिमाओं का विवरण निम्न प्रकार है -

आदिनाथ प्रतिमा पादपीठ - यह प्रतिमा हनुमान मन्दिर के बायें पार्श्व में रखी है। तीर्थंकर आदिनाथ प्रतिमा के पादपीठ पर विपरीत दिशा में मुख किये दोनों ओर सिंह एवं गजों का अंकन है। मध्य में चक्र का आलेख है। पादपीठ के नीचे के भाग में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ का ध्वज लांछन नन्दी (वृषभ) का अंकन है। बैसाल्ट पत्थर पर निर्मित 85 x 44 x 36 से. मी. आकार की प्रतिमा लगभग 12 वीं शती ईस्वी की हैं।

तीर्थंकर - यह प्रतिमा हनुमान मन्दिर के पास पीपल वृक्ष के नीचे रखी है। लांछन मुद्रा में बैठे तीर्थंकर सिर पर कुन्तलित केश, लम्बे कर्ण चाप, अलंकृत प्रभामंडप एवं श्रीवत्स से अलंकृत है। वितान में मालाधारी विद्याधर अंकित हैं, विद्याधर केश, कुण्डल, दोवली हार व वलय आदि आभूषण धारण किये हुए हैं। पादपीठ पर दोनों ओर चंवरधारी खड़े हैं जो एक हाथ में चंवर एवं एक हाथ में कटयावलम्बित है। चंवरधारी करण्ड मुकुट, कुण्डल, दोवलीहार, यज्ञोपवीत, वलय व मेखला धारण किये हैं। बलुआ पत्थर पर निर्मित 71 x 46 x 33 से.मी. आकार की प्रतिमा लगभग 12 वीं शती ई. की प्रतीत होती है।

तीर्थंकर - यह प्रतिमा सती के चबूतरे के पीछे रखी है। लांछन विहीन तीर्थंकर पद्मासन में बैठी हुई प्रतिमा दो खण्डों में है। तीर्थंकर के सिर पर कुन्तलित केश, लम्बे कर्ण चाप, वक्ष पर श्रीवत्स का अंकन है। वितान में मकर तोरण का अंकन है। बैसाल्ट पत्थर पर निर्मित 56 x 25 x 26 से.मी. आकार की प्रतिमा लगभग 14 वीं शती ई. की प्रतीत होती है।

तीर्थंकर का उर्ध्वभाग - यह प्रतिमा हनुमान मन्दिर के पास पीपल के पेड़ के नीचे रखी है। तीर्थंकर प्रतिमा के उर्ध्वभाग में तीर्थंकर का कमर से ऊपर का भाग है। तीर्थंकर के सिर पर कुन्तलित केश, लम्बे कर्णचाप एवं श्रीवत्स का अंकन है। वितान में कीर्तिमुख एवं मकर तोरण का अंकन सुन्दर है, बैसाल्ट पत्थर पर निर्मित

तीर्थंकर, तीर्थंकर का उर्ध्वभाग एवं जैन प्रतिमा वितान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

55 x 35 x 25 से.मी. आकार की प्रतिमा लगभग 13 वीं शती ई. की है।

जैन प्रतिमा वितान - यह प्रतिमा हनुमान मन्दिर के पास पीपल के वृक्ष के नीचे रखी है। जैन प्रतिमा वितान है। जिसमें त्रिछत्र, दुन्दुभिक अंकित हैं। दोनों ओर पद्मासन की ध्यानस्थ मुद्रा में दो-दो जिन प्रतिमा अंकित हैं जो मुकुट, कुण्डल, आदि आभूषणों से अलंकृत हैं। बैसाल्ट पत्थर पर निर्मित 51 x 42 x 27 से.मी. आकार की यह प्रतिमा लगभग 13 वीं शती ई. की प्रतीत होती है।

जैन प्रतिमा वितान - यह प्रतिमा हनुमान मन्दिर के सामने रखी है। जैन प्रतिमा का वितान त्रिछत्र, दुन्दुभिक अंकित हैं। दायें ओर गजारोही अभिषेक करते हुए प्रदर्शित हैं। दुन्दुभिक व अश्वारोही केश, कुण्डल, हार व बलय आदि से अलंकृत हैं। बैसाल्ट पत्थर पर निर्मित 51 x 42 x 27 से.मी. आकार की यह प्रतिमा लगभग 13 वीं शती ई. की प्रतीत होती है।

गोमुख यक्ष - यह प्रतिमा हनुमान मन्दिर के सामने रखी है। प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ के शासन यक्ष गोमुख बैठे हुए हैं। गोमुख की बायीं भुजा अभय मुद्रा में बायीं भुजा के मोदक जैसी गोल वस्तु है। गोमुखी यक्ष करण्ड मुकुट, हार, यज्ञापवीत, मेखला व नूपर धारण किये हैं। बैसाल्ट पत्थर पर निर्मित 29 x 46 x 23 से.मी. आकार की यह प्रतिमा लगभग 13 वीं शती ई. की प्रतीत होती है।

उपरोक्त प्रतिमाओं के विवरण से स्पष्ट होता है कि यद्यपि से प्रतिमा कम संख्या में हैं तथापि परमार कालीन क्षेत्रीय मूर्तिकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

* संग्रहाध्यक्ष - केन्द्रीय संग्रहालय
ए.बी. रोड़, इन्दौर - 452 001

प्राप्त - 19.08.02

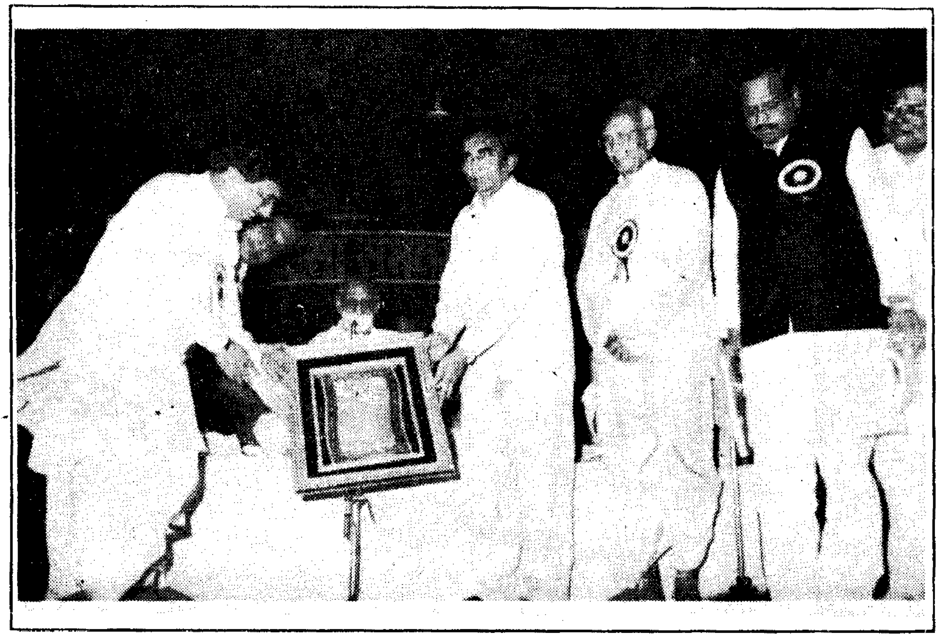

तेरापंथ श्वेताम्बर जैन धर्मसंघ के आचार्य श्री महाप्रज्ञ के सान्निध्य में डॉ. कुमारपाल देसाई को भारत जैन महामंडल द्वारा स्थापित प्रथम 'जैन गौरव' अलंकरण प्रदान करते हुए केन्द्रीय मंत्री डॉ. सत्यनारायण जटिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

तीर्थंकर महावीर की दो धातु प्रतिमाएँ

■ नरेशकुमार पाठक *

तीर्थंकर महावीर स्वामी जैन धर्म के चौबीसवें अर्थात् वर्तमान अवसर्पिणी के अन्तिम तीर्थंकर हैं। उनका लांछन सिंह एवं केवलज्ञान वृक्ष साल है। शासन देवताओं के रूप में मातंग यक्ष और सिद्धायिका यक्षिणी तथा चामरधारी के रूप में मगध नरेश श्रेणिक अथवा बिम्बसार को इनकी प्रतिमाओं के साथ शिल्पांकित किया जाता है। कल्पसूत्र, उत्तरपुराण, त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र तथा वर्धमान चरित्र आदि ग्रन्थों में महावीर स्वामी के परिचय से संबंधित अनेक बातें लिखी गई हैं। ये कुण्डलपुर के महाराज सिद्धार्थ के पुत्र थे जिनकी राजधानी कुण्डलपुर कहलाती थी। जो वर्तमान में बिहार के नालंदा जिले में स्थित है। इनकी माता का नाम त्रिशला था। महावीर स्वामी को बाल्यकाल में वर्धमान कहा जाता था। गौतम इन्द्रभूति उनके प्रमुख शिष्य थे। केवल 72 वर्ष की आयु में ईसा पूर्व 527 के लगभग महावीर स्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया।[1] प्रस्तुत आलेख में रामपुरा जिला नीमच एवं उज्जैन से प्राप्त महावीर स्वामी की प्रतिमाओं का विवरण प्रस्तुत है -

रामपुरा की तीर्थंकर महावीर स्वामी की धातु प्रतिमा[2]

तीर्थंकर महावीर स्वामी की यह प्रतिमा थाना रामपुरा जिला नीमच द्वारा जब्त की गई है एवं वर्तन में थाना रामपुरा में जमा है। मिश्रित धातु से निर्मित जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी की यह प्रतिमा ध्यान मुद्रा में पद्मासनस्थ है। तीर्थंकर महावीर कुंचित केश, वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह अंकित है। आगे के दोनों हाथ योग मुद्रा में हैं। पादपीठ पर दो सिंह सम्मुख मुद्रा में अंकित हैं। पादपीठ पर अन्य कोई ध्वज लांछन अथवा पार्श्वचर का अंकन नहीं है। प्रतिमा में उत्कृष्ट शिल्पांकन है। नुकीली नाक, धनुषाकार भौहें, अर्द्धनिमीलित नेत्र हैं। यह प्रतिमा सांचे में ढालकर बनाई गई है। प्रतिमा का आकार 23 x 15 x 7 से.मी. है। शैलीगत आधार पर इसका काल लगभग 12 वीं 13 वीं सदी ईस्वी का प्रतीत होता है। प्रतिमा में पीछे की ओर ड्रिल मशीन से छिद्र किये हुए हैं। प्रतिमा पुरातत्वीय दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

उज्जैन की तीर्थंकर महावीर स्वामी प्रतिमा[3]

यह प्रतिमा उज्जैन के जीवाजीगंज थाने में चोरी में पकड़ी गई थीं। चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी को ध्यानस्थ मुद्रा में पद्मासन में प्रदर्शित किया गया है। प्रतिमा के कुंचित केश, लम्ब कर्ण तथा वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न को आकर्षक मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। कला की दृष्टि से यह प्रतिमा लगभग 17 वीं शताब्दी ईस्वी की अनुमानित है। प्रतिमा पर उकेरा गया लांछन सिंह निर्माण के समय न उकेरते हुए बाद में उकेरा गया है क्योंकि प्रतिमा सांचे से ढालकर उकेरी गई है। प्रतिमा का वजन 5 किलो 240 ग्राम है। प्रतिमा अष्टधातु की बनी है, प्रतिमा का आकार 20 x 15.5 x 6.2 से.मी. है। मूर्ति की निर्माण योजना उच्च कोटि की है।

सन्दर्भ

1. मालवा की मूर्तिकला - पाँच, इन्दौर संग्रहालय में संरक्षित जैन तथा बौद्ध प्रतिमाएँ एवं विविध कलाकृतियाँ, भोपाल, 1991, पृष्ठ 42.
2. इस प्रतिमा की जानकारी डॉ. रमेशचन्द्र यादव, सहायक संग्रहाध्यक्ष, यशोधर्मन संग्रहालय, मन्दसौर से प्राप्त हुई।
3. इस प्रतिमा की जानकारी डॉ. रमण सोलंकी, संग्रहालय प्रभारी, डॉ. वाकणकर पुरातत्व संघ संग्रहालय, उज्जैन से प्राप्त हुई।

* संग्रहाध्यक्ष - केन्द्रीय संग्रहालय
ए.बी. रोड़, इन्दौर - 452 001

प्राप्त - 30.05.02

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार

श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा जैन साहित्य के सृजन, अध्ययन, अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के अन्तर्गत रुपये 25,000=00 का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रतिवर्ष देने का निर्णय 1992 में लिया गया था। इसके अन्तर्गत नगद राशि के अतिरिक्त लेखक को प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिह्न, शाल, श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया जाता है।

1993 से 1999 के मध्य संहितासूरि पं. नाथूलाल जैन शास्त्री (इन्दौर), प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन (जबलपुर), प्रो. भागचन्द्र 'भास्कर' (नागपुर), डॉ. उदयचन्द्र जैन (उदयपुर), आचार्य गोपीलाल 'अमर' (नई दिल्ली), प्रो. राधाचरण गुप्त (झांसी) एवं डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन (इन्दौर) को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

वर्ष 2000, 2001 एवं 2002 हेतु प्राप्त प्रविष्टियों का मूल्यांकन कार्य प्रगति पर है। वर्ष 2003 हेतु जैन विद्याओं के अध्ययन से सम्बद्ध किसी भी विधा पर लिखी हिन्दी/अंग्रेजी, मौलिक, प्रकाशित/अप्रकाशित कृति पर प्रस्ताव 30 सितम्बर 03 तक सादर आमंत्रित हैं। निर्धारित प्रस्ताव पत्र एवं नियमावली कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ कार्यालय में उपलब्ध है।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

01.07.2003

जैन विद्या का पठनीय षट्मासिक

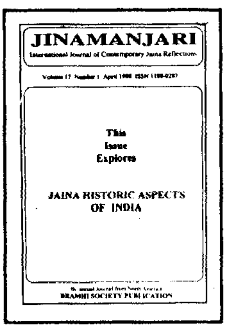

JINAMANJARI
Editor - Dr. S.A. Bhuvanendra Kumar
Periodicity - Bi-annual (April & October)
Publisher - **Brahmi Society, Canada - U.S.A.**
Contact - Dr. S. A. Bhuvanendra Kumar
4665, Moccasin Trail,
MISSISSAUGA, ONTARIO,
CANADA 14Z 2W5

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

HINDUISM :
Civilization of unity in diversity

■ N.N. Sachdeva *

Hinduism to denote as a religion like *Islam* or Christianity is a misuse, misconceived and misleading. It is not easy to define *Hinduism.* Like *Islam* and Christianity it is not a religion/faith or way of worship. It is neither a race nor a sect or a community. People of different faith or way of worship even diverse to each other are called *Hindu.* There are *Sanātanists* and *Vaiśṇavas* or *Śaivaites;* who believe in reincarnation of god in the form of *Avtāra* and worship idols. There are *Ārya Samājists* who go by Vedās only. They believe on Mono God and do not worship idols. They do not believes in *Purāṇas* as scriptures. According to their faith God does not come in the form of *Avtāra.* The Jainas and Bauddhas are also included among *Hindus.* They do not believe in God as creature, but in Nature or Prakṛti. *Ādivāsis*/tribals who form bulk of Indias population are included among *Hindus.* They worship their ancestors and idols of family deities. There are many smaller sects started by different saints/*Gurūs* at different times like *Nānaka, Kabira, Rādhā Svāmis, Vālmīkis, Nirankāris* etc. all over the country. They worship their respective *Gurūs.* There are vegetarians as well as non vegetarian among them. Similarly there is no common dress or other living habits and neither common language or script. Their traits are deeply rooted in local soil.

The word *Hindu* is mispronounciation of *Sindhu,* the name given after the River Sindh now also calls Indus in North India. Arab travellers pronounced Hind to river and called the people living there *Hindu,* because they could not pronounce S or SA properly. They called this country as *Hindustan,* to express, the place of *Hindus* or *Sindhus.* Europeans could bot pronounce Hind properly; they made it Ind and called the river as Indus and the people as Indian and country as India. Thus it is to be noticed that word *Hindu* is not of local origin or of language like *Sanskrit, Prakrit* by Aryans after local language. At one time it was called *Āryā Vṛata,* a name perhapss given by Āryans after their settlement here. Later it was called *Bhārata.* In fact all people living in and around south of river Sinda are *Hindu.* Thus it not a religion.

Britishers, who ruled India about 200 years resolved this diffculty to their political advantage, by dividing population into *Muslims* and Non-*muslims;* avoiding the word *Hindu* for obvious reasons.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

This *Hinduism* cannot be strictly speaking termed as a religion as understood in common usage. It is more of culture and civilization like European, Arab, African or Chinese. It is more ancient than Egyptian, Greek, Roman, Babylon or even Mayan etc. but surprisingly still surviving and thriving when others have become merely a chapter in history.

Therefore, all the inhabitants living in Indian subcontinent, can legitimately claim to be Hindu or mere approximately Hindi, irrespective of their existing religious faith. More than 90% of Indian Christians are converts and so are Muslims. Their heritage is common with followers of other indigineous religions. Their ancestors, forefathers, for some good reason seem to have adopted the new religion. They can take pride in their ancient heritage as well belonging to world's latest and largest religions viz. Christianity and Islam Mohd Iqbal, Poet Laurate of Pakistan, author of *Sāre Jahām se Achhā, Hindustān Hamārā* (सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा) and justice M.C. Chhagla, one time Indian education minister and Sheikh Abdulla, *Shere Kashmir* have openly affirmed it.

C.F. Andrews, a close associate of Gandhiji in Indian freedom movement was a devout Christian and was Max Mullar, a German who translated Vedas from Sanskrita. Another name that comes to mind is Ralph Woodro Emesen Famous American poet and literate, showned keen interest in *Hindu* scriptures; especially *Bhagavatgītā*.

The influence of Hinduism as a culture and civilization can be seen all over the world as great acceptance of pluralism in the matter of faith or unity in diversity. Viz, toleration, peace and non violence. Some of the fundamentalists among so called *Hindus* and like wise their counterpart among Christians and Muslims for ignorance or self interests are creating wall between fellow countryman. Although, they are in miracle minicule, yet very vocal are playing in the hands of self centrered politicians. They have created a ghost of *Hindutva*. The vast majority is passive. Socially and economically all communities are closely integrated in their day to day life. Proper inter religion dialogue and education can help to Knit-India.

* Devlok, New Palasia
Indore - 452 001 (M.P.)

Received - 01.07.01

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

WE HAVE TO MAKE THE DIFFERENCE

■ Rajmal Jain *

It has been since long and consistently deliberated, emphasized and described, based on our enriched epics, and speeches of our last Tīrthankara Vardhamāna Mahāvīra, by many individual Jaina saints, intellectuals, and scholars that Jainism is a Scientific Religion. Jainism has well-established scientific theories/models and explanation of almost all aspects of substance, life and nature that varying from microscoping to macroscopic scales. However, surprisingly, in spite of such strong scientific potentiality this religion has never been recognised by the scientific community of our own country as well as international. On the other hand, all basic facts realized all over the world have been simply taken from Jainism. For example, purity of drinking water is of utmost importance for the health has been mentioned since the inception of Jainism, from the era of first Tīrthankara Ṛṣabhadeva, a few millions of years back. But this truth was never realized on a global scale until recently, a few tens of years back only, when a few US and European scientists, and then later UNICEF mentioned. Now, many gadgets have been discovered to provide the filtered and processed water. Truely speaking, with the new and new inventions and research, and according changing technology at a very high pace, we really do not know whether these new gadgets are safe for our health. Perhaps, not at all in context to Jainism.

It is true that Jagdish Chandra Basu discovered the existence of life cycle in the plants, and it was never mentioned in the epics and literature of Jainism? Perhaps, even today, scientific community does not know the detailed and quantitative scientific knowledge about the various living being, which is mentioned in Jaina epics. Since last few years the international scientists taking the lead have talked a lot about the environment throughout the world that this subject is a new initiative of them, while the fact is that the environment is a fundamental concept of Jainism. The environment, according to Jainism, is not simply composed of five constituents but it needs to be understood on a larger aspect in context to the universe. It is great unfortunate on the Jainism that environmentalists even do not mention the Jainism instead of giving credibility to it. In this context, may I remind the **Montreal Agreement** on the Pollution Control? I think that during this agreement recognition to Jainism was far remote rather it was not even

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

referred. More recently, genetic scientists from all over the world in general and from Italy, in particular, are talking and giving demonstration of Clones - a new approach of production of the life, without acknowledging the epics of Jainism where scientific aspects of this methodology have been explicitly described. The cloning technique is known in Jainism since thousands of years ago, and perhaps the initial life began through this approach only.

Well, on the other day, when I was taking the stock of current status of Jainism in context to its insignificant recognition in the present scientific knowledge, I loudly thought where and when we missed the bus? I concluded it is not only a fault of international scientific community alone rather major fault comes on our shoulders. In fact, we never made honest, humble and dedicated efforts of presenting and demonstrating our basic and fundamental scientific concepts to the world community neither in the past nor in recent last few decades. This task was neither carried out by our religious scholars/intellectuals nor by saints. Moreover, in last few decades and even until now, we never planned an appropriate strategy for an extensive research on our literature in a modern way and interaction with the global scientific community. Jainism is at a very critical edge, and we all have to make the difference. I believe this task has to be governed at two levels. Firstly, by a few saints or scholars who himself have wide and extensively depth of knowledge in Jainism, and able to express it not only in Hindi and other Indian languages but also in English. Secondly, full time and dedicated involvement of a few young and other scholars/intellectuals of different scientific disciplines capable in conducting scientific research on the Jaina literatures. The first level action may help in popularizing the Jainism in general and thereby generating overall awareness in the international community. On the other hand, the second level action may help in bringing the Jainism in the main stream of scientific research and thereby opening the new vistas of interacting with international scientific community. I believe these two parallel attempts may help in the recognition of the Jainism. However, the simple question may arise why I propose these initiatives at this stage. I reply as follows -

I am a space physicist but I have a strong belief on many scientific concepts of Jainism. In this context, though short of time but I am trying to understand the continuous interaction of living beings with the universe. Whether such a process of interaction is going on? If yes, at what scale of time and magnitude? In this connection I choose my research field or

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Karma. I am trying to generate a scientific model that may explain the various aspects of Karmic interaction. Incidentally, I got a wonderful opportunity to present my research work at an International Conference on 'Scienes in Jainism'. It was held at Pratapgarh (Raj.) during Oct. 11 - 14, 2002 under the kind guidance and supervision of great scientist **Acharya Ratna 108 Shri Kanaknandi Gurudev.** It was participated by more than 50 scholars of various disciplines. Without going into the preamble or details of the conference, I mention a specific event that motivated me to write this article. I gave a suggestion at the end of the presentation of a scholar - 'we should not put our emphasis on those areas or issues, which have been now well understood in modern science, while our aim should be to highlight those gray areas where science has not yet arrived fully or partially and the intervention of our religion may improve present understanding.' In this context, I requested Gurudev to briefly describe such thrust areas where we can undertake detailed investigation, which may contribute to science signigicantly.

I am truely overwhelmed with the depth of knowledge in Jainism and its understanding in scientific perspective. Perhaps it is the reason he is widely known as a Scientific Saint. Considering my comment very seriously, Gurudev, recently, prepared a document and sent me where he has kindly suggested many potential research areas as follows. I would strongly recommend you to give a loud thought on thses suggestions, however without biasing to present knowledge in any scietific discipline. I also feel this is another wonderful opportunity provided by Gurudev, and if not used with a fully defined strategy and potentiality, we may miss the Bus again.

1. The genetic science and engineering is at the edge and presently not able to explain the thrust issues based on the theory of the cells information and decay, and DNA or genes. I believe introduction of Karmaṇu in the space and their interaction with Kārmic body may perhaps reply many unanswered questions to the modern genetic science. However, it needs to adopt Jaina model and conduct vast investigation.
2. The medical science is not getting success in searching the treatment/therapy of many diseases. In fact, the fundamental concept to define the living organism and the human body itself is wrong. A serious rework is required in context to definition of human body in preview to Jaina model where it as a composite structure of five distinct bodies including tejas and kārmic bodies.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

3. With regard to formation of the universe in general and solar system in particular many concepts/theories have been developed over the time but none of them is found successful so far. Present astrophysical knowledge is not sufficient for true understanding of the universe or to get quantitative reply for its age, structure, area and volume. We have discovered many stars, planets, satellites in our solar system and different galaxies, and more recently black holes, pulsars, quasars, which in fact have already been well defined and described in Jainism. Jaina model of the universe is perhaps one of the richest in the world in its scientific and quantitative understanding. However, scientists need a fresh look without any biasing on this model and organise brain-storming sessions.

4. According to Jainism the whole universe is fully packed with 23 physical karma vargaṇa (class/variety) and 5 extremly minute (not visible with currently available most high-tech microscopes) static/immobile living organism, perhaps *Ekendriya* - virus. This concept is most striking one in preview to search life in the solar system or in the universe. More interestingly, we all and every living organism remain in continuous interaction with these species. This concept needs immediate attraction of modern space biologists, astrophysicists and genetic scientists.

5. Many other facts like the speed of light measured and presented by modern science is about 0.3 million Km. per second, which has been criticized by Jainism. In Jaina model it is different in different parts of space/universe. This fact is not understood because science has not yet discovered the smallest atom that cannot be further divided, which however has been well demonstrated in Jainism. The science has not yet opened the discussion on the preliminary definitions described in Jainism, which consider earth, water and air itself as living organisms.

I strongly believe that united humble efforts are required to explore potentiality in Jainism and how it may contribute to science significantly.

* Senior Scientist - Physical Research Laboratory
Navrangpura, Ahmedabad - 380-009 INDIA

Received - 01.02.03

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

JAINA SCHOLARSHIP : DECLINE OR GROWTH

■ N. L. Jain *

'Jaina Spirit' (2001) have published two articles of an Edinburgh Professor regarding 'Self critical tradition of Jaina scripture and declining level of the current Jaina scholarship'. These articles lead us to infer what the western scholarship thinks about us and what we should do to improve our image in the western academic world. The author has called the short and long commentaries of scriptures as self-critical rather than seriously analytical explanatories. This literature has been composed by monk-scholars. According to him, the Jainas were aristocrates, kings and warriors up to the 14th century and the monks composed literature on monastic conduct or encouraging to move one on this side. After this period, the Jainas became businessman and direction of new literature changed towards the laity. However, the literature calls for idealized life and, therefore, totally impractical in many respects. This description seems to be based prominently on *Śvetāmbara* literature. However, the statement of the author is not true as *Triloka-prajñapti* has given the number of laymen and women in the period of each *Tīrthankara* in terms of lacs. It consisted of a very small number of aristocrates, about 99% belonged to different classes. How could the *Tīrthankara* leave them without proper direction? That is why, the primary text of *'Upāśakadaśa'* describes the laity conduct prominently. Other *Śvetāmbara* primary texts also have described the practices and vows of the laity. Of course, it might be possible that there may not be independent texts on this subject. However, the *Digambaras* do have the texts on the conduct of the laity by *Ācārya* Samantabhadra (2nd century A.D.). It has been translated in English as *'Mānava Dharma'*. Later many books on the conduct of the laity have been composed and their compendium is published from *Jīvarāja Granthamāla*, Sholapur.

The author has stated that in medieval age, Pt. Aashadhara in 13th century and Pt. Banarasidas and Pt. Todarmala composed some literature, (though Pandit Prabhachandra, later *Ācārya*) was also there. While stating the name of Pt. Kailash Chandra Shastri, he has stated that the *pāthaśāla*-trained *Digambara pandits* have done creditable work in the last 100 years. However, it could not be credited by the west because it was in Hindi. Moreover,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Digambara study has been woefully neglected in comparison to the *Śvetāmbars*. Nevertheless, the *Digambara Pandits* have shown a sholarship like the western scholarship without being influenced by the western opinions. They showed the critical and independent thinking. However, there are many questions (like the authorship of *Taṭṭvārtha Sūtra* and *Bhaktāmara Stotra*) which cannot be properly solved due to sectarianism. With this point in view, the westeners should study Jaina literature seriously as they also face the difficulty of language in many of which it is written. Nevertheless, the west aggress two authorities for the Jainas : (1) Sacred cannons and (2) Logic. Though the earlier should correspond with logic, but that is the supreme authority.

The author has stated that it is very necessary to enrich intellectualism for maintaining prestige of the Jaina system. The current status of Jainism is based on ancient intellectual literature. He seems to admit that the current Jaina scholarship is not equivalent to earlier saints and as a result he has expressed his intense disappointment at the declining intellectual level of current Jaina scholarship. To improve this state of affairs, he has hoped and suggested to have a full-fledged center in London with independent financial status. While indicating this point, he has praised the scholarship of Muni Jambuvijayji, Punyavijayji, and Jinavijayji alongwith Pt. Sukhalalji, Bechardasji and Malavaniaji. However, there is not a single name of any equivalent *Digambara* scholars. It shows the ignorance about *Digambara* Jainism in the west. However, the *Digambars* did have president-award-winner Dr. Darbarilal Kothia, Pt. Jyoti Prasad and *Ācārya Jnansagarji in the past and do have Ācārya* Vidyasagarji, *Gaṇini* Jnanamatiji, *Āryikā* Visuddhamatiji, President-award-winner Dr. Rajaram, Pt. Padamchand Shastri, Pt. Shivcharanlal, Dr. N.L. Jain, Dr. Udaichand Jain (Prakrit epic author) and others at present. Of course, the present scholarship is based on specified subject rather than general. This tendency has developed since the days of *Ārya-rakshiat's Anuyog* (exposition) concept. Among the *Śvetāmbaras* also, we have super-scholars like *Ācārya* Mahaprajna and scholars Dr. M. A. Dhaky, Dr. Sagarmal Jain and many monk-scholars. Assumption of their scholarship as a declining phase is misleading. It is suggested that the author should rectify his opinion in view of all the above informations.

However, the author has stated in his articles that neither proper Digambara literature is available, nor any *Digambara* scholar to inform them in their lands. He has, further, indicated that the current scholarship seems to have become limited to charishma and oratory, which is not accepted as scholarship

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

n the west. Nevertheless, the Jainas should ponderover this remark and try o improve their image in the west.

This abridged summery of these articles leads us to take care. The ollowing points to encourage familiarity, studies and research on *Digambara* Jainism in the west :

1. There is high density of ignorence about *Digambara* Jainism in the west.
2. The reasons are
   (i) Non-availibility of proper *Digambara* literature in English.
   (ii) Non-participation of *Digambara* scholars in related academic conferences abroad because of financial difficulties.
3. Almost all the scriptural texts of *Śvetāmbaras* has been translated in English and other foreign languages, and have reached the western scholars. Unfortunately, none of the pro-canonical *Digambara* texts like *Ṣat-khaṇḍā-gama, Kaṣaya-pāhuda, Mūlācāra, Bhagavatī Ārādhanā* still remain untranslated (of course, Kundakunda texts are exception). It is stated, it took about 100 years to get the first two books from the matha translation and publication. Does it mean that the *Digambara* community will have the same inertia in this century? Once, I requested a *Digambara Jaināċārya* to initiate this project for global promotion of Jainism along with a model book published from *Jaina Viśva Bharati*, Ladnun. But it seems he showed the same mentality which has been stated by a western scholar that the *Digambaras* developed the concept of the loss of Mahavīran canons lest the people may not read their works! Of course, this is not correct, but it is a sleep satire. In view of all this, I would suggest the *Digambara* institutions and Jaina philanthropists to initiate the translation project, and try to make this available to the west as early as possible. This author is doing his best to send available literature there (upto the tune of Rs. Three lacs) and trying to translate *Dhavalā, Rājavārtika* etc. without any encouragement from any corner.
4. It is also necessary that *Digambara* scholars should be sent in related international conferences who could present different aspects of *Digambara* Jainism.
5. Currently, many *Digambara* monks have encouraged many multi-dimensional and multi-crore projects which are under comments from the intelligentia. However, they may be requested to initiate the above project also in view of the global promotion of *Digambara* Jainism. In *Śvetāmbara*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

consecration ceremonies, the 15% of the income is set apart for academic and literary purposes. It is possible that *Digambara* monks may encourage the community to utilize at least 10% of this type of amount. If we presume 100 such functions every year with the average income of five lacs each, it will bring about Rs. 50 lacs for this purpose.

This author has indicated this point in his article in Jaina Gazette, Oct. 2000. These two articles confirm the ideas presented therein. The article suggested a scheme also. But, Digambaras are after all *Digambaras* - flying in upward direction or staying above the ground realities. Dr. Dundas states that Jainism is inward-looking and individualistic. Why it should care for what others say about it? However, an example of R. P. Jain of Delhi has come to me who encouraged an US scholar to study *Digambara* Jainism. He has worked on *pūjās* of Dhyanatrai (द्यानतराय) in Jaipur (Mahavir Jayanti Smarika, 2001). However, it should be taken as an exception. Should we hope that our saintly and social network will take up lead in this direction.

* Director - Jain Centre, Rewa (M.P.)

Received - 10.09.01

विश्व संस्कृत सम्मेलन में जैन विद्याएँ

जुलाई के पूर्वार्द्ध में फिनलेंड की राजधानी हेल्सिंकी में सम्पन्न 12 वें विश्व संस्कृत सम्मेलन के जैन विद्याखंड में जैन केन्द्र, रीवा के संयोजक डॉ. एन. एल. जैन ने **'अनेकान्तवाद और संघर्ष समाधान'** तथा **'जैनों का वैज्ञानिक साहित्य'** विषय पर दो शोध पत्र प्रस्तुत किये जो बहुचर्चित रहे। यहीं जैन विश्वभारती, लाड़नूँ के डॉ. भट्टाचार्य ने भी **'जैन धर्म में नारी'** पर अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। इस खंड की तीन बैठकों में 8 देशों के विद्वानों ने 14 शोधपत्र प्रस्तुत किये जिनमें **'जैन रामायणों में जैन सिद्धान्त'** (बेल्जियम) तथा **'मुनि-आर्यिकाओं की आत्मकथाएँ'** विषय भी रोचक रहे। इस सत्र की संयोजक फ्रांस की डॉ. कैया थीं।

■ **डॉ. नन्दलाल जैन**
निदेशक - जैन सेन्टर, **रींवा**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

प्रगतिवादी जैन अध्येता
डॉ. नन्दलाल जैन

■ अनिलकुमार जैन *

आज जैन समाज में ऐसे विद्वान बहुत कम हैं जिन्होंने दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों आम्नायों के ग्रन्थों का समान रूप से अध्ययन तो किया है ही, साथ ही जैनेतर ग्रन्थों की समुचित जानकारी भी है तथा जिन्हें हिन्दी और अंग्रेजी भाषा पर तो समान अधिकार है ही साथ में संस्कृत भाषा का भी अच्छा ज्ञान है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त **डॉ. नन्दलाल जैन** एक ऐसे ही व्यक्तित्व हैं। लेकिन वे परम्परावादी विद्वानों से कुछ हटकर भी हैं क्योंकि कई मामलों में उनका अपना स्वतन्त्र चिन्तन एवं विचार हैं। चूंकि वे मूलत: विज्ञान से जुड़े हुए हैं, अत: उनकी विचारधारा में विज्ञान परक कई तथ्य भी सम्मिलित हुए हैं। इन सब कारणों से ही उन्हें परम्परावादी विद्वान कहने के बजाय प्रगतिवादी जैन अध्येता कहना ही अधिक उचित होगा।

डॉ. जैन अपने जीवन के अब तक 75 वसन्त देख चुके हैं। उनका जन्म 16 अप्रैल 1928 को मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले में हुआ था। उन्होंने कोडरमा तथा वाराणसी में रहकर जैन धर्म और दर्शन में शास्त्री एवं आचार्य की उपाधियाँ प्राप्त कीं। तत्पश्चात् उन्होंने रसायन विज्ञान में एम.एस-सी. की और ब्रिटेन से पीएच.डी. एवं अमेरिका से पोस्ट-डॉक्टरल प्रशिक्षण प्राप्त किया। वे मध्यप्रदेश शासन के उच्च शिक्षा विभाग में रसायन के व्याख्याता और आचार्य पद पर कार्य करते हुए सन् 1988 को सेवानिवृत्त हुए। इसके बाद से आप विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, दिल्ली की जैन दर्शन और विज्ञान सम्बन्धी तीन पुस्तकों का लेखन एवं अनुवाद योजनाओं में मानद 'परियोजना अन्वेषक' के रूप में कार्य करते रहे हैं।

धर्म और विज्ञान इनका रोचक विषय रहा है। इनका मानना है कि जैन दर्शन पूर्ण वैज्ञानिक है तथा यह वैज्ञानिक मनोवृत्ति को विकसित भी करता है। उन्होंने अपने इस पक्ष को अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सशक्त रूप से प्रस्तुत किया है। उन्होंने 'अन्तर्राष्ट्रीय जीव छेदन विरोधी परिषद', लन्दन (1962), 'असेम्बली ऑफ वर्ल्ड रिलीजन', सांफ्रांसिस्को (1988), 'विश्व धर्म संसद', शिकागो (1993), 'अन्त: विज्ञान इतिहास कांग्रेस', जर्मनी (1989), स्पेन (1993) तथा बेलिज्यम (1997) में जैन धर्म और दर्शन से सम्बन्धित शोध पत्र पढ़े हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने विदेश के अनेक जैन सेन्टरों में भी भाषण दिये हैं।

डॉ. जैन के अब तक सौ से अधिक शोधपत्र व लेख राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं तथा बीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी प्रमुख प्रकाशित पुस्तकों में 'जैन इन्टरनेशनल', अहमदाबाद से प्रकाशित *'Glossary of Jaina Terms'* (1995), पार्श्वनाथ विद्यापीठ. वाराणसी से प्रकाशित *"Scientific Contents in Prākṛta canons'* (1996), *'Jaina Karmology'* (1998), *'Biology in Jaina Treatise on Reals'* (1999) तथा *'The Jaina World of Non-living'* हैं। इनमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से कुछ के प्रकाशन में श्री दिगम्बर जैन समाज, चैन्नई तथा श्री प्रद्युम्न झवेरी, प्लेनो, टैक्सास (U.S.A.) का भी सहयोग रहा है। इनके अतिरिक्त निज-ज्ञान सागर शिक्षा कोश, सतना द्वारा प्रकाशित *'Jaina System in Nutshell'* (1993) तथा पोत्दार धार्मिक एवं पारमार्थिक न्यास, टीकमगढ़ द्वारा प्रकाशित 'सर्वोदयी जैन तंत्र' का अंग्रेजी अनुवाद का कार्य भी कर रहे हैं जिसका एक खण्ड अब प्रकाशनाधीन है। इनके इन कार्यों से वर्तमान पीढ़ी तथा आने वाली पीढ़ी निश्चित रूप से लाभान्वित होगी।

डॉ. जैन को अनेकों पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। रींवा में 'जैन केन्द्र' की स्थापना में तथा उसे बढ़ाने में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आप जैन विश्व भारती, लाड़नूं से भी जुड़े हुए हैं। डॉ. जैन ने विदेशों में भ्रमण करने के पश्चात यह महसूस किया कि वहाँ अधिकतर लोग या तो जैन धर्म के बारे में कुछ जानते ही नहीं हैं या फिर यहाँ जैन धर्म/दर्शन के बारे में अपूर्ण/त्रुटिपूर्ण जानकारी है। ये मानते हैं कि इसका मुख्य कारण विदेशों में जैन साहित्य का अभाव रहा है। इसी कारण आप प्रयत्नशील हैं कि विदेशों में जैन साहित्य को शीघ्र से शीघ्र पहुँचाया जाये और जहाँ तक हो वहाँ तक अंग्रेजी में साहित्य उपलब्ध कराया जाये।

डॉ. जैन से विभिन्न विषयों पर मेरी घंटों चर्चा हुई है। कई मुद्दों पर हम एक दूसरे से असहमत भी हुए हैं। अन्य कई जैन विद्वान भी विभिन्न विषयों पर उनसे मतभेद रखते हैं। लेकिन इससे उनकी दृढ़ता एवं विद्वत्ता ही झलकती है। विभिन्न विषयों में क्रोनोलोजिकल आर्डर में जैन आगम में वर्णित सिद्धान्तों पर उनकी गहरी पकड़ है। आप अपनी बात को तर्क एवं प्रमाण के आधार पर प्रस्तुत करते हैं। जैन समाज को ऐसे अध्येता की विद्वत्ता एवं क्षमता का भरपूर लाभ उठाना चाहिये।

हम डॉ. जैन के दीर्घायु की कामना करते हैं जिससे हम उनके ज्ञान का एवं अनुभवों का निरन्तर लाभ प्राप्त रहें।

* प्रबन्धक - तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग
बी - 26, सूर्यनारायण सोसायटी,
साबरमती, अहमदाबाद - 380 005

प्राप्त - 17.03.03

(हीरक जयन्ती - 16 अप्रैल 2003 के अवसर पर कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की ओर से हार्दिक बधाई। अर्हत् वचन के **15** (1-2), जनवरी-जून 03 अंक को पूर्व प्रकाशित सामग्री की वर्गीकृत सूचियों के विशेषांक के रूप में प्रकाशित किये जाने के कारण इस परिचय को विलम्ब से प्रकाशित किया जा रहा है। **- सम्पादक)**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

ज्ञानोदय फाउन्डेशन एवं ज्ञानोदय पुरस्कार

समर्पण समारोह - इन्दौर, 3 मई 2003

■ सूरजमल बोबरा *

स्व. श्रीमती शांतादेवी रतनलाल बोबरा की स्मृति में स्थापित ज्ञानोदय फाउन्डेशन द्वारा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के मार्गदर्शन में प्रवर्तित ज्ञानोदय पुरस्कार की स्थापना जैन इतिहास के क्षेत्र में मौलिक शोध कार्यों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से 1998 में की गई थी। इस पुरस्कार के अन्तर्गत वर्तमान में जैन इतिहास के क्षेत्र में चयनित कृति के लेखक को रु. 11,000.00 की नगद राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति से सम्मानित किया जाता है। अब तक निम्नांकित विद्वानों को उनकी विशिष्ट कृतियों हेतु सम्मानित किया जा चुका है।

1998 **डॉ. शैलेन्द्र रस्तोगी, लखनऊ (उ.प्र.)**
पूर्व निदेशक - रामकथा संग्रहालय, फैजाबाद
'जैनधर्म कला प्राण ऋषभदेव और उनके अभिलेखीय साक्ष्य'

1999 **प्रो. हम्पा नागराजय्या, बैंगलोर (कर्नाटक)**
वरिष्ठ इतिहासकार
'A History of Rāṣtrakūtās of Malkheda and Jainism'.

2000 **डॉ. अभयप्रकाश जैन, ग्वालियर (म.प्र.)**
बहुश्रुत लेखक एवं शोधक
'स्तूपों की जैन परम्परा और उनके स्थापत्य'

2001 **श्री सदानन्द अग्रवाल, मेण्डा (ओड़ीसा)**
समर्पित शोधक विद्वान
'श्री खारवेल'

आगामी पंक्तियों में हम ज्ञानोदय फाउन्डेशन, पुरस्कार समर्पण समारोह एवं सद्य: पुरस्कृत दोनों कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

ज्ञानोदय फाउन्डेशन

भारतीय इतिहास के निर्माण में इतिहासकारों को बहुत लम्बे समय तक केवल साहित्य पर अवलम्बित रहना पड़ा किन्तु इस क्षेत्र में बड़ी क्रांति तब हुई जब देश के विभिन्न भागों में बिखरे हुए शिलालेखों, ताम्रपत्रों और मुद्राओं आदि के रूप में पुरातत्व विषयक सामग्री उपलब्ध हुई।

भारत से जुड़े विदेशी साहित्य की जानकारी प्राप्त हुई। इन सबके प्रभाव से भारतीय इतिहास के क्षेत्र में एक व्यवस्था आ गई। अनेक विस्मृत कड़ियाँ जुड़ गई। नए - नए राजा महाराजाओं और राजवंशों का पता चला और इन सबसे बड़ी उपलब्धि यह हुई कि इतिहास के प्राणभूत कालक्रम का सुदृढ़ आधार प्राप्त हो गया। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त, दस शताब्दी तक अज्ञात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहने के पश्चात पहचाने जाने लगे। अशोक के परिवार का हंता रूप हटकर मानवीय रूप सामने आया। जैन साहित्य में कलिंग नरेश महाराज खारवेल का कहीं नामोनिशान नहीं पाया जाता था किन्तु हाथी गुम्फा (उदयगिरी) के लेख (ई.पू. दूसरी सदी) के मिलने के पश्चात इस परम्परागत जैन वंश का पता चला।

चन्द्रगुप्त, भद्रबाहु और चाणक्य का आपसी लगाव जैन आधारित मौर्य साम्राज्य की शक्ति थी, ऐसे अनेकों उदाहरण हमारे सामने आये हैं किन्तु जैनों का यह सच कि जैन धर्म अनंत काल से चला आ रहा है, इसके प्रमाण अभी एकत्रित होना शेष हैं। अभी भी कई कड़ियाँ टूटी हुई हैं, इन्हें प्रामाणिक रूप से जोड़ना आवश्यक है। इसकी पूर्ति हुए बिना बहुत से जैन कथानक संदेह के दायरे में बने रहेंगे। भगवान महावीर का जन्मस्थान कुंडलपुर से हटकर वैशाली चला जायेगा। ऐसे अनेकों प्रकरण हैं जो हमारे गौरव पर आघात कर रहे हैं। वे यह मांग कर रहे हैं कि हम हमारे इतिहास की लुप्त परम्पराओं को ढूंढें। इसी विचार से ज्ञानोदय फाउन्डेशन की स्थापना की गई और कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के नेतृत्व में इतिहास के खोजियों को सम्मानित करने की परम्परा प्रारम्भ हुई। **'ज्ञानोदय पुरस्कार'** का आयोजन इसका एक अंग है। स्वाध्यायी, शिक्षक और विद्यार्थी सबका हार्दिक स्वागत है, इस योजना में भाग लेने के लिये साथ ही अन्य मौलिक सुझावों को देने के लिये।

ज्ञानोदय पुरस्कार समर्पण समारोह

प्रदेश के प्रतिष्ठित होलकर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय के प्राचार्य **प्रो. नरेन्द्र धाकड़** के मुख्य आतिथ्य तथा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के अध्यक्ष **श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल** की अध्यक्षता में ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, सुदामानगर - इन्दौर के भव्य मंच पर **आचार्य श्री अभिनन्दनसागरजी महाराज** के मंगल सान्निध्य में दिनांक 3 मई 2003 को रात्रि 8.00 बजे ज्ञानोदय पुरस्कार समर्पण समारोह सम्पन्न हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समारोह में जहाँ मुख्य अतिथि ने ज्ञानपीठ के श्रेष्ठ कार्यों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की वहीं पुरस्कृत विद्वानों ने पुरस्कार प्राप्ति के उपरान्त जैन इतिहास के क्षेत्र में और अधिक समर्पित भाव से कार्य करने का संकल्प व्यक्त किया।

स्तूपों की जैन परम्परा
और
स्थापत्य

डॉ. अभयप्रकाश जैन

— प्रकाशक —
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर
ज्ञानोदय फाउन्डेशन, इन्दौर

'स्तूपों की जैन परम्परा और स्थापत्य'

'स्तूप' भारतीय भवन निर्माण की प्राचीनतम विधा कही जा सकती है। जैन पुराणों में 'घंटाकार' रूप में ऋषभदेव की स्मृति को रूपाकार में भरत द्वारा बदलते दर्शाया गया है। संभवत: कैलाश पर्वत का आकार इसका मूल प्रेरणा केन्द्र रहा हो। कालान्तर में भवन शिल्प का यह प्रकार किस रूप में मुनष्य की स्मृति में रहा इसे क्रमबद्ध करना कठिन है किन्तु गोलाकार पूजास्थलों के वर्णन जैन व अजैन संदर्भों में बहुतायत से मिलते हैं। तीर्थंकरों के सभास्थलों (समवशरण) में स्तूपों का अस्तित्व था। इतिहास के संकेत हैं कि सर्वप्रथम जैन, फिर वैदिक और फिर बौद्धावलम्बियों ने इसे (स्तूप निर्माण को) अपनाया। समय के प्रवाह में इस क्रम में उलटफेर हो गया और जैन स्तूपों पर व्यवस्थित सामग्री जैन संघ के पास नहीं रही। अब समय बदला है और 'जैन गौरव' को स्थापित करने का प्रयास सब तरफ बढ़ा है।

इतिहास के शोद्यार्थी डॉ. अभयप्रकाश जैन ने स्तूपों की जैन परंपरा पर गहराई से विचार किया है और कई तथ्य उद्‌घाटित किए हैं। उन्होंने 'गंध-कुटी' को भी इस विचार के साथ जोड़ने का सुझाव दिया है। प्राचीन पौराणिक संदर्भों से चलकर मथुरा के जैन सुपार्श्वनाथ स्तूप के पार्श्वनाथ काल में भी अस्तित्व में होने का संदर्भ दिया है। देशभर में यत्र-तत्र फैले जैन स्तूपों का भी आपने तुलनात्मक अध्ययन किया है। कई संकेत ऐसे भी हैं जिसमें कई स्तूप अशोक द्वारा निर्मित कहे गये हैं किन्तु प्रमाण है कि वह स्तूप इससे भी पहले जैन परंपरा में निर्मित स्तूप के रूप में वहाँ मौजूद थे। डॉ. अभयप्रकाश जैन का यह शोध प्रबंध जैन इतिहास को उसके प्राचीनतम समय से जोड़ने में सहायक होगा।

स्तूपों पर किया गया यह शोध कार्य इस बात का भी मूल्यांकन करेगा कि वास्तव में अशोक मूलत: जैन था। वह परिवार हंता नहीं सहृदय पुरुषार्थी था। पालीग्रंथों के अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णनों को प्रमाणों से कसा जाना संभव हो सकेगा। पुरानी कुछ किंवदंतियाँ हैं कि मूर्तियों और शास्त्रों को सुरक्षित रखने के लिए स्तूप बनाए जाते थे। हो सकता है किसी दिन इसका प्रमाण मिल जाए तो जैन इतिहास अधिक पारदर्शी हो जाएगा। 'धर्मचक्र' और 'स्तूप' का संबंध भी दृष्टिंगत होता है किन्तु इस हेतु भी हमें स्तूपों के निकट तो जाना ही पड़ेगा। इसी भावना के साथ डॉ. अभयप्रकाश जैन के आलेख **'स्तूपों की जैन परंपरा एवम् स्थापत्य'** को ज्ञानोदय पुरस्कार - 2000 हेतु चयनित किया गया है।

संपर्क : डॉ. अभयप्रकाश जैन, एन - 14, चेतकपुरी, ग्वालियर - 474 009

'श्री खारवेल'

(भारतीय इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय)

श्री सदानंद अग्रवाल, मेन्डा (बालनगिर) ने गहन अध्ययन, इतिहास की पारदर्शीदृष्टि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्राह्मी लिपि पर अधिकार पूर्ण पकड़ के कारण अपनी कृति 'श्री खारवेल' पुस्तक द्वारा न केवल जैन इतिहास वरन् भारतीय इतिहास के एक ऐसे स्वर्णिम* अध्याय को अनावृत्त किया है जो भारतीय नरेशों के चरित्र, ज्ञान और जन कार्यों में गहरी रूचि को उजागर करता है। उदयगिरि (उड़ीसा) की 'हाथीगुंफा' की शिला पर पहली शताब्दी ई. पूर्व का ब्राह्मी लिपि में अंकित अभिलेख महामेघवाहन वंश के ज्योतिपुंज खारवेल के व्यक्तित्व व चरित्र पर प्रकाश डालता है व जैन परंपराओं को महावीर कलिंग और मगध से जोड़ता है। इस खुदे हुए आलेख का जैसे-जैसे अधिक सही वाचन व विवेचन होने लगा है - जैन इतिहास पर छाई धुंध साफ होने लगी है। इस कार्य में श्री अग्रवाल का योगदान ऐतिहासिक महत्व का है। उन्होंने अपने ब्राह्मी लिपि के ज्ञान का सही उपयोग किया है व जनहित में उसे प्रसारित किया है। श्री सदानंद अग्रवाल से पहले भी उदयगिरि की गुफाओं में अंकित इन खुदे हुए आलेखों को कई विद्वानों ने पढ़ा और उन पर खोज की थी। सर्वप्रथम श्री ए. स्टर्लिंग ने इसे सन् 1820 ई. में पढ़ा और इसका प्रकाशन किया। बाद में भी कई विद्वानों ने इस पर अध्ययन किया किन्तु कई विवादों ने जन्म ले लिया।

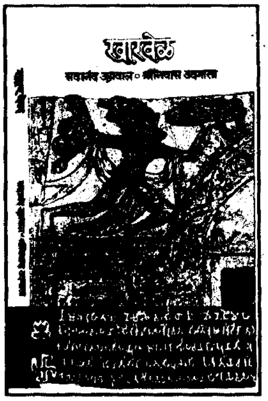

श्री सदानंद अग्रवाल ने पूर्व के अध्ययन का सम्यक विश्लेषण कर इस अभिलेख का पुनः वाचन कर उसे लिखा और 1993 में ''श्री खारवेल'' पुस्तक में प्रकाशित किया - जिसे विद्वानों ने सराहा और इस हेतु उन्हें अभिनन्दित किया। यह पुस्तक अब तक उड़िया, हिन्दी व अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुकी है। यह खारवेल के चरित्र व ब्राह्मी लिपि पर प्रामाणिक दस्तावेज है। कटक जैन समाज द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक वहाँ के जैन समाज की जागरूकता का भी प्रमाण है। भारत के सब जैन समाज यदि कटक जैन समाज से प्रेरणा लेकर जैन इतिहास के संरक्षण में इसी प्रकार भागीदारी करने लगें तो जैन परंपराएँ तो अधिक पारदर्शी रूप में सामने आने ही लगेगीं किन्तु भारतीय इतिहास भी पूर्वाग्रह पूर्ण इतिहास होने के लांछन से मुक्त हो जाएगा। ज्ञानोदय पुरस्कार मूल्यांकन समिति ने इसी भावना से श्री सदानंद अग्रवाल की कृति 'श्री खारवेल' का ज्ञानोदय पुरस्कार - 2001 हेतु चयन किया है।

संपर्क : श्री सदानंद अग्रवाल, मेंडा (जिला सुवर्णपुर, उड़ीसा) पिन - 767063

* निदेशक - ज्ञानोदय फाउन्डेशन, 9/2, स्नेहलतागंज, **इन्दौर** - 452 003

तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास एवं संरक्षण प्राथमिकता के आधार पर किया जाना चाहिये।

- गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

महाश्रमण महावीर : एक कालजयी दस्तावेज

■ सूरजमल बोबरा *

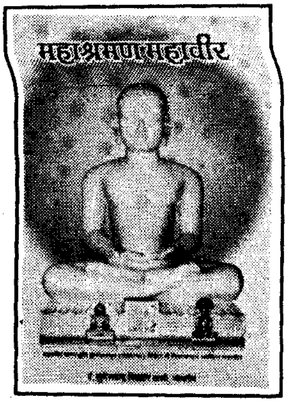

नाम	:	महाश्रमण महावीर
लेखक	:	पं. सुमेरूचन्द्रजी दिवाकर
प्रकाशक	:	दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर, भगवान महावीर 2600 वाँ जन्म कल्याणक महोत्सव प्रचार समिति, हस्तिनापुर (मेरठ), एवं तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ
प्रकाशन वर्ष/संस्करण	:	2003, द्वितीय
पृष्ठ संख्या	:	338 (आमुख पृष्ठों के अतिरिक्त)
मूल्य	:	रु. 250.00
समीक्षक	:	सूरजमल बोबरा, निदेशक - ज्ञानोदय फाउन्डेशन, 9/2, स्नेहलतागंज, इन्दौर - 452003

महावीर को समझने के लिए पं. सुमेरूचंद्रजी दिवाकर ने दो मुंहवाली दूरबीन का उपयोग किया है। उसका एक मुंह केन्द्रित है महावीर रूप में अवतरित होने के पूर्व महावीर की आत्मा पर और दूसरा मुंह उस आत्मा के आसाढ़ वदी 6 को महावीर रूप में जन्म लेने के लिए गर्भ में आने से लेकर उनके कार्तिक वदी 30 को मोक्षगामी होने तक केन्द्रित है। महावीर की आत्मा के पूर्व के रूप में सात परम स्थानों की यात्रा को बहुत ही सारगर्भित रूप में पृष्ठ 103 पर संजोया गया है। उन्होंने लिखा है। 'हम देखते हैं कि पुरूरवा भील के जीव ने जब से सच्चे धर्म की शरण ग्रहण किया है, तब से वह जीव उच्च कोटि के निरंतर वर्धमान सुखों को भोगता हुआ आंतरिक एवम् बाह्य उन्नति करता जा रहा है।'

इन सात परम स्थानों को महापुराण में स्पष्ट किया गया है कि 'सज्जातित्व, सदगृहिपना, परिव्राज्य मुनीन्द्रपना, सुरेन्द्रता, साम्राज्य, परम आर्हत्य और परम निर्वाण ये परम स्थान हैं।' (67 पर्व 38)

'अच्युत तथा अमर पद तो उसी समय प्राप्त होता है, जब वह चैतन्य मूर्ति आत्मा समस्त विभाव तथा विकार का परित्याग कर स्वाभाविक सिद्ध पर्याय को प्राप्त करता है, और जब वह अध्यात्म शास्त्र की भाषा में 'कार्य परमात्मा' बन जाता है।'

महावीर की आत्मा के पूर्व जन्मों का वृतांत केवल गल्प नहीं वरन श्रमण दर्शन के इस मूल तत्व पर आधारित है कि आत्मा कर्मों से बंधी है और जब तक कर्मों की पूर्ण निर्जरा न हो जाय मुक्ति संभव नहीं है। सात परम स्थानों की यात्रा वे पद चिन्ह हैं जो परम शांति का मार्ग बता रहे हैं। जो इन पूर्व भवों को काल्पनिक बताते हैं वे इन्हें दिवाकर जी की दूरबीन से देखें। जिस सरल सहज ढंग से दिवाकरजी ने इन वृतांतों को लिखा है कभी - कभी ऐसा लगता है मानो कोई सीरियल देख रहें हों। भील, पथ भ्रमित राजकुमार, देवत्व, अर्धचक्री का प्रभुत्व, मृगेन्द्र, सुरराज, नरेश, दिव्यात्मा, राजा, चक्रवर्ती, न्यायशील नंद, अच्युतेन्द्र सब में वही आत्मा भ्रमण कर रही है जो परम शांति के लिए समर्पित है। यह वह यात्रा वृतान्त हैं जो महावीर की आत्मा को वर्धमान बना रहे हैं।

दिवाकर जी की यह दूरबीन बड़ी शक्तिशाली है जो परिस्थितियों का माइक्रो विश्लेषण करती है किन्तु कभी भी श्रमण परंपरा से भटकती नहीं है। पृष्ठ 18 पर निर्ग्रन्थ परंपरा पर उनकी यह टिप्पणी कि 'निर्ग्रन्थ' श्रमण, व्रतदान तथा पवित्र उपदेश द्वारा जीवों का जितना सच्चा कल्याण करते हैं, उसका सहस्त्रांश भी बड़े - बड़े विद्या केन्द्रों आदि के द्वारा सम्पन्न नहीं होता।'

वर्तमान काल के भटके हुए शोधकार्यों पर दिवाकरजी की यह टिप्पणी अत्यंत महत्वपूर्ण है। जैन परंपरा के संदर्भों से भटके कोई भी शोध इतिहास के प्रतिकूल है। यह सदैव स्मरण रखना आवश्यक है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि भारत की भूमि ऐसी है कि जहाँ 10 - 15 हजार वर्ष पूर्व की परंपरा भी हृदय में जीवित है और पुराणों में भी जीवित है।

लोगों की आस्था इन पर टिकी है। ऋषभदेव के अष्टापद से निर्वाण को किसी शोध की जरूरत नहीं है। वह परंपरा और पुराणों में जीवित है। वैसी ही बात महावीर जन्म और निर्वाण के बारे में सत्य है। कुण्डलपुर (नालन्दा) एवं पावापुरी को बदलने के प्रयास बेमानी है। जैन विश्वास और जैन पुराणों की अनदेखी कर सच्चाई हमारे हाथों में नहीं आएगी।

महावीर के गर्भावतरण से लेकर निर्वाण तक की गाथा अलौकिक तो है किन्तु लौकिक आधार पर टिकी है। दिवाकर जी ने आमुख में पृष्ठ 20 पर एक अंग्रेज का वक्तव्य उद्धृत किया है कि 'मुझे महावीर का जीवन इसलिए प्रिय लगता है, कि वह मानव को परमात्मा बनने की शिक्षा देता है। उस में यह बात नहीं है कि महावीर की शिक्षा ईश्वर को महान ईश्वरत्व प्रदान करती है। यदि ऐसी बात नहीं होती तो मैं महावीर के जीवन चरित्र को स्पर्श भी नहीं करता, क्योंकि हम ईश्वर नहीं है, किन्तु मानव हैं।'

मनुष्य के अध्ययन के योग्य महान विषय मानव ही है। दिवाकर जी संभवत: इसी नजरिये से महावीर के जीवन को हमारे सामने उजागर कर रहे हैं। सरल भाषा में आगमों के सहारे महावीर चरित्र के पृष्ठ इस प्रकार खुलते हैं मानो दिवाकर जी उन घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शी थे। मैंने महावीर पर उपन्यास पढ़े हैं, शोध लेख पढ़ें हैं, अपनी - अपनी दृष्टि से महावीर का विश्लेषण पढ़ा है, किन्तु महावीर न उपन्यास का पात्र है और न जमीन में गड़ा कोई शिलालेख है और न कोई अजूबा है वह तो ऐसी आत्मा की यात्रा है जो वनवासी भील से लेकर कालजयी महावीर में प्रतिफलित हुई। यदि हमने इस यात्रा के संदर्भों को केवल आगम के बाहर ढूँढने का प्रयत्न किया तो निश्चित मानिए समस्त श्रमण परंपरा हमारे हाथ से फिसल जाएगी।

महावीर कोई बहुत पुराने नहीं है। इतिहास ने उन्हें कई जगह पहचाना है। बौद्ध और वैदिक संदर्भों ने तो उनके बारे में बहुत कुछ जग जाहिर किया है किन्तु उन्होंने उसे अपने पूर्वाग्रहों से प्रेरित होकर भी लिखा है। अत: कोई भी निर्णय करने से पहले जैन संदर्भों को महत्व दिया जाना चाहिए।

पृष्ठ 211 पर मध्यम मार्ग पर दिवाकरजी ने जैन दर्शन का नवनीत भेंट किया है 'यदि बिना संकोच के सत्य को समक्ष रखा जाय तो कहना होगा कि जैन आचार जैन विचार आदि में मध्यम पथ ही बताया है। अनेकान्त तत्व ज्ञान क्या है?' एक दूसरे पर आक्रमण करने वाली दृष्टियों के अतिरेक को दूर कर मध्यस्थ तत्व को स्थापित करना ही अनेकान्त है। संयम के क्षेत्र में भी अतिरेक वाद को अग्राह्य कहा है।'

'इन्द्रियों पर नियंत्रण भी हो जाय तथा शरीर की यात्रा भी बराबर होती जाय, इस सम्बन्ध में संतुलन आवश्यक है।' शक्तित: त्याग - तपसी' सोलहकारण भावनाओं में कहा गया है। शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप योग्य है। इस तत्व को न जानने के कारण पूर्व तथा पश्चिम के लेखक प्राय: महावीर भगवान के मार्ग को उग्र तपस्या का पथ कहते हुए बुद्ध द्वारा प्रदर्शित पथ को मध्यम मार्ग कहते हैं।'

'महाश्रमण महावीर' के प्रत्येक पृष्ठ पर जैन दर्शन के सिद्धांत और उनके व्यवहार में प्रयोग में आने वाली प्रक्रिया पर सुमेरूचंद्र दिवाकर ने पांडित्य पूर्ण आगमिक दृष्टि से तो विचार किया ही है किन्तु जीवन से उसका निकट सम्बन्ध स्थापित किया है। उनके धर्म - दिवाकर हृदय ने जैन दर्शन के सुमेरू पर चढ़कर सहज - शांत - प्रगतिशील जीवन की चांदनी सुलभ कराई है।

महावीर के निर्वाण पर पंडितजी के शब्द ध्यान देने योग्य हैं - 'आज महावीर भगवान ने आध्यात्मिकता स्वाधीनता पाई' पृष्ठ 303 'यह पावापुरी महावीर की आध्यात्मिक समर भूमि हो गई, जहाँ उनका कर्मों के साथ घोर युद्ध हुआ। उन्होंने पहले पाप को पछाड़ा था, अब पुण्य प्रकृतियों को भी शुक्लध्यान रूप में अग्नि ने समाप्त कर दिया।'

मेरा निश्चित विश्वास है जरा भी पढ़ने को प्रवृत्त व्यक्ति यदि इस पुस्तक को पढ़ेगा तो समाप्त कर ही मानसिक विश्राम कर सकेगा।

इस सुन्दर पुस्तक को प्रस्तुत करने हेतु प्रकाशक दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान एवं तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ बधाई के पात्र हैं। पुस्तक के पुनर्प्रकाशन की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमतीजी के चरणों में शतश: नमन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

भगवान महावीर का बुनियादी चिन्तन

एक श्रेष्ठ लघु कृति

■ सरोज जैन *

नाम	:	भगवान महावीर का बुनियादी चिन्तन
लेखक	:	डॉ. जयकुमार 'जलज'
प्रकाशक	:	मध्यप्रदेश साहित्य परिषद, भोपाल
प्रकाशन वर्ष/संस्करण	:	2002, द्वितीय
पृष्ठ संख्या	:	24
मूल्य	:	रु. 13.50
समीक्षक	:	सरोज जैन, अध्यक्ष - हिन्दी विभाग, शास. कन्या महाविद्यालय, बीना (सागर)

'भगवान महावीर का बुनियादी चिन्तन' डॉ. जयकुमार जलज द्वारा लिखित चिंतन प्रधान पुस्तक है, जिसमें उन्होंने भगवान महावीर के उपदेशों/सिद्धान्तों का सरल भाषा में विवेचन किया है।

प्रस्तुत पुस्तक भगवान महावीर के सिद्धान्तों को समझने के अनेक आयाम हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। भगवान की तपस्या ने अनेक ऐसे बुनियादी सत्य हमारे समक्ष प्रस्तुत किये हैं जिनको समझने के लिये आइंस्टीन जैसे वैज्ञानिकों, बड़े - बड़े राजनीतिज्ञों ने अपना सम्पूर्ण जीवन त्याग दिया। उन्होंने बताया कि प्रत्येक पदार्थ/वस्तु/द्रव्य महान हैं। इसलिये चाहे वह जीव हो या अजीव उसके साथ हमें सम्मान से पेश आना चाहिये। महावीर सर्वज्ञ थे। डॉ. जलज के अनुसार - 'उनकी सर्वज्ञता का अर्थ है कि उसे जान गये थे जिसे जानने के बाद और कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता। इस ज्ञान से वे वस्तुओं के आपसी व्यवहार के उन मानकों को तय कर सके जिनसे मानवी व्यक्तित्व के विकास का द्वारा खुलता है। इसी ज्ञान से वे अनेकान्त, स्याद्वाद, अहिंसा, अपपरिग्रह आदि सत्यों को देख सके और इसी से मानव आचरण में सहिष्णुता एवं पर - सम्मान की भावना को रेखांकित कर सके।

वस्तु स्वरूप संबंधी महावीर की अवधारणा, जो उनके शिष्य आचार्यों द्वारा विवेचित की गई, का भी सार लेखक द्वारा प्रस्तुत पुस्तक के अन्तर्गत किया गया है। वस्तु की अनेक गुणधर्मिता, उनका सापेक्षतावाद का सिद्धान्त, वस्तु का उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त होना एवं उसकी स्वतंत्र व विराट् सत्ता का विवेचन भी पुस्तक में देखने को मिलता है। भगवान महावीर के इन सिद्धान्तों ने आइंस्टीन को एक दिशा दी, महात्मा गांधी को गति प्रदान की। डॉ. जलज के अनुसार - 'अनेक गुण, अनंत धर्म, उत्पाद - व्यय - ध्रौव्य युक्त स्वतंत्र स्वावलम्बी और विराट् जड़ - चेतन वस्तुओं के साथ हमारा सलूक क्या हो, यह महावीर की बुनियादी चिंता और उनके दर्शन का सार है।'

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित उपादान और निमित्त की विवेचना लेखक ने बड़े ही स्पष्ट और सारगर्भित रूप में की है। महावीर के अनुसार वस्तु स्वयं अपने विकास या ह्रास का मूल कारण या आधार साम्रगी या उपादान है। हर वस्तु खुद अपना उपादान है। सबको अपने पाँवों चलना है। कोई किसी दूसरे के लिये नहीं चल सकता अर्थात् कोई हमारा कितना ही बड़ा मददगार क्यों न हो, वह हमारे लिये उपादान नहीं बन सकता। दूसरों के लिये उपादान बनने की कोशिश एक प्रकार की हिंसा है। लेखक के अनुसार - 'आज हमारे घरों, संस्थानों, दफ्तरों में जो अशांति और विघटन है, उसका सबसे बड़ा कारण यही हिंसा है। मनुष्य अपने लिये उपादान और दूसरों के लिये निमित्त है।' प्रस्तुत पुस्तक में इस सिद्धान्त को काव्यमयी शैली में विवेचित करता हुआ लेखक कहता है -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंधेरे में
माचिस
तलाशता हुआ हाथ
अंधेरे में होते हुए भी
अंधेरे में नहीं होता।

दूसरों के लिये हमारी उपादान की शून्यता जहाँ हमें अहंकार से बचाती है वहीं दूसरों के लिये हमारी निमित्त की भूमिका हमें अपनी तुच्छता के बोध से भी बचा लेती है।

आज दुनिया जिन भयावह परिस्थितियों में जी रही है उसका मूल कारण हमारे द्वारा ओढ़ा गया मुखौटा है। मन-वचन और कर्म की एकरूपता के बिना जीवन को सहज ढंग से नहीं जिया जा सकता। आज जो नहीं है, वह मनुष्य दिखना चाहता है और जो है उसे छिपाना चाहता है। इसी छिपाने और ओढ़ने के प्रयास में मनुष्य का जीवन कष्टप्रद हो गया है। इस दुःख से बचने का उपाय रूप हमारे आचार्यों ने सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र की बात कही है और इसे ही मोक्ष का मार्ग बताया है। इसीलिये हमारी दृष्टि को इन तीनों के भेदत्व पर बनाये रखना है।

भगवान महावीर हर तरह के भेद-भाव, आडम्बर और कर्मकाण्ड के विरोधी थे और दूसरों की महत्ता के पक्षधर थे। डॉ. जलज के अनुसार 'वस्तु स्वरूप की सही समझ के कारण महावीर की दृष्टि में 'ही' नहीं 'भी' समाया हुआ है। वे चाहते हैं कि दूसरों के लिये हाशिया छोड़ा जाय। दूसरों के लिये हाशिया छोड़ना कायरता नहीं ऊँचे दर्जे की वीरता है। देश की रक्षा के लिये सम्यक्‌ज्ञान पूर्वक शत्रु का वध भी हिंसा नहीं है। हिंसा तो तब है जब उन्माद और अहंकार के वशीभूत होकर किसी के सुख या प्राणों का हरण किया जाय।' आलोच्य पुस्तक में डॉ. जलज ने आचार्यों द्वारा प्रणीत धर्म ग्रन्थों के सूत्र द्वारा इस बात की पुष्टि भी की है। महात्मा गांधी ने भी भगवान महावीर के इन्हीं सिद्धान्तों को अपने जीवन में अपनाया था। लेखक ने आज की भयावह समस्याओं का समाधान महावीर के इसी चिंतन में खोजा है। वे लिखते हैं - 'मनुष्य और पृथ्वी को बचाये रखने के लिये इन चुनौतियों का शांत, संयत और स्थायी मुकाबला महावीर को याद रखकर ही किया जा सकता है।'

भगवान महावीर के जन्म के वर्षों बाद क्या हम उनके विचारों और आचरण की ओर लौटने का प्रण करेंगे। अभी भी देर नहीं हुई है। गलत दिशा में हजार दो हजार मील तक चले आने के बाद भी सही दिशा पकड़ने के लिये हमें फिर हजार दो हजार मील नहीं चलना है। सिर्फ पलटना भर है और हम सही दिशा में होंगे। इसलिये कर्म का बंधन कितना ही कठिन हो, मुसीबत और बाधाएँ कितनी ही दुर्निवार हों, भगवान महावीर के मार्ग पर चलने की, उन्हीं की तरह मुक्त होने की कोशिश निरन्तर करनी चाहिये। लेखक ने इसी मन्तव्य को काव्यमयी शैली में प्रस्तुत किया है -

बहरी दिशाएँ हैं
शब्द घुटे जाते हैं
कौन हवा चलती है
सब लुटे जाते हैं
खुली इस हथेली पर
एक रतन और
रोशनी उगाने का
एक जतन और
अभी एक जतन और।

प्रस्तुत पुस्तक डॉ. जयकुमार जलज द्वारा सहज, सरल, सुबोध शैली में लिखी गई भगवान महावीर के बुनियादी चिंतन को विवेचित करती हुई सुधी अध्येताओं के लिये उपयोगी बन गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन शिक्षक सम्मेलन सम्पन्न

श्री मनोहरसिंह मेहता सम्बोधित करते हुए

"नैतिकता का पाठ पढ़ाने वाले शिक्षक पहले स्वयं का आचरण अच्छा रखें तभी छात्र संस्कारित होंगे। छात्रों को उत्तीर्ण कराने हेतु हिन्ट देने वाले शिक्षक कभी आदर्श शिक्षक नहीं होते।"

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा 14 जनवरी 2003 को आयोजित जैन शिक्षक सम्मेलन में प्रमुख अतिथि के रूप में बोलते हुए मध्यभारत के पूर्व शिक्षा मंत्री (87 वर्षीय) श्री मनोहरसिंह मेहता ने उक्त उद्‌गार व्यक्त किये। उन्होंने कहा कि शिक्षक की सही कसौटी छात्र ही होते हैं।

आयोजन के प्रमुख संयोजक प्रो.नरेन्द्र धाकड़ (प्राचार्य - होलकर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय) ने भी छात्रों के सर्वांगीण विकास हेतु शिक्षकों की अहम् भूमिका प्रतिपादित की। आयोजन के विशेष अतिथि देवी अहिल्या विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. भरत छापरवाल थे। प्रो. नलिन के. शास्त्री (कुलसचिव - इन्द्रप्रस्थ वि.वि. दिल्ली), प्रो. श्रेणिक बंडी, प्रो. एम.एल. कोठारी, प्रो. गणेश कावड़िया, प्रो. उदय जैन के अतिरिक्त डॉ. सरोज कोठारी, डॉ. संगीता मेहता डॉ. जयंतीलाल भंडारी एवं डॉ. प्रकाशचंद जैन ने भी सभा को संबोधित किया।

इसी अवसर पर संस्था के अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल की 84 वीं जन्मतिथि पर नगर के शिक्षकों की ओर से कुलपति डॉ. भरत छापरवाल ने एवं होलकर विज्ञान महाविद्यालय के पूर्व छात्र के नाते प्रो. नरेन्द्र धाकड़ (प्राचार्य), प्रो. श्रेणिक बंडी एवं डॉ. अनुपम जैन ने उनका शाल व स्मृति चिन्ह भेंट कर सम्मान किया। **ऐलक श्री निशंकसागरजी** ने उपस्थित शिक्षक-शिक्षिकाओं को आशीर्वचन दिये। सभा में बड़ी संख्या में नगर के जैन शिक्षक व शिक्षिकाएँ सम्मिलित हुए। सम्मेलन की अध्यक्षता प्रो. एस.सी. अग्रवाल (मेरठ) ने की। आपने कहा कि जैन शिक्षकों को आगे आकर प्रतिभाशाली शिक्षकों को मदद पहुँचानी चाहिये। इसकी शुरुआत जैन समाज के बच्चों से करना श्रेयस्कर होगा।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के मानद सचिव डॉ. अनुपम जैन ने कहा कि सम्मेलन का एक उद्देश्य जैन साहित्य के अध्ययन एवं अनुसंधान के कार्य को गति प्रदान कराना भी है। जो जैन अथवा जैनेत्तर शिक्षक जैन विद्याओं के अध्ययन एवं अनुसंधान के कार्य में रूचि रखते हैं उनको एक मंच पर लाकर वि.वि. द्वारा मान्य शोध निर्देशकों एवं शोधार्थियों को परस्पर विचार-विनिमय का माध्यम उपलब्ध कराना भी हमारा एक अभीष्ट है। इस सम्मेलन में प्रो. शास्त्री, प्रो. कोठारी, प्रो. उदय जैन, प्रो. कावड़िया, प्रो. दुबे आदि अनेक विद्वान प्राध्यापक उपस्थित हैं जो जैन विद्याओं पर अनुसंधान कराने में सक्षम हैं हमें इनके ज्ञान का उपयोग करना चाहिये।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ शोध केन्द्र से औपचारिक रूप में पंजीकृत होकर हिन्दी विषय में 'जैन रामायणों में राम का स्वरूप' विषय पर **प्रो. पुरुषोत्तम दुबे** के निर्देशन में पी-एच.डी. प्राप्त करने वाली **डॉ. अनुपमा छाजेड़** का सम्मान भी किया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी स्मृति व्याख्यान सम्पन्न

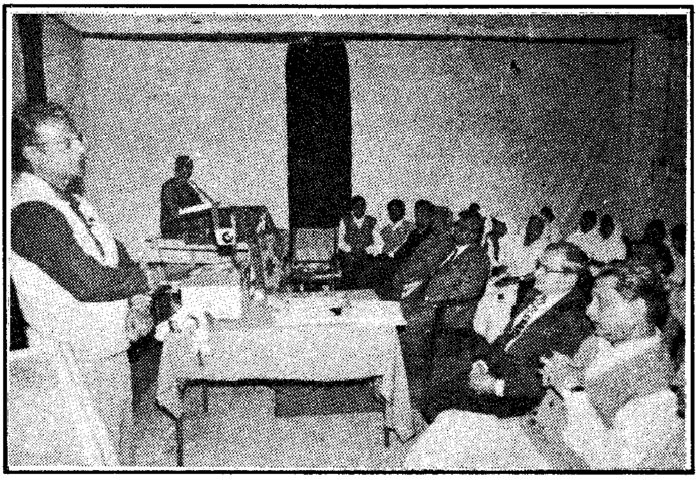

प्रो. बनर्जी सम्बोधित करते हुए

'देश के लगभग सभी क्षेत्रों में स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति हेतु पर्याप्त वर्षा होती है किन्तु हमारी लापरवाही एवं खराब जल प्रबन्धन के चलते देश के अनेक हिस्सों में जलाभाव महसूस किया जा रहा है साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की गुणवत्ता भी निरन्तर घट रही है। देश की 75% आबादी के निवास केन्द्रों अर्थात ग्रामों के विकास की कल्पना के बिना देश के विकास की कल्पना हास्यास्पद है। **हम गाँवों में बरसने वाले अमृत तुल्य वर्षा जल को जल प्रबन्धन के अभाव में यूँ ही बह जाने देते हैं और बड़े-बड़े बांध बनाकर पर्यावरण विनाश की भारी कीमत चुकाकर नहरों के माध्यम से पुन: वापस लाते हैं''** उक्त विचार विश्वविख्यात पर्यावरणविद् एवं वनस्पति विज्ञानी **प्रो. देवाशीष बेनर्जी** ने 14 जनवरी 2003 को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिसर में क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी स्मृति व्याख्यानमाला के अन्तर्गत चतुर्थ व्याख्यान देते हुए व्यक्त किये। उन्होंने बाबा आमटे ग्राम सशक्तीकरण केन्द्र तथा समाज प्रगति सहयोग संस्था बागली के माध्यम से किये गये कार्यों को प्रोजेक्टर के माध्यम से प्रदर्शित करते हुए यह स्थापित किया कि केवल वाटर रिचार्जिंग से कुछ नहीं होने वाला, हमें ग्राम को एक पारिस्थितिकी इकाई मानकर उस क्षेत्र की वनस्पतियों, कृषि, पशु-पक्षियों, वहां के निवासियों के समग्र विकास की योजना वैज्ञानिक रूप से तैयार करनी होगी। इसके लिए जैन आगमों में प्रतिपादित अहिंसा के सिद्धांत एवं पर्यावरण हितैषी जीवन शैली को मार्गदर्शक बनाना होगा।

कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रबंध अध्ययन संस्थान के निदेशक **प्रो. पी.एन. मिश्र** ने की एवं कहा कि इस व्याख्यान का वैशिष्ट्य यह है कि यह व्यावहारिक विषय को लेकर आयोजित किया गया है। पूर्व के विषय सैद्धांतिक थे। मुख्य अतिथि के रूप में पधारकर विश्वविद्यालय के कुलाधिसचिव **प्रो. सुधाकर भारती** ने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की बहुआयामी गतिविधियों की प्रशंसा की। ज्ञातव्य है कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ कला एवं विज्ञान संकाय के अन्तर्गत देवी अहिल्या वि.वि., इन्दौर का मान्य Ph.D. शोध केन्द्र है। विज्ञान संकाय के अन्तर्गत मान्य विषयों - प्राचीन भारतीय गणित एवं गणित इतिहास तथा पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी विज्ञान सम्मिलित हैं। इस अवसर पर चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ के गणित विभागाध्यक्ष **प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल**, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के मानद् निदेशक एवं पूर्व कुलपति **प्रो. अब्बासी**, पूर्व राजदूत **डॉ. एन.पी. जैन**, **प्रो. उदय जैन**, **प्रो. एस. के. भट्ट**, **प्रो. संगीता मेहता**, **प्रो. सरोज कोठारी**, **प्रो. कल्पना मेघावत** तथा नगर के अनेक वरिष्ठ समाजसेवी तथा पत्रकार उपस्थित थे। अतिथियों का स्वागत श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल एवं श्री चन्द्रकुमारसिंह कासलीवाल ने किया।

अन्त में पूज्य ऐलक श्री निशंकसागरजी महाराज ने क्षुल्लक श्री जिनेन्द्र वर्णी जी के अन्तरंग संस्मरणों को सुनाते हुए श्रद्धांजलि अर्पित की।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की अकादमिक गतिविधियों एवं शैक्षणिक उपलब्धियों का विस्तृत परिचय देते हुए सभा का संचालन डॉ. अनुपम जैन ने किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांडुलिपियों का संरक्षण संस्कृति को विकृति से बचाने के लिये अनिवार्य

■ **प्रो. गणेश कावड़िया**

पूज्य आचार्यश्री अभिनन्दनसागरजी महाराज के सान्निध्य में श्रुत पंचमी का विशेष आयोजन कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ एवं दिगम्बर जैन महासमिति मध्यांचल के संयुक्त तत्वावधान में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा प्रतिवर्षानुसार इस वर्ष भी 'कुन्दकुन्द व्याख्यानमाला' के अन्तर्गत **'संस्कृति संरक्षण, सामाजिक विकास एवं पांडुलिपियाँ'** विषय पर प्रबन्ध अध्ययन संस्थान के निदेशक **प्रो. पी. एन. मिश्र** की अध्यक्षता में **प्रो. गणेश कावड़िया,** अधिष्ठाता - समाज विज्ञान संकाय, देवी अहिल्या वि.वि., इन्दौर का व्याख्यान हुआ। उन्होंने अपने संबोधन में कहा कि हमारे देश की प्राचीन पांडुलिपियों को विदेश ले जाकर वहाँ अध्ययन एवं खोज होती है और वह उसमें से आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक तथ्य निकालकर विश्व के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। जबकि हम अपने ही प्राचीन शास्त्रों में भरे आध्यात्मिक ज्ञान एवं विज्ञान से अनभिज्ञ हैं। प्राचीन पांडुलिपियों का संरक्षण कर हम संस्कृति तथा समाज को नई दिशा प्रदान कर सकते हैं। हमारी संस्कृति में स्वाध्याय तप भी है और कर्म भी है। व्याख्यान का पूर्ण पाठ भी इसी अंक में पृ. 71 - 75 पर प्रकाशित किया जा रहा है।

व्याख्यानमाला की अध्यक्षता करते हुए प्रो. मिश्र ने कहा कि धर्म आंतरिक एवं बाह्य विकास की तकनीक है और शांति दोनों के संतुलन में है। हमारा प्राचीन साहित्य सुरक्षित होकर हमारे विकास का आधार बने, इस हेतु पांडुलिपि संरक्षण आवश्यक है। मुख्य अतिथि उद्योगपति **श्री नेमनाथ जैन** ने कहा कि सामाजिक सहयोग के अभाव में यह कार्य असंभव है। विश्व में भारत की पहचान का मुख्य आधार प्राचीन संस्कृति और साहित्य है, इसकी सुरक्षा हमारा कर्तव्य है।

कार्यक्रम का प्रारम्भ पं. रतनलालजी शास्त्री के मंगलाचरण से हुआ। दीप प्रजज्वलन श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल एवं अन्य अतिथियों ने किया। इस अवसर पर महासमिति के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल, प्रो. ए. ए. अब्बासी एवं प्रो. पी. एन. मिश्र ने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा **'जैन जीवन तकनीक'** विषय पर प्रारम्भ होने वाले डिप्लोमा कोर्स तथा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा संस्कृति मंत्रालय - भारत सरकार के सहयोग से संचालित पाण्डुलिपि सूचीकरण योजना का शुभारम्भ किया। श्री माणिकचन्द पाटनी, कीर्ति पांड्या, श्रीमती मंजू अजमेरा, श्रीमती इन्द्रा सोगानी, श्री अरविन्द जैन, पं. जयसेन जैन, श्री रमेश कासलीवाल आदि ने अतिथियों का स्वागत किया। इस अवसर पर प्रो. सरोजकुमार जैन, डॉ. प्रकाशचन्द जैन, प्रो. नवीन सी. जैन, डॉ. रजनीश जैन, पं. हेमन्त काला आदि विद्वान विशेष रूप से उपस्थित थे। कार्यक्रम का सशक्त संचालन संस्था के मानद सचिव डॉ. अनुपम जैन ने किया। आभार पूर्व कुलपति और संस्था के मानद निदेशक **प्रो. ए. ए. अब्बासी** ने व्यक्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थान के राज्यपाल श्री निर्मलचन्दजी जैन का महावीर ट्रस्ट द्वारा नागरिक अभिनन्दन

महावीर ट्रस्ट के पूर्व मंत्री एवं ट्रस्टी श्री निर्मलचन्दजी जैन का राजस्थान के राज्यपाल नियुक्त होने के बाद प्रथम बार नगरागमन पर महावीर ट्रस्ट के तत्वावधान में समग्र जैन समाज एवं संस्थाओं की ओर से नागरिक अभिनन्दन किया गया।

इस भव्य कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे प्रदेश के मुख्यमंत्री **माननीय श्री दिग्विजयसिंहजी।** महामहिम का नागरिक अभिनन्दन ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, कार्याध्यक्ष श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल, महामंत्री श्री कैलाशचन्द चौधरी, श्री नेमनाथ जैन एवं मुख्यमंत्री श्री दिग्विजयसिंहजी ने शाल, श्रीफल एवं अभिनन्दन पत्र भेंट कर समग्र जैन समाज की संस्थाओं की ओर से किया।

माननीय राज्यपालजी का सम्मान करते हुए श्री प्रदीप कासलीवाल (कार्याध्यक्ष), श्री नेमनाथजी जैन (प्रसिद्ध उद्योगपति), श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल (अध्यक्ष), श्री दिग्विजयसिंहजी (मुख्यमंत्री - म.प्र.)

इस अवसर पर महावीर ट्रस्ट की ओर से 11 विकलांगों को जयपुर पैर डॉ. देव पाटोदी के संयोजन में भेंट किये गये। महावीर ट्रस्ट के मुखपत्र **सन्मति वाणी** का विमोचन डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन द्वारा एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की शोध पत्रिका **अर्हत् वचन** का विमोचन ज्ञानपीठ के सचिव डॉ. अनुपम जैन ने कराया। राज्यपाल श्री जैन द्वारा महावीर ट्रस्ट की ओर से रु. 51,000.00 का चेक एक गरीब जैन महिला को उसकी हृदय शल्य चिकित्सा हेतु भेंट किया गया।

इस अवसर पर महामहिम राज्यपाल श्री निर्मलचन्दजी जैन एवं माननीय मुख्यमंत्री श्री दिग्विजयसिंहजी ने ट्रस्ट की पारमार्थिक गतिविधियों के लिये ट्रस्ट को तथा ट्रस्ट अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल एवं महामंत्री श्री कैलाशचन्द चौधरी को सामाजिक एवं पारमार्थिक कार्यों के लिये साधुवाद दिया। उन्होंने आगे कहा कि ट्रस्ट आगे भी इसी प्रकार असहाय लोगों की मदद हेतु सदैव तत्पर रहेगा।

इस अवसर पर जैन समाज की विभिन्न संस्थाओं की ओर से सर्वश्री नेमनाथ जैन, सोहनलाल पारेख, गौतम कोठारी, अजितकुमारसिंह कासलीवाल, डॉ. अनुपम जैन, सुन्दरलाल जैन बीड़ीवाले, माणकचन्द

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाटनी, माणकचन्द गंगवाल, हीरालाल सोगानी, मोतीलाल जैन खंडवा, इन्दरचन्द चौधरी सनावद, कैलाशचन्द जैन बड़वाह, पी.डी. जैन, ललित बड़जात्या, हंसमुख गांधी, कमलेश कासलीवाल, बाहुबली पांड्या, होलासराय सोनी, कीर्ति पांड्या, दिलीप पाटनी, मनोज पाटोदी, निर्मल सेठी, राजकुमार पाटोदी, अनिल मौजे, श्रीमती इंदुमती जैन, पुष्पा कटारिया, आशा विनायक्या आदि द्वारा पुष्पमालाओं से अभिनन्दन किया गया।

अंत में आभार कार्याध्यक्ष श्री प्रदीप कासलीवाल ने माना। स्वागत गीत श्रीमती साधना डोसी ने प्रस्तुत किया एवं संचालन किया श्री प्रदीप चौधरी ने। समागत विशिष्टजनों को अर्हत् वचन के विशेषांक एवं सन्मति वाणी की प्रतियाँ भेंट दी गई।

अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल द्वारा प्रदत्त स्वागत भाषण

परमश्रेष्ठ राज्यपाल श्री निर्मलचन्द जी, यशस्वी मुख्यमंत्री माननीय श्री दिग्विजयसिंह जी, मंचासीन विशिष्ट जन, सदन में उपस्थित महावीर ट्रस्ट के सम्मानित ट्रस्टीगण उपस्थित माताओं, बहनों एवं बन्धुओं।

सर्वप्रथम मैं महावीर ट्रस्ट, समग्र जैन समाज तथा नगर की अनेक धार्मिक, पारमार्थिक, शैक्षणिक संस्थाओं की ओर से महावीर ट्रस्ट के इस आयोजन में आप सबका हृदय से स्वागत करता हूँ।

एक अन्तराल के बाद अपनों से मिलने पर खुशी तो होती ही है लेकिन यह खुशी कई गुना बढ़ जाती है जब कोई अपने गौरवपूर्ण उपलब्धि अर्जित करने के उपरान्त अपने बीच आते हैं। म.प्र. के लाड़ले राजनेता, वित्त आयोग के सदस्य एवं म.प्र. के एडवोकेट जनरल जैसे महत्वपूर्ण पदों के दायित्व का सक्षमतापूर्वक निर्वहन करने वाले श्री निर्मलचन्द जी के राजस्थान सदृश विशाल एवं गौरवपूर्ण इतिहास के धनी प्रान्त का राज्यपाल नियुक्त किये जाने से सम्पूर्ण प्रदेश गौरवान्वित हुआ है। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता है कि श्री जैन हमारे महावीर ट्रस्ट के ट्रस्टी एवं मंत्री भी रह चुके हैं और इस प्रकार उनके महावीर ट्रस्ट से सतत गहन एवं आत्मीय सम्बन्ध रहें हैं। इस नाते महावीर ट्रस्ट परिवार को गौरव एवं विशेष सुख की अनुभूति हो रही है। परम श्रेष्ठ श्री निर्मलचन्दजी ने हर्ष के इन क्षणों में हमारे बीच आकर हमारे आनन्द को और भी बढ़ा दिया है। वस्तुत: आप का सम्मान समारोह आयोजित कर हम स्वयं गौरवान्वित हैं। आपके सम्मान समारोह के शुभ निमित्त से एकत्रित प्रबुद्ध नागरिकों, विशिष्ट राजनेताओं एवं सुविख्यात समाजसेवियों की इस संगीति को मैं महावीर ट्रस्ट के बारे में संक्षिप्त जानकारी देना चाहता हूँ।

लगभग 29 - 30 वर्ष पूर्व भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण महामहोत्सव वर्ष के सन्दर्भ में म.प्र. से प्रवर्तित धर्मचक्र रथ के माध्यम से प्राप्त आय से एक कोष बनाकर महावीर ट्रस्ट के नाम से धार्मिक, पारमार्थिक एवं सार्वजनिक न्यास की स्थापना की गई थी जिसके संस्थापक अध्यक्ष मध्यभारत के लोकप्रिय मुख्यमंत्री स्व. भैया मिश्रीलाल गंगवाल थे। उनके निधन के बाद से मुझे यह दायित्व सौंपा गया। सम्प्रति इस ट्रस्ट में म.प्र. के 309 स्थानों के लगभग 1600 सदस्य है। 11 संभागीय समितियाँ एवं 150 सदस्यों की प्रबन्धकारिणी समिति कार्यरत हैं। ट्रस्ट के वर्तमान में 35 ट्रस्टी हैं जिनमें से अनेक आज इस सदन को गौरवान्वित कर रहे हैं। महावीर ट्रस्ट का कार्य क्षेत्र सम्पूर्ण म.प्र. है। इस प्रारम्भिक संगठनात्मक जानकारी के बाद मैं अब गतिविधियों के बारे में कुछ जानकारी प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

शोध एवं अनुसन्धान योजनाएँ - अपनी सहयोगी संस्था कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के साथ मिलकर महावीर ट्रस्ट ने सुविधा सम्पन्न सन्दर्भ ग्रन्थालय का विकास किया है। जिसमें 11000 से अधिक पुस्तकें एवं लगभग 1050 पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं। 350 पत्र - पत्रिकाएँ भी नियमित आती हैं। विश्वविद्यालय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा मान्य इस शोध केन्द्र पर अब तक 11 छात्र पीएच.डी., 5 छात्र एम.फिल. तथा 19 एम.ए. / एम.एस.सी. के लघु शोध प्रबन्ध लिख चुके हैं। आधा दर्जन छात्र आज भी अपने शोध कार्य में निरत हैं। शोध पत्रिका अर्हत् वचन का विगत 15 वर्षों से नियमित प्रकाशन किया जा रहा है जिसके प्रवेशांक का विमोचन तत्कालीन उपराष्ट्रपति महामहिम डॉ. शंकरदयाल शर्मा द्वारा किया गया था। आज इसके नवीन अंक का विमोचन हो रहा है। इसका सम्पादन गणित के मूर्धन्य विद्वान डॉ. अनुपम जैन प्रारम्भ से ही सफलतापूर्वक कर रहे हैं।

अंकलिपि में लिखे सर्वभाषामयी अद्भुत ग्रन्थ सिरिभूवलय के अनुवाद एवं डिकोडिंग का कार्य भी डॉ. महेन्द्र कुमार जैन 'मनुज' के सहयोग से हो रहा है। भारत सरकार के सहयोग से जैन पाण्डुलिपियों के सूचीकरण एवं राष्ट्रीय पंजी के निर्माण के कार्य में भी महावीर ट्रस्ट पूर्ण सहयोग प्रदान कर रहा है।

स्वास्थ्य योजनाओं के अन्तर्गत महावीर ट्रस्ट विकलांग एवं अनुसंधान केन्द्र, महावीर फिजियोथेरिपी केन्द्र, महावीर आई केयर सेन्टर तथा महावीर आयुर्वेदिक दवाई वितरण केन्द्र सफलतापूर्वक संचालित किये जा रहे हैं। डॉ. देव पाटोदी के सुयोग्य मार्गदर्शन में चलाये जा रहे महावीर फिजियोथेरिपी सेन्टर की ख्याति नगर के सर्वश्रेष्ठ फिजियोथेरेपी केन्द्र के रूप में हैं। आज भी अनेक विकलांग भाइयों को जयपुर फुट एवं अन्य उपकरण प्रदान किये जा रहे हैं।

महावीर बाल संस्कार केन्द्र, इन्दौर एवं टीकमगढ़, महावीर मूर्तिकला केन्द्र, इन्दौर एवं महावीर संगीतकला केन्द्र ट्रस्ट की **शैक्षणिक गतिविधियों** के सुन्दर उदाहरण हैं। ट्रस्ट के मुख पत्र सन्मतिवाणी के नियमित प्रकाशन के अलावा संस्थापक अध्यक्ष भैया मिश्रीलालजी गंगवाल के जीवन पर आधारित स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन एक उल्लेखनीय उपलब्धि रही है। सन्मतिवाणी के नये अंक का आज विमोचन हो रहा है। ट्रस्ट द्वारा निर्धन महिलाओं को आजीविका के साधन उपलब्ध कराने हेतु महावीर गृह उद्योग भी संचालित किया जाता हैं। मात्र इतना ही नहीं अन्य अनेक जनकल्याणकारी योजनाएँ संचालित है। जिनकी चर्चा इस संक्षिप्त उद्बोधन में संभव नहीं।

ट्रस्ट की अनेक महत्वाकांक्षी योजनाओं का क्रियान्वयन अभी शेष है। बढ़ती महंगाई एवं घटती ब्याज दरों के इस युग में एक निश्चित जमा राशि की आय से बड़ी एवं नियमित व्यय वाली योजनाओं का संचालन संभव नहीं। ऐसे में ट्रस्ट द्वारा माननीय मुख्यमंत्री जी के उदार सहयोग एवं मार्गदर्शन से ट्रस्ट की भूमि के व्यावसायिक उपयोग की शासन से अनुमति प्राप्त करने के उपरान्त आज हम इस स्थिति में आ गये हैं कि मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि अगले वर्ष तक महावीर ट्रस्ट की गतिविधियों में बहुत निखार आ जायेगा। मैं इस सबके लिए अपना वरदहस्त प्रदान करने वाले माननीय श्री दिग्विजयसिंहजी के प्रति विशेषतः आभार ज्ञापित करता हूँ। एक बार पुनः अपने सम्मानित अतिथियों, राज्यपालजी, मुख्यमंत्रीजी, महावीर ट्रस्ट के ट्रस्टियों, जिला एवं पुलिस प्रशासन के वरिष्ठ अधिकारियों नगर के बुद्धिजीवियों, ट्रस्ट की प्रबन्धकारिणी के सभी सदस्यों का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ।

बधाई

सुप्रसिद्ध पत्रकार, लेखक एवं अनुवादक आचार्य अशोक सहजानन्द, दिल्ली को अन्तर्राष्ट्रीय जगत में चर्चित पत्रिका 'मिस्टिक इंडिया' का सम्पादक मनोनीत किया गया है। ज्योतिष, योग, ध्यान, दैविक विज्ञान, परा-अपरा विद्याओं से सम्बन्धित यह द्विमासिक पत्रिका अंग्रेजी तथा हिन्दी की संयुक्त द्विभाषी पत्रिका है। इस नवीन नियुक्ति पर कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की ओर से हार्दिक बधाई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोलकाता से प्रकाशित वर्द्धमान सन्देश का विमोचन सम्पन्न

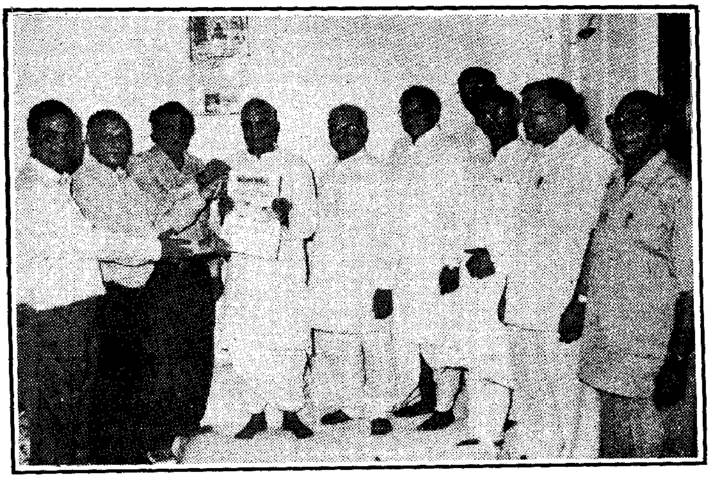

समस्त भारतवर्ष की देगम्बर जैन समाज में कोलकाता समाज का स्थान एवं योगदान सदैव से ही उल्लेखनीय रहा है। कुछ वर्षों पूर्व तक देश की समाज को यहीं से दिशा एवं शक्ति मिलती रही है। श्री राजराजजी गंगवाल, साहू श्री शांतिप्रसादजी जैन, श्री अमरचन्दजी पहाड़िया, श्री रतनलालजी गंगवाल एवं श्री हरखचन्दजी सरावगी आदि कोलकाता के अनेक व्यक्तियों के सामाजिक योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। पत्र-पत्रिकाएँ समाज का आईना कहलाती हैं। कोलकाता से विगत अनेक वर्षों से मात्र एक 'दिशा बोध' पत्रिका के अतिरिक्त कोई भी अन्य सामाजिक/धार्मिक समाचार पत्र न निकलने के कारण समाज में एक बड़ा अभाव सभी के द्वारा महसूस किया जा रहा था। देश के प्रबुद्ध विद्वानों ने भी यहाँ से समाचार पत्र निकलाने हेतु कई बार आग्रह एवं प्रेरणा दी। देश के प्रबुद्ध विद्वानों की प्रेरणा से एवं समाज की इस कमी को दूर करने हेतु कोलकाता से ''वर्द्धमान सन्देश'' नामक पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया गया है। गत दिनों कोलकाता में आयोजित एक सादे समारोह में देश के प्रख्यात विद्वान सर्वश्री डॉ. भागचन्दजी 'भागेन्दु' - दमोह, डॉ. शीतलप्रसादजी जैन - जयपुर, डॉ. जयकुमारजी जैन - मुजफ्फरनगर, डॉ. कपूरचन्दजी जैन - खतौली, पं. विनोदजी जैन - रजवान्स, पं. लालचन्दजी 'राकेश' - गंजबासौदा आदि की गरिमामयी उपस्थिति में श्री नीरजजी जैन ने वर्द्धमान सन्देश के प्रवेशांक का विमोचन किया। इस अवसर पर वर्द्धमान सन्देश के सम्पादक अजीत पाटनी, प्रकाशक डॉ चिरंजीलाल बगड़ा एवं कोलकाता समाज के कर्मठ कार्यकर्ता श्री कैलाशचन्दजी बड़जात्या, श्री महावीरप्रसादजी गंगवाल एवं अन्य विशिष्ट जन उपस्थित थे।

समस्त आचार्य संघों के व्यवस्थापकों, संस्थाओं एवं कार्यकर्ताओं तथा विद्वानों से निवेदन है कि समाचार, लेखादि समय-समय पर प्रेषित करते रहें। वर्द्धमान सन्देश कार्यालय का पता है - **वर्धमान सन्देश**, 46, स्ट्राण्ड रोड़, तीन तल्ला, कोलकाता - 700 007 फैक्स : 033 - 22581621

■ **अजीत पाटनी**, सम्पादक

साहू रमेशचन्द जैन 'इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ मास कम्युनिकेशन्स' के चेयरमेन नियुक्त

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की विज्ञप्ति के अनुसार समाचार-पत्र जगत से पिछले कई दशक से जुड़े, टाइम्स ऑफ इण्डिया के पूर्व कार्यकारी निदेशक एवं प्रबन्ध सम्पादक, प्रेस ट्रस्ट के पूर्व चेयरमेन तथा आई.एन.एस. के पूर्व अध्यक्ष साहू श्री रमेशचन्दजी जैन को 'इण्डिन इन्स्टीट्यूट ऑफ मास कम्युनिकेशन्स' (भारतीय जनसंचार संस्थान) की कार्यकारी परिषद का चेयरमेन बनाया गया है। यह संस्थान जनसंचार के क्षेत्र में देश का एक अग्रणी केन्द्र है। उनका कार्यकारी परिषद का अध्यक्ष बनाया जाना जैन समाज के लिये गर्व की बात है। बधाई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लन्दन स्थित इन्स्टीट्यूट ऑफ जैनालॉजी को 2 करोड़ का अनुदान

भारत के प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी बाजपेयीजी से जैन समाज का एक 21 सदस्यीय प्रतिनिधिमंडल मिला जिसमें मुख्यत: श्री रतिलाल शाह (अध्यक्ष - इंस्टीट्यूट ऑफ जैनालॉजी) - लन्दन, श्री विपिन जी. बी. मेहता (ट्रस्टी - इंस्टीट्यूट ऑफ जैनालॉजी) - लन्दन, श्री दीपचन्दजी गार्डी - मुम्बई, श्री नेमु चन्देरिया - लन्दन, साहू रमेशचन्दजी जैन - दिल्ली, श्री निर्मलकुमारजी सेठी - दिल्ली, श्री नेमचन्दजी खजान्ची - कोबे - जापान, श्री कुमारपाल देसाई - अहमदाबाद, श्री संजय जैन - दिल्ली, डॉ. एल. एम. सिंघवी (सांसद) - दिल्ली, श्री प्रतापजी भोगीलाल - मुम्बई एवं श्री हर्षन एन. संघराजका - लन्दन थे।

श्री नेमूजी चन्देरिया, श्री हर्षद एन. संघराजका, श्री लक्ष्मीमलजी सिंघवी ने इस इन्स्टीट्यूट ऑफ जैनालॉजी के बारे में जानकारी दी और बताया कि अभी इस इन्स्टीट्यूट के द्वारा विदेशों में जैन धर्म के सम्बन्ध में काफी प्रचार और प्रसार किया गया है। विदेशों में, अलग - अलग देशों के पुस्तकालयों में जितने ग्रन्थ हैं, उनका सूचीकरण करने की योजना है। उन्होंने यह भी बताया कि क्षमावणी पर्व को विशेष रूप से मनाने की योजना अगले वर्ष की है। इस इन्स्टीट्यूट ऑफ जैनालॉजी के होने से इंग्लैण्ड में तथा अन्य देशों में जैन धर्म के बारे में लोगों को काफी जानकारी प्राप्त हुई है।

विश्व के प्रतिष्ठित धर्मों में जैन धर्म का नाम आने लगा है तथा समय - समय पर सर्वधर्म सम्मेलनों में प्रतिनिधित्व करने का मौका प्राप्त होता रहता है। उन्होंने माननीय प्रधानमंत्रीजी से निवेदन किया कि वे संस्था के परम संरक्षक पद को स्वीकार करें। प्रधानमंत्रीजी ने इसकी स्वीकृति उसी समय दे दी।

प्रतिनिधिमंडल के निवेदन पर प्रधानमंत्रीजी ने 2 करोड़ रुपये इस इन्स्टीट्यूट ऑफ जैनालॉजी को देने के लिये स्वीकृति दे दी जिसके लिये उन्हें धन्यवाद दिया गया। श्री हुलासचन्दजी गोलछा ने प्रधानमंत्री को नेपाल में बने भगवान महावीर के सिक्के भेंट किये।

भगवान महावीर 2500 वाँ निर्वाण महोत्सव न्यास, ग्वालियर द्वारा

भगवान ऋषभदेव जयंती स्मारक व्याख्यानमाला सम्पन्न

30 मार्च 2003 को महावीर भवन, भगवान महावीर मार्ग कम्पू, ग्वालियर में भगवान ऋषभदेव स्मारक व्याख्यान का आयोजन किया गया जिसमें मुख्य अतिथि के रूप में प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक **एस. एन. सुब्बाराव,** मुख्य वक्ता के रूप में डॉ. (श्रीमती) कृष्णा जैन एवं अन्य वक्ताओं में डॉ. अशोक जैन, पं. केशरीचन्द्र धवल आदि उपस्थित थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रसिद्ध इतिहासकार श्री शान्तिचन्द द्विवेदी ने की। मंच पर न्यास के अध्यक्ष श्री केसरीमल गंगवाल ने अतिथियों का स्वागत किया एवं न्यास के मंत्री श्री तेजकुमार जैन ने स्वागत भाषण दिया।

मुख्य अतिथि की आसंदी से बोलते हुए श्री सुब्बारावजी ने कहा कि युद्ध की विभीषिका में धधक रही मानवता को आज तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव द्वारा सुस्थापित अनेकान्त दर्शन का प्रकाश ही अमानवीयता से बचा सकता है। इस अवसर पर उन्होंने 'एक जगत की धरती माता' का सामूहिक गान भी कराया।

डॉ. कृष्णा जैन ने अपने वक्तव्य में भगवान ऋषभदेव के वैश्विक स्वरूप एवं नारी शिक्षा के आद्य संस्थापक के रूप में अपनी बात रखी एवं डॉ. अशोकजी ने भगवान ऋषभदेव के जैनेतर प्रमाणों के सन्दर्भ में चर्चा की। पं. केशरीचन्दजी 'धवल' ने मनुष्य से ईश्वरत्व प्राप्ति की भगवान की शिक्षाओं का निरूपण किया। अंत में आभार प्रदर्शन उपमंत्री राजेन्द्र बापना ने किया। कार्यक्रम का सफल संचालन कार्यक्रम संयोजक श्री रवीन्द्र मालव ने किया।

■ **डॉ. (श्रीमती) कृष्णा जैन**
प्राध्यापक - म.ल.बा. महाविद्यालय, ग्वालियर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रा. पं. नरेन्द्रप्रकाश जैन अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पादक मंडल की बैठक

गत 22-23 जून :003 को प्राचार्य श्री रेन्द्रप्रकाश जैन अभिनन्दन ग्रंथ ाम्पादक मंडल की बैठक कोलकाता में सम्पन्न हुई जिसमें ाम्पादक मंडल के सर्व श्री ीरजजी जैन - सतना (परामर्श ामुख), डॉ. भागचन्दजी जैन भागेन्दु' - दमोह (प्रधान ाम्पादक), डॉ. शीतलचन्दजी जैन - जयपुर, डॉ. जयकुमारजी जैन - मुजफ्फरनगर, डॉ. कपूरचन्दजी जैन - खतौली, श्री वेनोदजी जैन - रजवांस, पं. ालचन्दजी जैन 'राकेश' - गंजबासौदा एवं प्रबन्ध सम्पादक डॉ. चिरंजीलालजी बगड़ा उपस्थित थे।

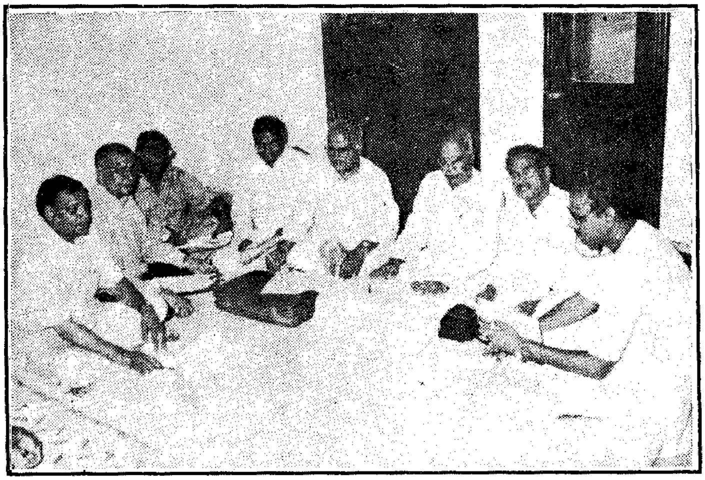

सम्पादक मंडल की बैठक में भाग लेते हुए डॉ. जयकुमारजी जैन, डॉ. चिरंजीलालजी बगड़ा, पं. लालचन्दजी जैन 'राकेश', डॉ. शीतलचन्दजी जैन, डॉ. भागचन्द्रजी 'भागेन्दु', पं. नीरजजी जैन, डॉ. कपूरचन्दजी जैन एवं पं. विनोदजी जैन

श्री नीरजजी जैन की अध्यक्षता में चार सत्रों के माध्यम से समस्त क्रियाकलापों, गतिविधियों एवं भावी कार्यक्रमों की रूपरेखा पर विस्तृत विचार विमर्श किया गया। अब तक प्राप्त सामग्री, लेख, संस्मरण आदि का अवलोकन किया गया एवं उपस्थित विद्वानों ने उक्त प्राप्त सामग्री का सम्पादन कार्य भी सम्पन्न किया।

बैठक के अंतिम सत्र के निर्णयानुसार अखिल भारतीय समाज से प्राचार्यजी से सम्बन्धित संस्मरण फोटो एवं लेखादि की सामग्री आगामी 15 अगस्त तक भेजने हेतु निवेदन करने का निश्चय किया गया है।

कोलकाता बैठक के निर्णयानुसार 18-20 जुलाई 2003 के मध्य सम्पादक मंडल के सदस्यों डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' (दमोह), डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर), डॉ. चिरंजीलाल बगड़ा (कोलकाता), पं. लालचन्द्र जैन 'राकेश' (गंजबासौदा) एवं पं. विनोदकुमार जैन (रजवांस) ने प्राचार्य जी के परिवार, मित्रों एवं कर्मभूमि के सहयोगियों से विशेष जानकारी एकत्र करने हेतु फिरोजाबाद की यात्रा की एवं महत्वपूर्ण सामग्री तथा चित्रों का संकलन किया। प्रकाशन मंत्री श्री अजित पाटनी (कोलकाता) एवं प्रबन्ध सम्पादक डॉ. चिरंजीलाल बगड़ा ने बताया कि ग्रन्थ समर्पण समारोह 28 दिसम्बर 03 को कोलकाता में आयोजित होने की संभावना है।

■ **अजीत पाटनी, मंत्री**

'खारवेल महोत्सव' गरिमापूर्वक सम्पन्न

उड़ीसा सरकार के संस्कृति मंत्रालय, उत्कल संस्कृति विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर एवं के.एन. फाउण्डेशन के संयुक्त तत्वावधान में दिनांक 8 से 14 फरवरी, 03 तक आयोजित खारवेल महोत्सव में दिनांक 13 फरवरी, 03 को 'जैन धर्म एवं संस्कृति से खारवेल के सम्बन्ध' के विषय में विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसमें विभिन्न सांस्कृतिक - कार्यक्रमों के साथ - साथ एक विचार गोष्ठी भी आयोजित हुई। इस गोष्ठी में उड़ीसा के माननीय संस्कृति मंत्री, उड़ीसा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, उड़ीसा से राज्यसभा सांसद, उत्कल संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलपति तथा अन्य अनेकों गणमान्य विद्वानों और महानुभावों के साथ - साथ विशेषरूप से आमंत्रित विद्वानों में डॉ. सुदीप जैन, दिल्ली एवं डॉ. अभयप्रकाश जैन, ग्वालियर, डॉ. रमेशचन्द्र जैन, बिजनौर भी सम्मिलित हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्मति वाणी – मुनि श्री तरुणसागर विशेषांक का विमोचन

इन्दौर। महावीर ट्रस्ट (म.प्र.) के मुखपत्र 'सन्मति वाणी - मुनि श्री तरुणसागर विशेषांक' का विमोचन हुआ। स्थानीय दशहरा मैदान की महती धर्मसभा में विशेषांक की प्रतियाँ, मुनिश्री सहित समस्त अतिथियों को सर्वश्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, कैलाशचन्द चौधरी, जयसेन जैन (सम्पादक), प्रदीनकुमारसिंह कासलीवाल व डॉ. अनुपम जैन ने भेंट की।

विशेषांक में **'क्रोध को कैसे जीतें?'** विषय पर मुनि श्री तरुणसागरजी द्वारा जामा मस्जिद के समक्ष भोपाल में दिये गये सम्पूर्ण प्रवचन सहित मुनिश्री व पुष्पगिरि के सचित्र परिचय व अन्य पठनीय सामग्री संकलित/प्रकाशित की गई है।

जयसेन जैन, सम्पादक

तीर्थंकर वर्धमान जैन पंचांग

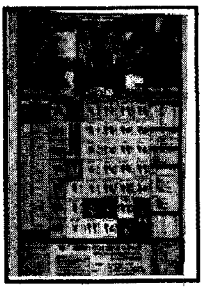

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट ने एक अभिनव प्रयास द्वारा एक ऐसा पंचांग प्रकाशित किया है जिसका अभाव लम्बे अरसे से महसूस किया जा रहा था। एक ऐसा संकलन जो दैनिक काम में आये, ऐसी जानकारियाँ जो जैन जन के दैनिक जीवन में आवश्यक है, वे छोटी-छोटी लेकिन अत्यावश्यक जानकारियाँ जिनके लिये हमें अनेक ग्रंथों की छानबीन करनी पड़ती है या पंडितजी के पास बार-बार चक्कर लगाना पड़ते हैं आदि इसमें उपलब्ध हैं। इसके प्रथम संस्करण (वर्ष 2003) की प्रति सर्वत्र उपलब्ध है।

इस पंचांग को सम्पादक ब्र. अनिलजी ने बड़ी मेहनत से तैयार किया है। अब इसका नियमित प्रकाशन हर वर्ष होता रहेगा जो नवम्बर माह में उपलब्ध होगा। जिन संस्थाओं या व्यक्तियों को इसकी जरूरत हो वे रु. 20/- प्रति नग के हिसाब से राशि उदासीन आश्रम को भेजकर वर्ष 2004 के पंचांग की अपनी प्रति सुरक्षित करवा सकते हैं।

■ **अरविन्दकुमार जैन, प्रबन्धक**
दि. जैन उदासीन आश्रम
584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर

'अहिंसा पुरस्कार' श्री बालासाहेब जाधव को समर्पित

अहिंसा-प्रसारक ट्रस्ट, मुम्बई द्वारा प्रवर्तित प्रतिष्ठित 'अहिंसा-पुरस्कार' इस वर्ष पद्मश्री प्रतापसिंह जाधव उर्फ बाला साहेब जाधव कोल्हापुर वालों को दिनांक 14 अप्रैल 2003 को पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज की पावन सन्निधि में आयोजित भव्य समारोह में परेड ग्राउण्ड के 'आचार्य कुन्दकुन्द सभा मण्डप' में समर्पित किया गया।

■ **डॉ. सुदीप जैन**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'जैन साहित्य का संस्कृत वाङ्मय में योगदान' संगोष्ठी सम्पन्न

जयपुर में दिनांक 22.1.03 को पं. चैनसुखदास व्याख्यानमाला के आयोजन की अध्यक्षता माननीय श्री ज्ञानचन्दजी खिन्दूका ने की। मुख्य अतिथि के रूप में प्रो. सत्यदेव मिश्र, कुलपति - राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर तथा मुख्य वक्ता प्रो. भागचन्दजी जैन 'भागेन्दु' ने 'जैन साहित्य का संस्कृत वाङ्मय में योगदान' विषय पर आलेख वाचन किया।

संस्था के उपाध्यक्ष श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी ने समाज के अतिथियों का स्वागत किया। संस्था के मंत्री श्री रमेशचन्दजी पापड़ीवाल ने व्याख्यानमाला एवं संस्था का परिचय दिया। डॉ. सनतकुमार जैन ने व्याख्यानमाला के आयोजन की प्रायोजना प्रस्तुत की। मुख्य वक्ता प्रो. भागचन्द जैन 'भागेन्दु' ने अपने आलेख में कहा कि संस्कृत जैन कवियों ने एक शब्द के 24 - 24 अर्थ प्ररूपित किये हैं। जैनाचार्यों ने संस्कृत ग्रन्थों में विस्तार से श्रावक और साधु के आचरण का वर्णन किया है। द्वितीय शताब्दी से लेकर 20 वीं शताब्दी तक संस्कृत जैन कवियों ने विपुल संस्कृत साहित्य रचा है।

मुख्य अतिथि प्रो. सत्यदेव मिश्र ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एवं राजस्थान में रचित संस्कृत साहित्य का व्यापक रूप से प्रचार - प्रसार होना चाहिये। अध्यक्षीय उद्बोधन में श्री ज्ञानचन्दजी खिन्दूका ने पं. चैनसुखदासजी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला। समारोह में अतिथियों का शाल व श्रीफल भेंटकर संस्था की ओर से स्वागत किया गया। अन्त में डॉ. प्रेमचन्दजी रांवका ने समागत अतिथियों के प्रति आभार प्रकट किया। संगोष्ठी का संचालन श्री सतीश कपूरजी ने किया।

■ **डॉ. सनतकुमार जैन, प्राचार्य**

मैसूर विश्वविद्यालय एवं श्रवणबेलगोला के प्राकृत संस्थान में विशेष व्याख्यान

दिनांक 6 एवं 7 फरवरी, 2003 को प्राकृतविद्या के संपादक डॉ. सुदीप जैन मैसूर एवं श्रवणबेलगोला में वहाँ के संस्थानों के विशेष निमंत्रण पर पधारे, तथा दिनांक 6 फरवरी को मैसूर विश्वविद्यालय के 'जैन विद्या एवं प्राकृत' विभाग में उनका 'वर्तमान संदर्भों में प्राकृतभाषा एवं साहित्य के प्रचार - प्रसार की आवश्यकता एवं उपयोगिता' विषय पर अत्यन्त सारगर्भित व्याख्यान हुआ, जिसमें उन्होंने राजधानी नई दिल्ली में कुन्दकुन्द भारती की प्रेरणा से प्राकृतभाषा और साहित्य के क्षेत्र में संचालित गतिविधियों का प्रभावी परिचय देते हुए देशभर में प्राकृतभाषा और साहित्य के अध्ययन - अध्यापन के लिए स्वतंत्र - विभाग निर्माण किए जाने की परियोजना पर दिशा - निर्देश प्रस्तुत किए। उन्होंने स्पष्ट किया कि "सरकार से पहिले आर्थिक संसाधन की मांग किए बिना यह आवश्यक है कि हम प्राकृतभाषा और साहित्य के प्रति लोगों में आकर्षण उत्पन्न करें, तथा बड़ी संख्या में इसके पाठ्यक्रम विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं अन्य शैक्षणिक संस्थाओं में संचालित कर सरकार को इनकी अनिवार्यता का बोध कराएँ और फिर इनके स्वतंत्र विभाग खोलने के लिए पुरजोर प्रयत्न करें।"

दिनांक 7 फरवरी 03 को श्रवणबेलगोला के 'राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं समाशोधन केन्द्र' में शोध छात्रों एवं जिज्ञासुओं के बीच उनका विशेष व्याख्यान आयोजित किया गया, जिसमें उन्होंने प्राकृतभाषा और साहित्य के क्षेत्र में शोध की अपार संभावनाओं, विषयों एवं परियोजनाओं के बारे में केन्द्र सरकार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं से लिए जा सकने वाले सहयोग का परिचय देते हुए राष्ट्रहित, समाजहित एवं साहित्य के हित में प्राकृतभाषा और साहित्य के क्षेत्र में बहुआयामी शोध के कार्यों को प्रोत्साहित करने का दिशाबोध दिया।

श्रवणबेलगोला में भट्टारक श्री चारूकीर्ति स्वामी के साथ उनकी भी दो घंटे गंभीर चर्चा हुई, जिसमें प्राचीन ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियों के संरक्षण तथा प्राकृत भाषा और साहित्य के क्षेत्र में बहुआयामी कार्य योजनाओं के निर्माण के विषय में व्यापक विचार विमर्श हुआ। पूज्य स्वामीजी ने डॉ. सुदीप जैन को शॉल एवं श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया।

■ **डॉ. एन. सुरेश कुमार, निदेशक**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्राह्मी - पुरस्कार (2002) एवं आचार्य भद्रबाहु - पुरस्कार (2003) समर्पित

आचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज के 79 वें 'पीयूष - पर्व - महोत्सव' के सुअवसर पर दिनांक 22 अप्रैल 2003 को राजधानी नई दिल्ली के लिबर्टी छबिगृह के भव्य सभागार में आयोजित समारोह में 'त्रिलोक उच्चस्तरीय अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान' की ओर से प्रवर्तित 'ब्राह्मी - पुरस्कार' प्रो. ओ.पी. अग्रवाल, लखनऊ वालों को गरिमापूर्वक समर्पित किया गया।

पूज्य आचार्यश्री के जन्मदिन के प्रसंग में देशभर से श्रद्धालुजन बड़ी संख्या में उपस्थित थे, और इस विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में समारोह के मुख्य अतिथि केन्द्रीय श्रम मंत्री डॉ. साहिब सिंह वर्मा ने कहा कि भगवान् महावीर के सिद्धांत आज भी सभी के लिए बहुत उपयोगी हैं। हब सबको उनका पालन करना चाहिए। उन्होंने कहा कि जैन दर्शन से उनके जीवन में भी बहुत परिवर्तन हुआ है। आचार्यश्री को भावभीनी विनयांजलि अर्पित करते हुए उन्होंने कहा कि इनका मार्गदर्शन एवं आशीर्वचन देश और समाज को लंबे समय तक मिलता रहे। इनका दृष्टिकोण बहुत विशाल है।

समारोह में भारतीय संस्कृति, पुरातत्व, कला, साहित्य एवं ज्ञान - विज्ञान के लिए प्रवर्तित 'ब्राह्मी - पुरस्कार' प्राचीन पाण्डुलिपियों एवं पुरातात्विक सामग्री के संरक्षण एवं संवर्द्धन के अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ प्रो. ओमप्रकाश जी अग्रवाल को माननीय साहिब सिंहजी वर्मा ने बहुमानपूर्वक समर्पित किया। पुरस्कार की सम्मान राशि एक लाख रूपए का ड्राफ्ट प्रवर्तक संस्थान के मैनेजिंग ट्रस्टी श्री सी.पी. कोठारी ने डॉ. अग्रवाल जी को समर्पित किया। सम्मान ग्रहण करते हुए डॉ. ओ.पी. अग्रवाल ने कहा कि हमारे देश में जैन धर्म की विशाल धरोहर है, लेकिन लोगों को इसकी जानकारी नहीं है। इस बारे में बहुत कुछ करने की आवश्यकता है और मैं तन - मन - धन से दिशा में समर्पित होकर कार्य करूँगा। उन्होंने 'ब्राह्मी - पुरस्कार' दिए जाने के लिए पुरस्कार - समिति और चयन समिति के सदस्यों का आभार व्यक्त किया और पूज्य आचार्यश्री के श्रीचरणों में अपनी सहधर्मिणी के साथ कृतज्ञ विनयांजलि समर्पित की।

इसी समारोह में कुन्दकुन्द भारती न्यास द्वारा प्राच्य जैन - ज्योतिष, प्रतिष्ठा - विधि, वास्तु शास्त्र, तत्वज्ञान एवं संहिताविधि आदि के क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य करने वाले विद्वान् को सम्मानित करने के लिए इसी वर्ष से प्रवर्तित 'आचार्य भद्रबाहु - पुरस्कार' जैन प्रतिष्ठा विधि, वास्तु शास्त्र एवं ज्योतिष शास्त्र के विख्यात विद्वान् पं. बाहुबलि पार्श्वनाथ उपाये, बेलगाम (कर्नाटक) को बहुमानपूर्वक समर्पित किया गया। प्रशस्ति - पत्र, स्मृति चिन्ह आदि का समर्पण माननीय साहिब सिंह वर्माजी ने किया, तथा एक लाख रूपए की धनराशि का ड्राफ्ट कुन्दकुन्द भारती के न्यासी श्री सतीश जैन (एस.सी.जे.) ने समर्पित किया।

आचार्यश्री ने अपने आशीवर्चन में कहा कि अत्यंत प्राचीनकाल से भारत धर्मप्रधान देश रहा है, सभी शासकों ने सभी धर्मों के संतों एवं विद्वानों को आदर दिया है। यदि देश को बचाना है, आगे लाना है और महान् बनाना है तो विद्वानों का सम्मान करना ही होगा। भारतीय संस्कृति में जाति महत्वपूर्ण नहीं रही। यहाँ नीति श्रेष्ठ रही है। भगवान् महावीर ने भी अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य जैसे पाँच महान् सिद्धांत विश्व को दिए। यदि इन पर अमल किया जाए तो सारे विवाद खत्म हो जाएं। राम और भरत दोनों राजकार्य से निर्लेप रहे, आज के शासकों के लिए यह एक आदर्श उदाहरण है।

समारोह के अध्यक्ष नवभारत टाइम्स के प्रकाशक श्री पुनीत जैन ने अपनी विनयांजलि में कहा कि आचार्यश्री ज्ञान के आगार हैं। इनका क्षणिक सान्निध्य भी हर किसी को पुलकित कर देता है। जिस प्रकार पुरानी पीढ़ी को इनका सान्निध्य लंबे समय तक मिला है, उसी प्रकार युवा पीढ़ी को भी इनका मार्गदर्शन एवं आशीर्वचन दीर्घकाल तक मिलते रहना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डॉ. शेखरचन्द्र जैन 'सहजानन्द वर्णी पुरस्कार' से पुरस्कृत

महान जैन संत, लेखक श्री सहजानन्द वर्णी की स्मृति में अहमदाबाद में दिनांक 12 से 17 फरवरी 2003 तक आयोजित श्री 1008 श्री आदिनाथ जिनबिम्ब पंचकल्याणक समिति द्वारा एक साहित्य पुरस्कार प्रारम्भ किया गया।

'तीर्थंकर वाणी' के माध्यम से पिछले 10 वर्षों से 'वर्णी साहित्य दीर्घा' के नाम से पूज्य सहजानन्दजी का साहित्य निरन्तर प्रकाशित कर रहे हैं। उनकी इस साहित्य प्रचार-प्रसार के कार्य की सराहना स्वरूप इस पुरस्कार का शुभारम्भ डॉ. शेखरचन्द्र जैन को प्रदान कर किया गया। डॉ. शेखरचन्द्र जैन अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान हैं, अनेको पुस्तकों के लेखक हैं। वे वर्तमान में तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के अध्यक्ष हैं।

इस पुरस्कार में उन्हें 11 हजार की राशि, प्रशस्ति चिन्ह एवं शाल ओढ़ाकर गुजरात के पूर्व विधानसभा अध्यक्ष श्री धीरूभाई शाह द्वारा विशाल जनसमूह के बीच सम्मान किया गया। डॉ. जैन ने यह राशि वर्णी साहित्य पुरस्कार समिति को दान में दी है।

■ ज्ञानचन्द वेद, उपाध्यक्ष, अहमदाबाद

'साहू अशोक जैन स्मृति पुरस्कार' (2003) श्री नीरज जैन को समर्पित

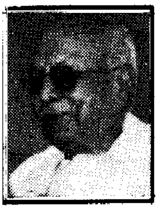

साहू अशोक जैन स्मृति-पुरस्कार समिति, बड़ौत (उ.प्र.) द्वारा प्रवर्तित 'साहू अशोक जैन स्मृति-पुरस्कार' (वर्ष 2003) श्री नीरज जैन, सतना को दिनांक 13 अप्रैल 2003 को पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज की पावन सन्निधि में आयोजित भव्य समारोह में परेड ग्राउण्ड के 'आचार्य कुन्दकुन्द सभा मण्डप' में समर्पित किया गया। समारोह के मुख्य अतिथि माननीय श्री शिवराज पाटील जी, उपनेता कांग्रेस संसदीय दल ने पुरस्कार समर्पित किया। समारोह की अध्यक्षता पद्मश्री ओमप्रकाश जैन, अध्यक्ष संस्कृति फाउण्डेशन ने की।

■ डॉ. सुदीप जैन, दिल्ली

डॉ. सुदीप जैन 'गोम्मटेश विद्यापीठ प्रशस्ति' (2003) से सम्मानित

श्री एस.डी.जे.एम.आई. मैनेजिंग कमेटी, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) के द्वारा स्थापित एवं संचालित 'श्री गोम्मटेश विद्यापीठ पुरस्कार' (वर्ष 2003) का समर्पण समारोह दिनांक 14.4.2003 को सायंकाल 7.00 बजे श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला में भव्य समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ। इसमें डॉ. सुदीप जैन को प्राकृतभाषा और साहित्य के क्षेत्र में अनन्य योगदान के लिए इस वर्ष का 'गोम्मटेश विद्यापीठ पुरस्कार' सबहुमान समर्पित किया गया। पुरस्कार समिति के कार्याध्यक्ष श्री ए. शांतिराज शास्त्री एवं कार्यादर्शी श्री एस.एन. अशोक कुमार की देखरेख में गरिमापूर्वक आयोजित इस समारोह में पूज्य भट्टारक स्वस्ति श्री चारुकीर्ति स्वामीजी ने अपने करकमलों से डॉ. सुदीप जैन को माल्यार्पण, शॉल, श्रीफल एवं प्रशस्ति पत्र सहित यह सम्मान प्रदान किया।

इस समारोह में तीन दक्षिण भारतीय विद्वानों को भी उनके विशेष योगदान के लिए सम्मानित किया गया। वे हैं 1. श्री पी.सी. गुंडवाडे (रिटायर्ड जज) बेलगाम, 2. श्री रतनचंद नेमिचंद कोठी, इंडी, 3. डॉ. सरस्वती विजय कुमार, मैसूर। इनके साथ ही दिनांक 16.4.2003 को आयोजित कार्यक्रम में 'श्री गोम्मटेश्वर विद्यापीठ सांस्कृतिक पुरस्कार' भी श्रीमती टी.वी. सुमित्रा देवी, तुमकूर को समर्पित की गई। एवं श्री सर्वेश जैन, मूड़बिद्री को 'श्री ए.आर. नागराज प्रशस्ति' से सम्मानित किया गया।

■ डॉ. एन. सुरेन्द्र कुमार, श्रवणबेलगोला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान महावीर फाउण्डेशन द्वारा 'महावीर पुरस्कार' समर्पित

दिनांक 22 मार्च 03 को चेन्नई में पाण्डिचेरी के उपराज्यपाल महामहिम श्री के. आर. मलकानी ने अहिंसा एवं शाकाहार, शिक्षा एवं स्वास्थ्य एवं समाज सेवा के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने के लिये सन् 2001 एवं 2002 के महावीर पुरस्कार प्रदान किये। समारोह चयन समिति के अध्यक्ष सुप्रीम कोर्ट के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री एम. एन. वेंकटाचलैयाजी की अध्यक्षता में व डॉ. एल. एम. सिंघवी, राज्यसभा सांसद, श्वे. जैन साध्वी आचार्या श्री चन्दनाजी, श्री दीपचन्दजी गार्डी, राजर्षि डॉ. वीरेन्द्र हेगड़े (धर्मस्थल) के सान्निध्य में हुआ।

वर्ष 2001 के लिये निम्न संस्थानों व व्यक्तियों को पुरस्कार प्रदान किये गये -

1. डॉ. नेमीचन्द जैन, इन्दौर (म.प्र.) - अहिंसा एवं शाकाहार
2. डॉ. एच. सुदर्शन, येलन्दूर, चामराजनगर (कर्नाटक) - शिक्षा एवं चिकित्सा
3. भारत सेवाश्रम संगठन, कोलकाता (प.बं.) - समाजसेवा

वर्ष 2002 के लिये निम्न संस्थानों व व्यक्तियों को पुरस्कार प्रदान किये गये -

1. विवेकानन्द राक मेमोरियल, विवेकानन्द केन्द्र, कन्याकुमारी (तमिलनाडु) - शिक्षा एवं चिकित्सा
2. मरूधर महिला शिक्षण संघ, विद्यावाड़ी, जिला पाली (राज.) - शिक्षा
3. डॉ. एस. वी. आदिनारायण राव, विशाखापट्टनम (आ.प्र.) - चिकित्सा

पुरस्कार विजेताओं को पाँच लाख रुपये नगद, प्रशस्ति पत्र और स्मृति चिन्ह (भगवान महावीर की मूर्ति) दिया गया।

इस अवसर पर महामहिम श्री के. आर. मलकानी ने शाकाहार के महत्व के बारे में बताया व संस्थान के कार्यकलापों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि शाकाहार भोजन की उत्पत्ति में सबसे कम पानी, जमीन व आर्थिक संसाधनों की जरूरत पड़ती है। शाकाहार से जीवन तनाव व तामसिक प्रवृत्तियों से मुक्त रहता है। यदि विश्व शाकाहार पद्धति को अपना ले तो व्यक्तियों व राष्ट्रों के बीच कोई तनाव नहीं होगा, समग्र शान्ति स्थापित हो जायेगी।

न्यायमूर्ति श्री वैकटाचलैयाजी ने अपने उद्बोधन में दीन की सेवा में रत संस्थाओं व व्यक्तियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन्होंने पुरस्कृत व्यक्तियों व संस्थाओं को बधाई दी। उन्होंने आगे कहा कि सेवा कार्य में लगे हुए संस्थानों व व्यक्तियों का सम्मान करने से और लोग भी प्रोत्साहित होकर आगे आयेंगे।

संस्थान के न्यासी श्री जी.एन. दमानी, श्री विनोदकुमर एवं श्री पी.वी. कृष्णमूर्ति ने अतिथियों का स्वागत किया एवं श्री प्रसन्नचन्द जैन ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष (2003) भी महावीर फाउण्डेशन तीन पुरस्कार प्रदान करेगा। प्रत्येक पुरस्कार की राशि पाँच लाख रुपये नगद, प्रशस्ति पत्र और स्मृति चिन्ह (भगवान महावीर की मूर्ति) प्रदान किये जायेंगे। पुरस्कार निम्नांकित तीन क्षेत्रों में उत्कृष्ट कार्यों के लिये दिये जायेंगे - **(1) अहिंसा एवं शाकाहार का प्रचार-प्रसार (2) शिक्षा एवं चिकित्सा तथा (3) सामाजिक एवं सामुदायिक सेवा।** नामांकन दिनांक 15 अगस्त 2003 के पूर्व फाउण्डेशन कार्यालय में पहुँच जाना चाहिये।

केवल भारतीय नागरिक एवं संस्थाएँ, जो कि भारत में स्थित हैं और देश में उत्कृष्ट कार्य कर रही हैं, इन पुरस्कारों की पात्र होंगी। साधारणतया वर्तमान में किये गये कार्य ही पुरस्कार के लिये विचारणीय होंगे। पुरस्कार निर्धारण मुख्य रूप से इस बात पर निर्भर करेगा कि इनके प्रयासों से आर्थिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों, जैसे अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन जाति तथा महिलाओं को कितना लाभ मिल रहा है।

■ सुगालचन्द जैन, न्यासी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुत संवर्द्धन संस्थान एवं पुरस्कार योजना

वर्तमान में यत्र-तत्र-सर्वत्र नवनिर्माणों की धूम मची होने से जिनवाणी के संरक्षण का कार्य किंचित शिथिल होने लगा। इस परिस्थिति को देखकर कुछ वर्षों पूर्व निस्पृही सराकोद्धारक संत परम पूज्य, **उपाध्यायरत्न मुनि श्री ज्ञानसागरजी महाराज** की प्रेरणा से जिनवाणी के उपासकों को साहित्य संरक्षण एवं सृजन हेतु मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराने हेतु **श्रुत संवर्द्धन संस्थान** की स्थापना के विचार का जन्म तो 1991 में ही हो गया था किन्तु इसकी विधिवत् स्थापना 1996 में मेरठ में की गई। सुविधा सम्पन्न ग्रन्थालय का विकास, संस्थान के मुखपत्र **'सराक सोपान'** का प्रकाशन, शोध परियोजनाओं का क्रियान्वयन आदि की प्रकिया तो गतिमान है ही किन्तु अपने-अपने स्थान पर रहकर विविध रूपों में साहित्य की सेवा करने वाले विद्वानों को सम्मानित करने की योजना को सहयोगी संस्था प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर के सहयोग से मूर्त रूप दिया गया। वर्ष 2002 तक निम्नलिखित 31 विद्वानों को सम्मानित किया जा चुका है -

1. डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, सागर (1991)
2. पं. श्रुतसागर जैन, न्यायतीर्थ, मालथौन, सागर (1991)
3. प्रो. उदयचन्द्र जैन, सर्वदर्शनाचार्य, वाराणसी (1997)
4. डॉ. अमृतलाल जैन शास्त्री, वाराणसी (1997)
5. प्रो. (डॉ.) राजाराम जैन, आरा (1997)
6. ब्र. (पं.) भुवनेन्द्रकुमार जैन, सागर (1997)
7. पं. जवाहरलाल जैन, भिण्डर (उदयपुर) (1998)
8. प्रा. चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर (1998)
9. प्रा. नरेन्द्रप्रकाश जैन, फिरोजाबाद (1998)
10. डॉ. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी', वाराणसी (1998)
11. पं. रतनलाल जैन शास्त्री, इन्दौर (1998)
12. डॉ. रतनचन्द्र जैन, भोपाल (1999)
13. पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी (1999)
14. श्री अजितप्रसाद जैन, लखनऊ (1999)
15. श्री रामजीत जैन एडवोकेट, ग्वालियर (1999)
16. डॉ. कस्तूरचन्द्र जैन 'सुमन', श्रीमहावीरजी (1999)
17. पं. नाथूलाल जैन शास्त्री, इन्दौर (2000)
18. डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर (2000)
19. डॉ. शेखरचन्द्र जैन, अहमदाबाद (2000)
20. डॉ. बी. के. खड़बड़ी, मिरज (2000)
21. डॉ. (श्रीमती) रश्मि जैन, फिरोजाबाद (2000)
22. पं. मल्लिनाथ जैन शास्त्री, चैन्नई (2001)
23. डॉ. श्रेयांसकुमार जैन, बड़ौत (2001)
24. श्री जयसेन जैन, इन्दौर (2001)
25. डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर', नागपुर (2001)
26. डॉ. (श्रीमती) नीलम जैन, गाजियाबास (2001)
27. पं. सागरमल जैन, विदिशा (2002)
28. पं. लालचन्द्रजैन 'राकेश', गंजबासौदा (2002)
29. श्री पारसदास जैन, दिल्ली (2002)
30. डॉ. कमलेशकुमार जैन, वाराणसी (2002)
31. श्रीमती माधुरी जैन, जयपुर (2002)

वर्ष 1988 से श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ ने नियमित रूप से 5 वार्षिक पुरस्कार प्रदान करने का निश्चय किया है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक पुरस्कृत विद्वान को रु. 31,000.00 की नगद राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति पत्र से समारोहपूर्वक सम्मानित किया गया। वर्ष 2003 में भी योजना गतिमान है। पुरस्कारों का विवरण निम्नवत् है -

1. **आचार्य श्री शांतिसागर छाणी स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2003**
   यह पुरस्कार जैन आगम साहित्य के पारंपरिक अध्येता / टीकाकार विद्वान को आगमिक ज्ञान के संरक्षण में उसके योगदान के आधार पर प्रदान किया जायेगा।

2. **आचार्य श्री सूर्यसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2003**
   यह पुरस्कार प्रवचन-निष्णात एवं जिनवाणी की प्रभावना करने वाले विद्वान को प्रदान किया जायेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

3. आचार्य श्री विमलसागर (भिण्ड) स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2003

यह पुरस्कार जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने वाले जैन पत्रकार को दिया जायेगा।

4. आचार्य श्री सुमतिसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2003

यह पुरस्कार जैन विद्याओं के शोध / अनुसंधान के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य हेतु प्रदान किया जाएगा। चयन का आधार समग्र योगदान होगा।

5. मुनि श्री वर्द्धमान सागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2003

यह पुरस्कार जैन धर्म-दर्शन के किसी क्षेत्र में लिखी गई शोधपूर्ण, मौलिक, अप्रकाशित कृति पर प्रदान किया जाएगा।

उपरोक्त सभी पुरस्कारों हेतु चयनित व्यक्ति को रु. 31,000.00 नगद, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति से सम्मानित किया जायेगा। आवश्यकतानुसार पुरस्कारों की विषय परिधि को परिवर्तित किया जा सकता है।

6. सराक पुरस्कार - 2003

इसके अलावा वर्ष 2000 से सराक ट्रस्ट के सौजन्य से सराक पुरस्कार भी प्रारम्भ किया गया था जिसके अन्तर्गत रु. 25,000.00 नगद, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति से सम्मानित किया जाता रहा। वर्ष 2001 से यह पुरस्कार भी श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ द्वारा प्रदान किया जा रहा है। विगत वर्षों में इस पुरस्कार से सम्मानित व्यक्ति/संस्थाएँ निम्नवत् हैं -

1999. सराकोत्थान उपसमिति, गाजियाबाद
2000. श्री प्रेमचन्द जैन 'तेल वाले', मेरठ
2001 श्री कमलकुमार जैन, साढ़म
2002 श्री विनयकुमार जैन, कृष्णानगर - दिल्ली

संस्थान के अध्यक्ष डॉ. नलिन के. शास्त्री, दिल्ली एवं महामंत्री श्री हंसकुमार जैन, मेरठ ने बताया कि उपरोक्त पुरस्कारों हेतु कोई भी विद्वान/सामाजिक कार्यकर्त्ता/संस्थान प्रस्ताव निर्धारित प्रस्ताव पत्र पर प्रस्ताव 30 सितम्बर 2003 तक निम्न पते पर प्रेषित कर सकते हैं। पुरस्कार हेतु प्रस्ताव निर्धारित प्रस्ताव पत्र पर निम्न पते पर सभी आवश्यक संलग्नकों सहित भेजा जाना चाहिये।

डॉ. अनुपम जैन
संयोजक - श्रुत संवर्द्धन एवं सराक पुरस्कार समिति
'ज्ञानछाया', डी - 14, सुदामानगर,
इन्दौर - 452 009 (म.प्र.)
फोन : 0731 - 2787790 (नि.) 2545421 (का.)
email - anupamjain3@rediffmail.com

ज्ञातव्य है कि इसी संस्था द्वारा वर्ष 2000 से **उपाध्याय ज्ञानसागर श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार** जैन साहित्य, संस्कृति एवं समाजसेवा के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य हेतु दिया जा रहा है। इसके अन्तर्गत रु. 1,00,000 = 00 की नगद राशि, प्रशस्ति आदि प्रदान की जाती है। अब तक भारतीय ज्ञानपीठ (2000) एवं राजर्षि डॉ. डी. वीरेन्द्र हेगड़े (2001) को यह पुरस्कार दिया जा चुका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् पुरस्कारों हेतु प्रविष्टियाँ आमंत्रित

विगत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी निम्नांकित 2 वार्षिक पुरस्कारों हेतु तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के सदस्यों से 31.08.03 तक सादे कागज पर पूर्ण विवरण सहित प्रविष्ठियाँ सादर आमंत्रित हैं -

1. **स्व. चन्दारानी जैन, टिकैतनगर स्मृति विद्वत् महासंघ पुरस्कार - 2003**
2. **सौ. रूपाबाई जैन, सनावद विद्वत् महासंघ पुरस्कार - 2003**

प्रत्येक पुरस्कार के अन्तर्गत रु. 11,000.00 की नगद राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति पत्र प्रदानकर समारोह पूर्वक सम्मानित किया जाता है। पुरस्कार जैन धर्म साहित्य, संस्कृति के प्रचार-प्रसार, अध्ययन-अनुसंधान तथा विद्वत् महासंघ के घोषित उद्देश्यों के प्राप्ति में प्रदत्त सहयोग हेतु महासंघ के सदस्यों के लिये निर्धारित है। महासंघ के सदस्यों से प्रविष्टियाँ निम्नांकित पते पर भेजी जानी चाहिये। ■ **डॉ. अनुपम जैन,** महामंत्री

ज्ञानछाया, डी-14, सुदामानगर, **इन्दौर** - 452 009

वर्ष 2003 के महावीर पुरस्कार एवं ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार

प्रबन्धकारिणी कमेटी, दिग. जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी द्वारा संचालित जैन विद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी के वर्ष 2003 के **'महावीर पुरस्कार'** के लिये जैन धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति आदि से सम्बन्धित किसी भी विषय की पुस्तक/शोध प्रबन्ध की चार प्रतियाँ दिनांक 30 सितम्बर 2003 तक आमंत्रित हैं। इस पुरस्कार में प्रथम स्थान प्राप्त कृति को रु. 21,000.00 एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा तथा द्वितीय स्थान प्राप्त कृति को **'ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया साहित्य पुरस्कार'** प्रदान किया जायेगा जिसमें रु. 5001/- नगद एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। 31 दिसम्बर 1999 के पश्चात प्रकाशित पुस्तक ही इसमें सम्मिलित की जा सकती है।

ज्ञातव्य है कि वर्ष 2002 का महावीर पुरस्कार **डॉ. शैलेन्द्रकुमार रस्तोगी,** राजाबाजार, **लखनऊ** - 3 (उ.प्र.) को उनकी कृति 'लखनऊ संग्रहालय की जैन प्रतिमाएँ' (एक प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन) तथा ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया साहित्य पुरस्कार **डॉ. उदयचन्द जैन, वाराणसी** को उनकी कृति न्यायकुमुदचन्द्र परिशीलन पर दिनांक 17 अप्रैल 2003 को श्रीमहावीरजी में महावीर जयंती के वार्षिक मेले के अवसर पर प्रदान किया गया। पुरस्कार आवेदन के लिये नियमावली तथा आवेदन पत्र संस्थान कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी, सवासाई रामसिंह रोड़, जयपुर-4 से प्राप्त किया जा सकता है।

■ **डॉ. कमलचन्द सोगाणी, संयोजक**

स्वयंभू पुरस्कार - 2003

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर के वर्ष 2003 के स्वयंभू पुरस्कार के लिये अपभ्रंश से संबंधित विषय पर हिन्दी अथवा अंग्रेजी में रचित रचनाओं की चार प्रतियाँ 30 सितम्बर 2003 तक आमंत्रित हैं। इस पुरस्कार में रु. 21,000.00 की नगद राशि एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। 31 दिसम्बर, 1997 से पूर्व प्रकाशित तथा पहले से पुरस्कृत कृतियाँ सम्मिलित नहीं की जायेंगी।

ज्ञातव्य है कि वर्ष 2002 का पुरस्कार डॉ. कस्तूरचन्द्र जैन 'सुमन', श्रीमहावीरजी को उनकी कृति 'मइंकलेहा कहा' पर दिनोंक 17.4.03 को श्रीमहावीरजी में महावीर जयंती के मेले के अवसर पर प्रदान किया गया। नियमावली तथा आवेदन पत्र अकादमी कार्यालय, दिग. जैन नसियों भट्टारकजी, सवाई मानसिंह रोड़, जयपुर-4 से प्राप्त की जा सकती है।

■ **डॉ. कमलचन्द सोगाणी, संयोजक**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांडुलिपि सूचीकरण प्रशिक्षण शिविर

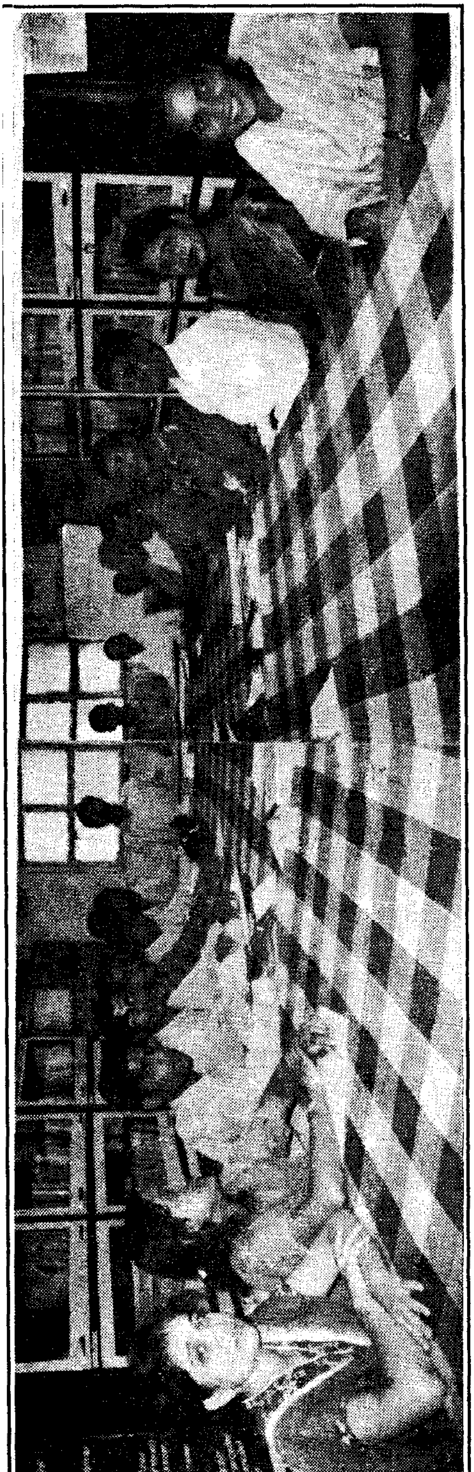

जैन पांडुलिपियों की राष्ट्रीय पंजी निर्माण (देखें पृ. 76) की श्रृंखला में मध्यप्रदेश एवं महाराष्ट्र अंचल में कार्य को गति देने हेतु कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा 16-18 मई एवं 22-24 जुलाई को प्रशिक्षण शिविर आयोजित किये गये। संलग्न चित्र दिनांक 22 जुलाई 03 को डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज' एवं ब्र. रजनी जैन द्वारा दिये जा रहे प्रशिक्षण का है। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के मानद सचिव डॉ. अनुपम जैन ने सम्पूर्ण परियोजना एवं इसके राष्ट्रीय महत्व पर विस्तृत प्रकाश डाला तथा प्रशिक्षकों का परिचय कराया।

डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज' ने पांडुलिपियों के सूचीकरण में आने वाली व्यावहारिक दिक्कतों यथा स्पष्टत: काल न देकर शब्द संख्या पद्धति में काल दिये होने पर उनके निर्धारण की रीति, विषय सूची के निर्माण, प्रथम पंक्ति एवं अंतिम पंक्ति के चयन की रीति पर प्रकाश डाला। ब्र. रजनीजी ने विविध उदाहरणों के माध्यम से विषय को विकसित किया। आपने विभिन्न भाषाओं को पहचानने की सुगम रीतियों को बताते हुए विवरण तैयार करते समय विशेष सावधानी बरतने की सलाह दी।

परियोजना की प्रबन्ध व्यवस्था से सम्बद्ध श्री अरविन्दकुमार जैन एवं डॉ. सुशीला सालगिया ने एक-एक मन्दिर की पांडुलिपियों की प्रविष्टियाँ पूर्ण होने पर उनके प्रविष्टि फार्म को जमा करने की रीति एवं अन्य प्रशासनिक व्यवस्थाओं की जानकारी दी।

अगला प्रशिक्षण शिविर 19 से 21 सितम्बर को आयोजित किया जाना प्रस्तावित है। प्रशिक्षित प्रबिष्टिकर्ताओं के पुनर्मूल्यांकन एवं सतत प्रशिक्षण की भी ज्ञानपीठ में व्यवस्था की गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष अपील

नेमनाथ जैन

प्रेस्टीज

संरक्षक–अ. भा. श्वे. जैन महासंघ

अध्यक्ष–अ. भा. श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस (म. प्र. प्रांतीय शाखा)

जैन पांडुलिपियों के संरक्षण में सहभागी बने

भगवान महावीर 2600वाँ जन्म जयन्ती महोत्सव कार्यक्रमों की श्रंखला में संस्कृति मंत्रालय–भारत सरकार ने राष्ट्रीय अभिलेखागार–दिल्ली के नेतृत्व में सम्पूर्ण देश में विकीर्ण जैन पाण्डुलिपियों के सूचीकरण की महत्वाकांक्षी योजना कियान्वित की है। सम्पूर्ण देश को 5 भागों में विभाजित कर प्रत्येक क्षेत्र की जैन पाण्डुलिपियों की जानकारी शासन द्वारा स्वीकृत प्रारूप में तैयार कर उनका e-Catalogue कम्प्यूटर पर तैयार किया जा रहा हैं मध्यप्रदेश एवं महाराष्ट्र प्रान्त में इस कार्य को सम्पादित करने हेतु देवी अहिल्या विश्वविद्यालय द्वारा मान्य शोध केन्द्र कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का चयन नोडल एजेन्सी के रूप में किया गया है। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर ने जैन समाज के सभी सम्प्रदायों/वर्गो/ विचारधाराओं के नियन्त्रण में उपलब्ध पाण्डुलिपियों के सूचीकरण का कार्य निर्धारित प्रारूप में 1 मार्च 2003 से प्रारम्भ कर दिया हैं अतः समस्त स्थानकों/उपाश्रयों एवं हस्तप्रत भंडारों के प्रबन्धकों से अनुरोध है कि वे कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ को पूर्ण सहयोग प्रदान करने का कष्ट करे। जिससे मध्यप्रदेश एवं महाराष्ट्र अंचल में उपलब्ध जैन पाण्डुलिपियों के सूचीकरण के कार्य को यथाशीघ्र पूर्ण कर महत्वपूर्ण पाण्डुलिपियों की माइक्रोफिल्मिंग, स्केनिंग, संरक्षण, अनुवाद आदि का पथ प्रशस्त किया जा सके।

पांडुलिपियों का सूचीकरण पूर्ण होने पर निर्देशिका की एक प्रति सी. डी. रूप में अथवा प्रिंट कॉपी के रूप में आपको भेज दी जावेगी।

ज्ञातव्य है कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ 1993 से इस क्षेत्र में कार्यरत है। यह संस्था डॉ. अनुपम जैन के मार्गदर्शन में साधु–साध्वियों के अध्ययन की सभी सुविधायें उपलब्ध कराती है। इसका कार्य प्रशंसनीय है।

(नेमनाथ जैन)

ऑफिस : 30, जावरा कम्पाउण्ड, एम.वाय.एच. रोड, इन्दौर – 452 001 (म.प्र.)
दूरभाष : (0731) 5043007/08, (पीबीएक्स) 2704600, 5041111
फेक्स : (0731) 2704455/5062079 ई–मेल : prestigeindia@sancharnet.in
निवास : 'सजान – सीता' 17, बी/3, ओल्ड पलासिया, इन्दौर – 452 001
दूरभाष : (0731) 2561346, 2563870, फेक्स : (0731) 2561348

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन पुरस्कार समर्पण समारोह

इन्दौर, 21 सितम्बर 2003

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा मौलिक एवं शोधपूर्ण आलेखों के सृजन को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से वर्ष 1990 में अर्हत् वचन पुरस्कारों की स्थापना की गई। इसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष अर्हत् वचन में एक वर्ष में प्रकाशित आलेखों के मूल्यांकन हेतु एक निर्णायक मंडल का गठन किया गया।

निर्णायकों द्वारा प्रदत्त प्राप्तांकों के आधार पर वर्ष 2002 हेतु निम्नांकित आलेखों को क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार हेतु चुना गया है। ज्ञातव्य है कि पूज्य मुनिराजों/आर्यिका माताओं, अर्हत् वचन सम्पादक मंडल के सदस्यों एवं विगत पाँच वर्ष में इस पुरस्कार से सम्मानित लेखकों द्वारा लिखित लेख प्रतियोगिता में सम्मिलित नहीं किये जाते हैं। पुरस्कृत लेख के लेखकों को क्रमशः रुपये 5001/-. 3001/-, 2001/- की नगद राशि, प्रशस्ति पत्र एवं स्मृति चिन्ह से इस समारोह में सम्मानित किया जायेगा।

प्रथम पुरस्कार : **The Jaina Hagiography and the Saṭkhaṇḍāgama, 14(4), October-December 2002, 49-60, Dr. S. A. Bhuvanendra Kumar, Editor-Jinamanjari, 4665, Moccasin Trail, Mississauga, Canada L4Z, 2W5.**

द्वितीय पुरस्कार : **Ācārya Virasena and his Mathematical Contribution, 14(2-3), April-September 2002, 79-90, Mrs. Pragati Jain, Lecturer Swati Jain College, Indore.**

तृतीय पुरस्कार : **काल विषयक दृष्टिकोण, 14(2-3), अप्रैल-सितम्बर 2002, 41-50, डॉ. (ब्र.) स्नेहरानी जैन, C/o. श्री राजकुमार मलैया, भगवानगंज, स्टेशन रोड, सागर।**

इसी श्रृंखला में 19 से 21 सितम्बर 2003 को त्रिदिवसीय कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं जिसके अन्तर्गत निम्न कार्यक्रम रखे गये हैं।

- ☐ तृतीय पाण्डुलिपि प्रविष्टि प्रशिक्षण शिविर
- ☐ क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी स्मृति व्याख्यान
- ☐ विशेष कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ व्याख्यान
- ☐ कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ निदेशक मण्डल की बैठक
- ☐ जैन पांडुलिपियों की राष्ट्रीय पंजी निर्माण में लगी नोडल एजेन्सियों की बैठक
- ☐ अर्हत् वचन पुरस्कार समर्पण समारोह
- ☐ जैन इतिहास एवं संस्कृति पर प्रदर्शनी का पूर्वावलोकन

विस्तृत कार्यक्रम शीघ्र ही अलग से प्रकाशित किया जा रहा है।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद् सचिव

01.07.2003

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस अंक के लेखक

1. **श्री सूरजमल बोबरा :** शैक्षणिक सामग्री के निर्माता एवं विक्रेता, प्रसिद्ध इतिहास प्रेमी, जैन विद्या विशारद, निदेशक - ज्ञानोदय फाउन्डेशन, इन्दौर, अर्हत् वचन सम्पादकीय परामर्श मंडल के सदस्य।
2. **आचार्य श्री कनकनन्दी :** दिगम्बर जैन संत, गणधराचार्य श्री कुन्थुसागरजी द्वारा दीक्षित, वैज्ञानिक धर्माचार्य के रूप में विख्यात, 150 ग्रन्थों के लेखक, धर्म - दर्शन विज्ञान शोध संस्थान के प्रेरणास्रोत।
3. **डॉ. अनिलकुमार जैन :** तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग में प्रबन्धक के पद पर कार्यरत, जैन दर्शन और विज्ञान के पारस्परिक संबंधों एवं समसामयिक विषयों पर शताधिक प्रामाणिक लेख, 'पल्लीवाल जैन इतिहास' एवं 'जीवन क्या है?' सदृश पुस्तकों के लेखक युवा विद्वान, भौतिक विज्ञान में Ph.D., अर्हत् वचन पुरस्कार से वर्ष 1996 में पुरस्कृत।
4. **डॉ. पारसमल अग्रवाल :** मूलत: विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में भौतिकी के प्राध्यापक, रसायन - भौतिकी के क्षेत्र में उत्कृष्ट शोध कार्य हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित, अनेक शोध पत्रिकाओं में शोध लेख प्रकाशित, अर्हत् वचन सम्पादकीय परामर्श मंडल के सदस्य। सम्प्रति ओक्लाहोमा स्टेट यूनिवर्सिटी, स्टिलवाटर के केमिकल - फिजिक्स समूह के सदस्य, 1990 एवं 1997 में अर्हत् वचन पुरस्कार से सम्मानित।
5. **डॉ. जगदीश प्रसाद :** Ph.D., D.Sc. उपाधिधारी, देश के प्रतिष्ठित मेरठ कॉलेज, मेरठ के रसायन शास्त्र विभाग में प्राध्यापक पद से सेवानिवृत्त वरिष्ठ विद्वान, शाकाहार में विशिष्ट अभिरूचि।
6. **कु. रंजना सूरी :** मेरठ कॉलेज, मेरठ के रसायन शास्त्र विभाग की शोध छात्रा।
7. **डॉ. अजितकुमार जैन :** एस. एस. एल. जैन महाविद्यालय, विदिशा में रसायन शास्त्र के प्राध्यापक, 1995 में 'पौद्गलिक स्कन्धों का वैज्ञानिक विश्लेषण' शीर्षक आलेख पर अर्हत् वचन पुरस्कार से सम्मानित।
8. **डॉ. रमाकान्त जैन :** इतिहास मनीषी डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन के सुपुत्र, शोधादर्श के सहसम्पादक, अनेक सामयिक एवं इतिहास विषयक लेखों के लेखक, उत्तरप्रदेश प्रशासनिक सेवा से सेवानिवृत्त।
9. **डॉ. पुरुषोत्तम दुबे :** प्राध्यापक - हिन्दी, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार। साहित्य सृजन में विशिष्ट अभिरूचि, लगभग 50 आलेख विभिन्न पत्र - पत्रिकाओं में प्रकाशित, डॉ. अनुपमा छाजेड़ द्वारा 'जैन रामायणों में राम का स्वरूप' विषय पर आपके निर्देशन में देवी अहिल्या वि. वि., इन्दौर से Ph.D. उपाधि प्राप्त की गई। 7 शोध छात्र Ph.D. हेतु कार्यरत।
10. **डॉ. अनुपम जैन :** M.Sc., M.Phil., Ph.D., देश के प्रतिष्ठित होलकर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर में गणित के स. प्राध्यापक, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर के मानद सचिव, अर्हत् वचन के मानद सम्पादक, लगभग 50 शोध आलेखों के लेखक तथा अनेक पुस्तकों, अभिनन्दन ग्रन्थों एवं पत्र - पत्रिकाओं के सम्पादक।
11. **ब्र. (कु.) रजनी जैन :** M.A. हिन्दी में देवी अहिल्या वि.वि., इन्दौर द्वारा स्वर्णपदक प्राप्त, सम्प्रति कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ केन्द्र पर पंजीयत होकर देवी अहिल्या वि.वि. से Ph.D. उपाधि हेतु कार्यरत। दि. जैन श्राविकाश्रम, इन्दौर में साधनारत।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

12. **डॉ. गणेश कावड़िया :** देवी अहिल्या वि.वि., इन्दौर में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक, सम्प्रति समाज विज्ञान संकाय के अधिष्ठाता, पूर्व में मोहनलाल सुखाड़िया वि.वि., उदयपुर में कार्यरत रहे। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ निदेशक मंडल के सदस्य।

13. **श्री मन्मथ पाटनी :** M.Sc., M.Tech. प्रेस्टीज उद्योग समूह में जनरल मैनेजर आदि के अनेक दायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करने के उपरान्त सम्प्रति प्रेस्टीज ग्रुप में वाइस प्रेसीडेन्ट पद पर कार्यरत, फूड टेक्नालॉजी के क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त। अर्हत् वचन में विगत वर्षों में अनेक टिप्पणियाँ प्रकाशित।

14. **श्री सुरेश जैन 'मारोरा' :** M.Sc. (Botany), सम्प्रति शिवपुरी में वरिष्ठ उद्यान अधिकारी के पद पर कार्यरत। अहिंसक कृषि एवं तीर्थों पर फलदार वृक्षों के रोपण में विशेष रूचि, अनेक लेखों के लेखक।

15. **डॉ. (ब्र.) स्नेहरानी जैन :** M.Sc., Ph.D. उपाधि प्राप्त, डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि., सागर के फार्मेसी विभाग में वर्षों तक सेवाएँ देने के पश्चात रीडर पद से सेवानिवृत्त, अनेक लेखों की लेखिका, अर्हत् वचन सम्पादक मंडल की 1999, 2000 में सदस्य।

16. **डॉ. नरेन्द्रनाथ सचदेव :** Ph.D. (Economics) सामाजिक - आर्थिक चिन्तन तथा राजनीति विज्ञान में विशेष अभिरूचि, प्रसिद्ध व्यवसायी, भवन निर्माता एवं चिन्तक, नगर की अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध।

17. **डॉ. राजमल जैन :** भारत सरकार के अन्तरिक्ष विभाग में वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी के पद पर कार्यरत, सम्प्रति राष्ट्रीय भौतिकी अनुसंधान प्रयोगशाला, अहमदाबाद में अंतरिक्ष अनुसंधान से सम्बद्ध, अनेक अन्तर्राष्ट्रीय परियोजनाओं के समन्वयक, जैन धर्म - दर्शन के वैज्ञानिक पक्ष के प्रकटीकरण हेतु सतत सचेष्ट, अर्हत् वचन पुरस्कार (2001) से सम्मानित।

18. **डॉ. नन्दलाल जैन :** मध्यप्रदेश शासकीय महाविद्यालयीन शिक्षा सेवा के अन्तर्गत शासकीय महाविद्यालय, रींवा से प्राध्यापक - रसायन शास्त्र के पद से सेवानिवृत्त, जैन केन्द्र - रींवा के निदेशक, अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में शोध पत्रों का वाचन, जैन धर्म का प्रतिनिधित्व, आर्यिका रत्नमती पुरस्कार से सम्मानित।

19. **डॉ. (श्रीमती) सरोज जैन :** शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना में हिन्दी विभाग की अध्यक्षा, अनेक लेखों की लेखिका एवं समीक्षक। प्रसिद्ध महिला नेत्री।

पर्यूषण पर्व - 2003

आत्मशुद्धि के पुनीत पर्व दशलक्षण एवं क्षमावणी के अवसर पर हम विगत वर्ष में हुई समस्त ज्ञात/अज्ञात भूलों हेतु क्षमाप्रार्थी हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
प्रकाशक

डॉ. अनुपम जैन
मानद सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

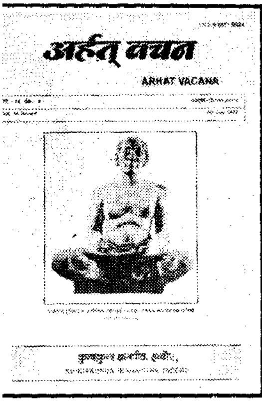

मत - अभिमत

अर्हत् वचन, वर्ष 14, अंक 4 प्राप्त हुआ। यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि यह अंक शाकाहार एवं पत्रकारिता के पुरोधा, दृढ़ संकल्पी डॉ. नेमीचन्द्र जैन, इन्दौर की स्मृति में प्रकाशित किया गया है। डॉ. नेमीचन्द्रजी ने शाकाहार के प्रचार - प्रसार का मिशन जो प्रारम्भ किया था, अंतिम श्वास तक उसी मिशन को अंजाम देते रहे। उनकी स्मृति में अर्हत् वचन का विशेषांक कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने प्रकाशित कर उनके गौरव को बढ़ाया है।

अर्हत् वचन पत्रिका शोध पत्रिकाओं में अपनी एक विशिष्ट पहचान बना चुकी है। पत्रिका में प्रकाशित समस्त आलेख स्तरीय सामग्री से समन्वित हैं। पत्रिका के उज्जवल भविष्य की सद्भावनाओं के साथ ...

■ **ब्र. संदीप 'सरल', संस्थापक**
अनेकान्त ज्ञान मन्दिर शोध संस्थान, **बीना**

I have read with interest the article 'Environment, Life Ethics and Jain Religion' by Dr. N. P. Jain, published in Oct.-Dec. 02 issue of Arhat Vacana.

The Suggestions and prescriptions are all very good. The problem is how to introduce and impliment them. The exploding population and rising consumerism putting ever increasing stress on shrinking natural resource many times more than their carrying capacity.

The quote from Mahatima Gandhi is not relevent in the present scenerio. If population continues to increaseexponentially, thwe physical environment and its constituents even vital ones, the soil, water and air will bot be able to cope with the increasing bare needs of exploiding numbers. Because of rising consumerism even the critaria of have needs is changing. The very index of development is more and more consumption.

Unless population and com nsumerism are controlled and limited within carrying capacity, there is no hope for environment, all its physical constituents, soil, water, air, minerals, forests, biodiversity including home sapiens.

■ **S. M. Jain, Kota**

आपके द्वारा भेजे गये 'अर्हत् वचन' के तीनों अंक मिले, एतदर्थ आभारी हूँ। पहले व दूसरे अंक में गणित को लेकर अच्छे आलेख संकलित हैं। समीक्षाएँ व आख्याएँ भी आपने दी हैं। आप जैन गणित को लेकर कुछ विद्वानों की टीम बनाकर अच्छा काम कर रहे हैं। मुझे लगता है कि ''जैन - गणित के जो सूत्र हैं व जो आकलन - पद्धति है, वह आकलन - पद्धति अन्य गणितों से कैसे भिन्न हैं'', इस विषय पर भी एक अच्छा आलेख आना चाहिये।

इसी सन्दर्भ में उल्लखित विचार या पद्धति को हम जैन - गणित के विचार - पद्धति का आधार मानें? यह बात भी सामने रखी जाना चाहिये। जैन गणित के आकलन के जो ढंग हैं उनका आज के गणित के अध्यापन में कैसे प्रयोग किया जाये व अध्ययन किस - किस रूप में, क्या - क्या भूमिका निभा सकता है? इस दिशा में भी कुछ संयुक्त यत्न करना चाहिये। प्रो. आर. सी. गुप्त का पहले अंक का आलेख, आपका महावीर की परम्परा में गणित सम्बन्धी आलेख, प्रो. (श्रीमती) पद्मावथम्मा, श्री दिपक जाधव व प्रो. राधाचरण गुप्त के आलेखों ने मुझे कई ऐसी जानकारियाँ दी, जिनसे मैं अभिभूत हूँ।

अर्हत् वचन जहाँ एक ओर शुद्ध शोध आलेखों को प्रकाशित कर रहा है, वहीं समाज में वैज्ञानिक व स्तरीय विचारों को भी समृद्ध कर रहा है। आपको बधाई।

■ **वृषभ प्रसाद जैन**
प्रोफेसर एवं निदेशक - महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, **लखनऊ**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

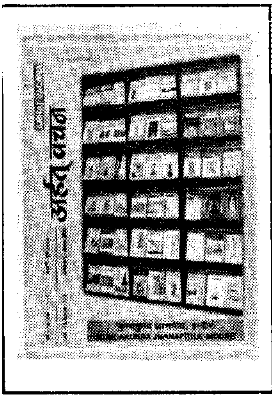

मत – अभिमत

आपके द्वारा प्रेषित अर्हत् वचन प्राप्त हुआ। अर्हत् वचन को मैंने देखा जिससे मुझे ज्ञात हुआ कि अर्हत् वचन में प्रकाशित अनेक लेख मेरे द्वारा रचित अनेक साहित्यों के ऊपर जो मेरे सान्निध्य में सम्पन्न हुई पाँच राष्ट्रीय एवं एक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में पढ़े गये शोध पत्र हैं। कुछ पुरस्कृत लेख भी मेरे साहित्य के ऊपर लिखे गये शोध पत्र हैं। इससे सिद्ध होता है कि हम जो कार्य कर रहे हैं उनमें से कुछ कार्य आप लोग भी कर रहे हैं। यह प्रसन्नता की बात है। परन्तु जो अभी तक अर्हत् वचन तीन महीने में एक अंक प्रकाशित हो रहा है उसे और भी शीघ्र अधिक संख्या में प्रकाशित करना चाहिये। इन्दौर जैसे नगर में और इतनी बड़ी संस्था की तरफ से यह कार्य होना सरल संभव है।

आपको हमारा बहुत बहुत आशीर्वाद।

■ **आचार्य कनकनन्दी**

अर्हत् वचन का जनवरी - जून 2003 अंक आज ही प्राप्त किया है। इस उपयोगी अंक हेतु बहुत - बहुत धन्यवाद। आपने अर्हत् वचन और कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के योगदान को एक सूत्र में पिरोकर हम सभी के समक्ष रखा है। कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ का कार्य सहज ही इतना है जितना विश्वविद्यालयों में भी संभव नहीं हो पा रहा है। कभी - कभी बिखरे कार्य समझ में नहीं आते किन्तु जब वे ही एक साथ प्रस्तुत किये जाते हैं तब पता चलता है कि संस्था तथा विद्वान ने कितना किया। समाज तथा विद्वान दोनों से सामंजस्य बिठाकर धैर्यपूर्वक कार्य करना पुरातनों से ही संभव नहीं है, नूतन भी कर सकते हैं। यह अंक **अनुपम** है। यह अंक ही क्या, आपकी हर प्रस्तुति **अनुपम** ही लगती है।

■ **डॉ. कुमार अनेकान्त जैन**

22.07.03 व्याख्याता - लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, **नई दिल्ली** - 110 067

अर्हत् वचन, **15** (1 - 2) प्राप्त हुआ। अर्हत् वचन की अद्यतन सम्पूर्ण जानकारी (15 वर्ष की) संकलित की है। बहुत वैज्ञानिक ढंग से कम्प्यूटर की मदद से संयोजित है।बधाई।

■ **प्राचार्य निहालचन्द जैन, बीना**

अर्हत् वचन का संयुक्तांक 15 (1 - 2) कोरियर द्वारा अभी 2 घंटे पूर्व प्राप्त हुआ। अंक का मुखपृष्ठ इतना आकर्षक लगा कि शोध का अन्य कार्य स्थगित करके इस अंक को पढ़ने बैठ गया। दो घंटे के अनवरत आद्योपान्त अवलोकन - अध्ययन के पश्चात आपके आदेशानुसार यह पत्र लिख रहा हूँ। प्रस्तुत संयुक्तांक में समाहित सामग्री 'गागर में सागर', दीर्घकालीन श्रमसाध्य तथा प्रशंसनीय है। जैन धर्म से सम्बद्ध किसी भी धारा - विद्या के शोधार्थियों को अपने से सम्बन्धित क्षेत्र का एकत्रित ज्ञान एक ही स्थान पर उपलब्ध कराने में यह अंक समर्थ होने के कारण सन्दर्भ ग्रन्थ है, जिससे इसकी उपादेयता बढ़ गई है। प्रस्तुत अंक पठनीय तथा संकलनीय है।

■ **डॉ. जगदीश प्रसाद**

23.07.03 115, कृष्णापुरी, **मेरठ** – 250 002

आपने अर्हत् वचन का 15 (1 - 2), जनवरी - जून 2003 का विशेषांक प्रकाशित कर अध्येताओं और शोधार्थियों का बहुत उपकार किया है। यह अंक **'ALL IN ONE'** है जो विगत 14 वर्षों की विषयवार जानकारी एक ही अंक में सुलभ करा रहा है। इस बहुश्रम साध्य और प्रातिभ प्रस्तुति के लिये हार्दिक बधाईयाँ स्वीकार करें।

■ **डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'**

24.07.03 निदेशक - संस्कृत, प्राकृत तथा जैन विद्या अनुसंधान केन्द्र, **दमोह**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन का 15 (1-2) अंक मिला। परिश्रम साध्य कार्य किया है। विज्ञान और गणित के लोग व्यवस्थित कार्य करना जानते हैं। ऐसी सामग्री को उपलब्ध कराकर आपने जैन गणित की बुनियाद को स्थिर कर दिया है। थोड़ी और मेहनत से इसे अध्ययन का विषय बनाया जा सकता है अगर Text Book की तरह विषयों का चयन कर पुनः अलग से प्रकाशित किया जाये।

■ **प्रो. महावीर राज गेलड़ा**

24.07.03 संस्थापक कुलपति - जैन विश्व भारती संस्थान (मानित वि.वि.), **जयपुर** - 302 004

अर्हत् वचन का 15 (1-2) अंक देखा। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की गतिविधियों के सर्वांगीण विवरण के साथ ही अर्हत् वचन में प्रकाशित लेखों, लेखकों का विवरण, विषय सामग्री का वर्गीकरण आदि सभी अनुसंधान एवं पद्धतिपूर्ण कार्य करने की प्रवृत्ति के परिचायक हैं। आपके सुयोग्य निर्देशन में अर्हत् वचन के अनुरूप अर्थात् वीतराग भाव से संस्था प्रगति करे और अपने लक्ष्य/उद्देश्यों को प्राप्त करे, यही कामना है।

पृष्ठ 78 पर प्रकाशित लेखकों के लिये मार्गदर्शन हेतु अच्छा प्रयास है। पत्रिका की गुणवत्ता की रक्षा हेतु आपके सद्प्रयास प्रशंसनीय हैं। अब कोई भी लेखक आपके अनुमोदन पर मात्र अर्हत् वचन के लिये ही लिखेगा और लिखना चाहिये।

■ **डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल**
अमलाई - 484 117

24.07.03

अर्हत् वचन 15 (1-2) मिला। करीब 4-5 साल से नियमित आता है। मैं स्वयं पढ़ता हूँ। अर्हत् वचन की सराहना करने को शब्द नहीं हैं। जैन धर्म के सूक्ष्मतम ज्ञान से भरपूर है। प्रकाशित सामग्री अति सुन्दर, ज्ञानवर्द्धक ...., कहने को शब्द नहीं हैं। बहुत बार लगने लगता है कि इन्जीनियर बनने के बजाय इस संशोधन में रस लेना चाहिये था। आपसे मिलने की इच्छा भी है। मौका मिलते ही आपसे मुलाकात करूँगा।

24.07.03 ■ **प्रवीण एम. शाह, बी.ई., वापी** (गुजरात)

Kindly accept hearty congratulations for the excellent cumulative index of Arhat Vacana. Kindly keep a ready stock of reprints of important articles so that people can buy on demand. You may be aware that Jainism is discussed threadbare in yahoogroups like Jainlist and Jainfriends. You may include the content page of each issue as and when published in these yahoogroups. Let me once again congratulate you and your entire team for the excellent margaprabhavana. My pranam to Vayovraddha Shriman Kasliwal Saheb.

■ **Dr. C. Devakumar**
Principal Scientist,

24.07.03
Indian Agricultural Research Institute, **New Delhi** - 110012

अर्हत् वचन का अंक 15 (1-2) जनवरी - जून 2003 मिला। यह अंक निश्चय ही शोधार्थियों के लिये मार्गदर्शक बनेगा क्योंकि आपने सभी लेख एवं लेखकों के पते एक साथ दिये हैं। यह अच्छा प्रयास है।

पत्रिका के स्तरीय स्वरूप को कायम रखकर दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करें, यही कामना है।

■ **सुरेश जैन मारोरा**
वरिष्ठ उद्यान अधिकारी, **शिवपुरी**

26.07.03

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपने अर्हत् वचन के इस विशेषांक के संपादन में जो सविशेष श्रमकर अपनी सूझबूझ का परिचय दिया है, वह सचमुच सराहनीय है। विगत 14 वर्षों में जो शोध सामग्री प्रस्तुत हुई है उसका सम्पूर्ण विवरण आपने इस अंक में दिया है। प्रकाशित लेखों एवं लेखकों के परिचय के साथ ही उसके विषयवस्तु का बोध भी आपने इस अंक में विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है। इससे पाठकों को तद्विषयक जानकारी सहज ही प्राप्त हो सकेगी। ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत लेखक विद्वानों की सूची भी आपने इस अंक में दी है। साथ ही ज्ञानपीठ द्वारा संचालित अन्य कार्यों का विवरण भी। अभी अर्हत् वचन में गणित और विज्ञान के शेधपूर्ण लेखों की प्रमुखता रहती है जिससे विद्वानों के सिवाय अन्य जनों को विशेष लाभ नहीं होता। यदि जिनवाणी क अन्य सर्वजनोपयोगी विषयों का भी समावेश कर इसे सर्वजनोपयोगी बनाने पर ध्यान दिया जाये तो पत्रिका का व्यापक प्रचार एवं उपयोग हो सकेगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

मैं ज्ञानपीठ एवं अर्हत् वचन के उज्जवाल भविष्य के प्रति अपनी हार्दिक मंगलकामना समर्पित करता हूँ।

26.07.03 ■ **नाथूराम डोंगरीय जैन**, सुदामानगर, **इन्दौर**

अर्हत् वचन का वर्ष 15, अंक 1-2, जनवरी-जून 03 प्राप्त हुआ। इस संयुक्तांक में आपने विगत 14 वर्षों की अवधि में इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री की वर्गीकृत सूचियाँ देकर इसके पाठकों को एक अत्यन्त उपयोगी सामग्री प्रदान की है।

आपने अत्यन्त कठिन परिश्रम करके इस अंक में न केवल 14 वर्षों की प्रकाशित सामग्री की वर्ष, विषय एवं लेखकवार वगीकृत सूचियाँ दी हैं, अपितु लेखकों के पते देकर पाठकों को उनसे अपनी शंका का समाधान करने एवं मार्गदर्शन प्राप्त करने का भी मार्ग प्रशस्त किया है।

अर्हत् वचन पुरस्कार से नवाजे गये विद्वानों की वर्षवार लेख के शीर्षक सहित सूचियाँ देकर आपने जहाँ इस पुरस्कार हेतु नये लेखकों का आव्हान किया है, वहीं अन्य पुरस्कारों के विवरण, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की प्रगति आख्या, संस्था के विभिन्न प्रकल्पों के प्रगति विवरण आदि देकर इसमें गागर में सागर भर दिया है।

कृपया इस हेतु आप हमारी ओर से हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

■ **डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन**

26.07.03 तिलकनगर, गली नं. 3, **इन्दौर**

I am thankful for the Jan.-Jun. 03 issue sent to me. Well, in the context, I am very much inclined to endorse the sentiments expressed by Res. Kakasaheb in the preface that this indeed is the outcome of the personalised attention as well as sustained efforts undertaken by you in documentation of such an exclusive compendium. Congratulation!

26.07.03 ■ **Kokalhand Jain**

Jawahar Nagar, **Jaipur**

---

14 वर्षों की लेखमालिका एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की गतिविधियों का प्रामाणिक परिचय देकर आपने अच्छा कार्य किया है। संस्था के प्रकाशनों को और गति मिले, मौलिक ग्रन्थ प्रकाशित हों। अध्ययन/अध्यापन की व्यवस्था हो, इसी शुभकामना के साथ आपके प्रयासों की हार्दिक सराहना करता हूँ।

■ **डॉ. रमेशचन्द्र जैन**

26.07.03 पूर्व अध्यक्ष - अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद,

जैन मन्दिर के बास, **बिजनौर**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन आज ही प्राप्त हुआ, धन्यवाद। संयुक्तांक की विशेष सामग्री तथा बाह्य व आन्तरिक सज्जा देख हृदय गद-गद हो गया। आद्योपान्त पढ़कर आपकी दक्षता तथा श्रम साधना पर अन्तस से शुभकामनाएँ तथा बधाई।

14 वर्ष के सम्पूर्ण आलेखों का विविधता के साथ विवरण, वह भी वर्षानुसार, विषयानुसार तथा लेखकानुसार देना, पुरस्कृत लेखों की अलग से सूची देना, श्रम साध्य तो है ही, प्रशंसनीय भी है। शोध सम्बन्धित कोई विषय अछूता नहीं रहा यह आदर्श शोध पत्रिका का विशेष गुण तो है ही, सुधी सम्पादक की सूझ-बूझ का परिणाम है।

ऐतिहासिक एवं पुरातत्व सम्बन्धी लेख वास्तव में शोधपरक हैं। विज्ञान के सभी विभागों, शाकाहार, आयुर्वेद एवं स्वास्थ्य, शिक्षा एवं मनोविज्ञान, संगीत एवं चित्रकला, साहित्य, कर्म सिद्धान्त, सामान्य विज्ञान आदि से संबंधित सभी सारगर्भित लेख हैं जो ज्ञानवर्द्धक तथा मनरंजक हैं। सभी लेख उच्च स्तरीय मौलिक शोध लेख हैं। इसके लिये निर्णायक मंडल भी साधुवादता का पात्र है। विज्ञान के यथार्थ की कसौटी पर श्रम का, श्रुत के विषय को कलात्मक सौन्दर्य के रूप में आलोकित किया है, यह सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की साकार कृति प्रशंसनीय, पठनीय तथा संग्रहणीय है।

■ **विमला जैन**

27.07.03 'विमल विहार', 1/344, सुहागनगर, **फिरोजाबाद**

जनवरी-जून 2003 का संयुक्तांक पूर्व प्रकाशित सामग्री की वर्गीकृत सूचियों के विशेषांक रूप में मिला। शोधार्थियों के लिये यह अंक बहुत महत्वपूर्ण है। इसका सन्दर्भ महत्व अधिक है। व्यवस्था करें कि इच्छुक व्यक्ति यदि इनमें से कुछ प्रकाशित लेखों की फोटोकापी मंगाना चाहें तो उन्हें सशुल्क अथवा नि:शुल्क, जैसा आपका निर्णय हो, भेज सकें। सम्भवतया 'अर्हत् वचन' के अनेक पाठकों के पास भी इसके अंक सुरक्षित न रहे हों।

14 वर्षों से निरन्तर 'अर्हत् वचन' पत्रिका स्तरीय, शोधपूर्ण लेख प्रकाशित कर रही है, यह बहुत प्रसन्नता की बात है। **भारत में जैन समाज की नि:सन्देह यह सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है,** जो विविध विषयों पर हिन्दी एवं अंग्रेजी में प्रामाणिक लेख प्रकाशित करती है। आपका संपादन परिश्रम विशेष उल्लेखनीय है। पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति की कामना सहित ....

■ **सतीशकुमार जैन**

28.07.03 महासचिव - अहिंसा इन्टरनेशनल, **नई दिल्ली**

पत्रिका एवं संस्थान के अनुकरणीय कार्य

अर्हत् वचन पत्रिका, देवी अहिल्या वि.वि. से मान्यता प्राप्त कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के वर्ष 15, अंक 1-2, जनवरी-जून 2003 में गत 14 वर्षों की पूर्व प्रकाशित सामग्री की वर्गीकृत सूचियाँ, विशेषांक के रूप में मेरे समक्ष है। इसके सभी पूर्व अंकों को भी मैं पढ़ चुका हूँ। पढ़कर सम्पादकजी (डॉ. अनुपमजी) की आधुनिक सम्पादन कला, प्रतिभा, विद्वत्ता एवं महत्वपूर्ण आलेखों के चयन तथा वर्तमान में पूर्व प्रकाशित सामग्री से पत्रिका की गरिमा का परिचय मिलता है। संपादक डॉ. अनुपमजी को देश के विशिष्ट विद्वानों का सहयोग प्राप्त है। पत्रिका की सफलता का यह कारण भी है।

विशेष उल्लेखनीय यह है कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ संस्थान के अध्यक्ष आदरणीय श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल की हरेक प्रकार की सहायता संस्थान एवं पत्रिका को उपलब्ध है। इसके पहले से ही पुरातत्व की खोज के प्रति आपकी विशेष रूचि और सतत प्रयास करहा है। मुझे भी आपने प्राचीन शास्त्रों की खोज, जिन मन्दिरों की प्रतिमाओं (प्रशस्ति सहित) और शास्त्रों की सूची हेतु नागौर, ग्वालियर आदि स्थानों पर भेजा था। बड़े विद्यार्थियों से इसका कार्य भी कराया था। विद्वानों की नियुक्तियाँ की थी। अभी 'सिरिभूवलय' की प्रति मंगवाकर उसे पढ़ने की विधि खोजकर लिखने का काम भी चल रहा है। शास्त्रों की पांडुलिपियों के सूचीकरण का कार्य सफलतापूर्वक प्रारम्भ हो चुका है।

समाज के अंग्रेजी-संस्कृत विद्यालयों एवं संस्कृत महाविद्यालयों की वार्षिक परीक्षा हेतु परीक्षा संस्थान सुचारू संचालित हो रहा है। पुरस्कार योजना, संगोष्ठियाँ आदि अनेक गतिविधियाँ यहाँ चल रही हैं। अध्यक्ष महोदय श्री देवकुमारसिंहजी एवं श्री अजितकुमारसिंहजी कासलीवाल (कोषाध्यक्ष) प्राय: प्रतिदिन संस्थान में उपस्थित होकर मार्गदर्शन करते रहते हैं।

■ **नाथूलाल शास्त्री, इन्दौर**

5.8.03

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित उपलब्ध साहित्य

क्रमांक	पुस्तक का नाम	लेखक	I.S.B.N.	मूल्य
1.	बालबोध जैनधर्म, पहला भाग संशोधित	पं. दयाचन्द गोयलीय	81-86933-01-8	1.50
2.	बालबोध जैनधर्म, दूसरा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81-86933-02-6	1.50
3.	बालबोध जैनधर्म, तीसरा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81-86933-03-4	3.00
4.	बालबोध जैनधर्म, चौथा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81-86933-04-2	4.00
5.	नैतिक शिक्षा, प्रथम भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-05-0	4.00
6.	नैतिक शिक्षा, दूसरा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-06-9	4.00
7.	नैतिक शिक्षा, तीसरा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-07-7	4.00
8.	नैतिक शिक्षा, चौथा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-08-5	6.00
9.	नैतिक शिक्षा, पांचवां भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-09-3	6.00
10.	नैतिक शिक्षा, छठा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-10-7	6.00
11.	नैतिक शिक्षा, सातवां भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-11-5	6.00
12.	The Jaina Sanctuaries of the Fortress of Gwalior	Dr. T.V.G. Shastri	81-86933-12-3	500.00
13.	जैन धर्म - विश्व धर्म	पं. नाथूराम डोंगरीय जैन	81-86933-13-1	10.00
14.	मूलसंघ और उसका प्राचीन साहित्य	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-14-X	70.00
15.	Jain Dharma - Vishwa Dharma	Pt. Nathuram Dongariya Jain	81-86933-15-8	20.00
16.	मध्यप्रदेश का जैन शिल्प	श्री नरेशकुमार पाठक	81-86933-18-2	300.00
17.	जैनाचार विज्ञान	मुनि सुनीलसागर	81-86933-20-4	20.00
18.	समीचीन सार्वधर्म सोपान	पं. नाथूराम डोंगरीय जैन	81-86933-21-2	20.00
19.	An Introduction to Jainism & Its Culture	Pt. Balbhadra Jain	81-86933-22-0	100.00
20.	जीवन क्या है?	डॉ. अनिल कुमार जैन	81-86933-24-7	50.00
21.	Mathematical Contents of Digambara Jaina Texts of Karṇānuyoga Group, Vol.-1 & Vol.-2	L.C. Jain	81-86933-26-3 81-86933-27-1	On request

नोट : पूर्व के सभी सूची पत्र रद्द किये जाते हैं। मूल्य परिवर्तनीय हैं।

प्राप्ति सम्पर्क : कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अगले अंकों में प्रकाश्य आलेख

- **नागवंश : जैन इतिहास की एक अलक्षित वंश परम्परा**
  - ☐ सूरजमल बोबरा, इन्दौर
- **शहडोल जिले की प्राचीन जैन कला और स्थापत्य**
  - ☐ राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई
- **कैलाश पूजा या क्षेत्र पूजा ही लिंग पूजा**
  - ☐ रामजीत जैन, ग्वालियर
- **जैनधर्म का सनातनत्व एवं महत्व**
  - ☐ शांतिराज शास्त्री एवं पद्मावतम्मा, मैसूर
- **प्राणवाय पूर्व का उद्भव विकास एवं परम्परा**
  - ☐ राजकुमार जैन, इटारसी
- **श्रमण कौन ?**
  - ☐ समणी सत्यप्रज्ञा, लाडनूँ
- **संगीत समयसार**
  - ☐ रामजीत जैन, ग्वालियर
- **क्या आप अपना भाग्य - कर्मरेखा को बदल सकते हैं ?**
  - ☐ रत्नलाल जैन, हाँसी
- **सुदीर्घ जिन परम्परा में तीर्थंकर महावीर**
  - ☐ रमेश जैन, भोपाल
- **अक्षर विज्ञान एवं उसकी प्रामाणिकता**
  - ☐ उदयचन्द्र जैन, उदयपुर
- **Theories of Indices and Logarithms in India from Jaina Sources**
  - ☐ Dipak Jadhav, Barawani
- **A Jaina-Saiva Monument in Hampi : Religious Tolerance**
  - ☐ A. Sundara, Dharwad
- **Jaina Perspective on Advaota Vedanta**
  - ☐ Jagdish Prasad Jain, New Delhi
- **Story of my contact with Dr. A. N. Upadhye**
  - ☐ Kamal Chand Sogani, Jaipur
- **On the Vikram Era**
  - ☐ L.C. Jain & Prabha Jain, Jabalpur
- **Some Stray Thoughts**
  - ☐ Dilip Surana, Kolkata
- **Jainism in Punjabi Language**
  - ☐ Dharm Singh, Patiala

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मृति शेष - विनम्र श्रद्धांजलि

प्रो. जे. एन. कपूर, दिल्ली

अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त गणितज्ञ प्रो. जे. एन. कपूर का वर्ष 2002 में निधन हो गया। I.I.T., कानपुर में गणित के प्राध्यापक, मेरठ विश्वविद्यालय के कुलपति, जवाहरलाल नेहरू वि.वि., दिल्ली एवं M.I.T.-Canada में विजिटिंग प्रोफेसर रह चुके प्रो. कपूर की गणित इतिहास में विशेष रूचि थी। आप I.S.H.M. के उपाध्यक्ष थे। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की विभिन्न अकादमिक समितियों से जुड़े होने के कारण आप 1995 में ज्ञानपीठ पधारे थे।

प्रो. एम. डी. वसन्तराज, मैसूर

जैन विद्याओं के वरिष्ठ अध्येता तथा दक्षिण भारत में जैनागमों के अध्ययन को गति प्रदान करने में अग्रणी भूमिका का निर्वाह करने वाले, अनेक पुस्तकों के लेखक प्रो. एम. डी. वसन्तराज का दिनांक 27.12.2002 को मैसूर में निधन हो गया। 78 वर्षीय प्रो. वसन्तराज के निधन से जैन समुदाय की अपूरणीय क्षति हुई है।

प्रो. गोपीचन्द पाटनी, जयपुर

84 वर्षीय प्रो. गोपीचन्द पाटनी का दिनांक 19.01.03 को जयपुर में निधन हो गया। अर्हत् वचन के नियमित पाठक प्रो. पाटनी श्रीमहावीरजी से निरन्तर जुड़े रहे। उन्होंने महाराजा कालेज के प्रिंसिपल तथा राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में गणित विभाग के प्राध्यापक, अध्यक्ष तथा विज्ञान संकाय के अध्यक्ष के रूप में अपनी सेवायें दी थीं। जैन गणित में उनकी काफी रूचि रही।

श्री अमरचन्द जैन 'होमब्रेड', मेरठ

मेरठ के प्रसिद्ध युवा उद्योगपति श्री अमरचन्द जैन 'होमब्रेड' का दिनांक 21 मार्च 2003 को मेरठ में निधन हो गया। आप अपनी कर्मठता, सरलता एवं समर्पण की भावना के कारण अत्यन्त लोकप्रिय थे। वे मूलत: सलावा (ग्राम) के निवासी थे। मेरठ की अनेक सामाजिक संस्थाओं से जुड़े होने के साथ ही वे दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर के मंत्री थे। उनके निधन से समाज की हुई क्षति की पूर्ति असंभव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विविध गतिविधियाँ

भगवान ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव – सुदामानगर, इन्दौर में आचार्य श्री अभिनन्दनसागरजी महाराज के सान्निध्य में तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन, फिरोजाबाद (04.05.03)

ज्ञानोदय पुरस्कार समर्पण समारोह को सम्बोधित करते हुए श्री सदानन्द अग्रवाल (मेण्डा–उड़ीसा) (03.05.03)

डॉ. अभयप्रकाश जैन, ग्वालियर को पुरस्कार प्रदान करते हुए प्रो. नरेन्द्र धाकड़, बायें से क्रमश: प्रो. गणेश कावड़िया डॉ. अनुपम जैन, श्री सूरजमल बोबरा। श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, प्रा. नरेन्द्रप्रकाश जैन एवं कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन (03.05.03)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में विभिन्न गतिविधियाँ

ऐलक श्री निशंकसागरजी संबोधित करते हुए । मंचासीन प्रो. सुधाकर भारती (कुलाधिसचिव), प्रो. देवाशीष बेनर्जी, प्रो. पी. एन. मिश्र, प्रो. ए .ए. अब्बासी (मानद निदेशक), डॉ. एन.पी. जैन (पूर्व राजदूत) एवं श्री अजित कासलीवाल (कोषाध्यक्ष)

(समाचार पृ. 116)
(14.01.03)

जैन शिक्षक सम्मेलन को संबोधित करते हुए कुलपति डॉ. भरत छापरवाल । मंचासीन डॉ. नलिन के .शास्त्री (कुल सचिव – दिल्ली),प्रो. नरेन्द्र धाकड़ (प्राचार्य), श्री मनोहरसिंह मेहता श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल (अध्यक्ष), प्रो. एस.सी. अग्रवाल, प्रो. जयन्तीलाल भंडारी

(04.01.03)
(समाचार पृ. 115)

क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी व्याख्यान देते हुए प्रो. देवाशीष बेनर्जी

(14. 01.03)
(समाचार पृ. 116)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org